ISSN 0975-5217
DOI-10.65403

वर्ष 2025
अंक : 29 (संयुक्तांक)
(जुलाई-दिसम्बर)

भैरवी

(दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध पत्रिका)

Bhairavi Sangeet
Shodh Patrika

मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

भैरवी (दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध पत्रिका) अंक-29 (संयुक्तांक)

Bhairavi Sangeet
Shodh Patrika

ISSN 0975-5217
DOI-10.65403

वर्ष 2025
अंक 29 (संयुक्तांक)
(जुलाई-दिसम्बर)

भैरवी

(दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

Website- https://bhairavisangeetshodhpatrika.com/
DOI URL- https://search.crossref.org/search/works?q=10.65403%2F2025&from_ui=yes

मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

Bhairavi Sangeet
Shodh Patrika
ISSN 0975-5217
DOI-10.65403

वर्ष 2025
अंक 29 (संयुक्तांक)
(जुलाई-दिसम्बर)

भैरवी (दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

प्रधान सम्पादक
प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण
प्रकाशक : मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com
Website- https://bhairavisangeetshodhpatrika.com/
DOI URL- https://search.crossref.org/search/works?q=10.65403%2F2025&from_ui=yes

"भैरवी" Peer Reviewed Refereed Visual and Performing Arts Research Journal है जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित एवं UGC-Care list (Group-1) में शामिल शोध-पत्रिका रही है।

भारतीय मुद्रा के अनुसार - वार्षिक : ₹1100 / त्रैवार्षिक: ₹3100 / आजीवन: ₹25000
अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा के अनुसार - वार्षिक : $12 / त्रैवार्षिक: $ 33.81 / आजीवन: $ 272.64

इस अंक की सहयोग राशि- ₹500
Contribution amount for this issue - $ 5.45
In Indian currency - Annual: ₹1100 / Triennial: ₹3100 / Lifetime: ₹25,000
In International Currency - Annual: $12 / Triennial: $ 33.81 / Lifetime: $ 272.64
(सहयोग राशि केवल मनी आर्डर / चेक / बैंक ड्राफ्ट से)
(दरभंगा से बाहर के चेक में 40 रुपये अधिक जोड़ें)

सर्वाधिकार सुरक्षित ©
प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

समस्त विवाद दरभंगा न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।
मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद-201 102

Patron

Padmashree Prof. Ritwik Sanyal
Top Grade vocal Artist
Retd. Dean & Head
Faculty of Music & Performing Arts
B.H.U.Varanasi, Uttar Pradesh

Prof. Sahitya Kumar Nahar
Top Grade Sitar Artist,
U.P Sageet Natak Academy Awardee
Ex. Vice-Chancellor
RajaMansingh Tomar SangeetVishwavidyalaya
Gwalior, Madhya Pradesh, India

Pandit (Dr.)Nishindra Kinjalk
Top Grade Sitar Artist
Senior Doctor & Music Therapist
Muzaffarpur, Bihar, India

Prof. Chaman Lal Verma
Retd. Dean & Head
Department of Music
H.P University, Himanchal Pradesh,Shimla

Prof. Prabhakar Pathak
Retd. Dean & Head
University Dept. of Hindi
Lalit Narayan Mithila University
Darbhanga, Bihar

Prof. Sushil Kumar Gupta
Ph.D.(IITD),CCHEM,FRSC
Professor &Ex. Head
Jiwaji University Gwalior, India

Chief Editor

Prof. Pushpam Narain
Dean Academic & Ex. Dean Faculty of Fine Arts
Lalit Narayan Mithila University Darbhanga Bihar, India
E mail- npushpamji@gmail.com
Mobile-9430063265, 7903836047

Editorial Board

1. Prof. K. Shashi Kumar
Ex. Dean & Head
Faculty of Music & Performing Arts
B.H.U. Varanasi, Uttar Pradesh, India

2. Dr. Chinthaka P. Meddegoda
Professor of Music
Department. of North Indian Music
The University of Visual & Performing Arts, Colombo

3. Dr. Smriti Shukla Principal
Govt. M. K. B. Autonomous College for Women
Jabalpur, Madhya Pradesh

4. Prof. Snehashish Janpriya Das
Head. Department of Music
Women'sCollegeJagChowk
Amarawati, Maharashtra

5. Prof. Umesh Kumar
Head, University Department of Hindi
Lalit Narayan MithilaUniversity
Darbhanga, Bihar

6. Prof, Santosh Dattatrayrao Parchure
Head, Department of Music
S.P.H.Women's College,Malegaon, Maharashtra

7. Dr. Suruchi Arya
M.B.B.S,M.S,
Ophthalmologist,F.C.O.,F.C.RS, Varanasi

8. Mr. Dhirendra Prasad
Senior Advocate
Katihar, Bihar

Peer Review Committee

1. Dr. Ramesh Pokharel
   Associate Professor, Fine Arts Campus
   Tribhuvan University, Kathmandu, Nepal

2. Dr. Om Prakash Bharti
   Head, Department of PerformingArts
   M.G.I Antarrashtriya HindiVishwavidyalaya
   Wardha, Maharashtra

3. Dr. Ramshankar
   Associate Professor.
   Faculty of Music and Performing Arts
   B.H.U., Varanasi

4. Dr. Shobhit Kumar Nahar
   Director
   Uattar Pradesh Sangeet Natak Akadami
   Lucknow, India

5. Dr. Ashwani Kumar Singh
   Associate Professor Department of Music
   Faculty of Performing Arts
   M.S. University, Baroda, Gujarat

6. Dr. Pallavi Shailesh Meshram
   Associate Professor in Applied Arts
   Bharti Vidyapeeth' Collge of Fine Arts, Pune
   Maharashtra, India

7. Dr. Rajendra Kumar Deerpaul
   Senior Lecture
   Department of Stringed Instruments
   School of Performing Arts
   Mahatma Gandhi Institute. Mauritius

8. Dr. Shashank S. Maktedar
   Associate Professor and Officiating Principal
   Goa College of Music, Panji, Goa, India

9. Dr. Gajendra Bhardwaj
   Senior Lecturer Department of Hindi
   Marwari College
   Darbhanga, Bihar, India

'Music is the bridge of peace and love'

'संगीत दो देशों के बीच शान्ति और प्रेम का सेतु है।'

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

भैरवी जर्नल की सदस्यता हेतु प्रपत्र

Journal Subscription Form

वेबसाइट https://bhairavisangeetshodhpatrika.com

1. आवेदक का विवरण / Applicant Details

- पूरा नाम / Full Name:
- संस्थान/संगठन का नाम (यदि लागू हो) / Name of Institution (if any):

2. संपर्क विवरण / Contact Details

पूरा पता / Full Address:

शहर / City: राज्य / State:

पिन कोड / PIN Code: मोबाइल नंबर / Mobile No.:

ई-मेल / Email:

3. सदस्यता का प्रकार / Type of Subscription

उचित विकल्प पर निशान लगाएँ / Tick the appropriate option: -

[ ] व्यक्तिगत / Individual

[ ] संस्थागत / Institutional

[ ] छात्र / Student

[ ] आजीवन / Lifetime

4. सदस्यता अवधि एवं सहयोग राशि / Subscription Period and Amount

भारतीय मुद्रा के अनुसार - वार्षिक : ₹1100 / त्रैवार्षिक : ₹ 3100 / आजीवन : ₹25000

अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा के अनुसार- वार्षिक : $12 / त्रैवार्षिक : $ 33.81 / आजीवन : $ 272.64

5. जर्नल का प्रारूप / Mode of Journal

[ ] मुद्रित / Print

[ ] ऑनलाइन / Online

[ ] दोनों / Both (Print + Online)

6. भुगतान का माध्यम / Mode of Payment:

[ ] ऑनलाइन ट्रांसफर/ UPI / Online Transfer / UPI

भुगतान संदर्भ संख्या व तिथि / Payment Reference No. & Date:

7. घोषणा / Declaration

मैं यह घोषणा करता/करती हूँ कि उपर्युक्त दी गई सभी जानकारियाँ सत्य एवं सही हैं। मैं जर्नल की सदस्यता से संबंधित सभी नियमों एवं शर्तों से सहमत हूँ।

I hereby declare that the information furnished above is true and correct to the best of my knowledge. I agree to abide by all the rules and regulations of the journal subscription.

स्थान / Place:..... तिथि /Date:..... आवेदक के हस्ताक्षर / Signature of Applicant:

.....

कार्यालय उपयोग हेतु / For Office Use Only

आवेदन प्राप्ति तिथि / Date of Receipt: रसीद संख्या / Receipt No.:

सदस्यता स्वीकृत/अस्वीकृत/ हस्ताक्षर (प्राधिकारी) /

Subscription Approved/Rejected: Authorized Signature:

संपादक की कलम से ...

आज का भारत शिक्षा के ऐसे मोड़ पर खड़ा है जहाँ अतीत और भविष्य आमनेसामने संवाद कर रहे हैं। एक ओर वैश्वीकरण, तकनीक और बाज़ार आधारित ज्ञानव्यवस्था है, तो दूसरी ओर सहस्राब्दियों से विकसित भारतीय ज्ञान परंपरा, जिसने जीवन को केवल आजीविका नहीं बल्कि साधना के रूप में देखा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) इसी ऐतिहासिक संगम का दस्तावेज़ है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा को आधुनिक शिक्षासंरचना से जोड़ने का साहसिक प्रयास करती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की यह विशेषता रही है कि उसने ज्ञान को विषय की संकीर्ण सीमाओं से परे जाकर विस्तार देने की पद्धतियाँ विकसित कीं। वेदों से उपनिषदों तक, दर्शन से विज्ञान तक, कला से शिल्प तक हर क्षेत्र में समग्रता और संतुलन की चेतना व्याप्त है। विष्णु पुराण का 'सा विद्या या विमुक्तये' सूत्र बताता है कि विद्या का अंतिम उद्देश्य मनुष्य को बौद्धिक, नैतिक और आत्मिक बंधनों से मुक्त करना है। इसके विपरीत औपनिवेशिक शिक्षाव्यवस्था ने शिक्षा को प्रशासनिक दक्षता और रोज़गार तक सीमित कर दिया। स्वतंत्र भारत में भी यह विडंबना लंबे समय तक बनी रही कि शिक्षा और संस्कृति, ज्ञान और जीवन के बीच दूरी बढ़ती गई।

भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप बहुआयामी रहा है। इसमें वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, दर्शन-शास्त्र, स्मृतियाँ, पुराण, लोकज्ञान, शिल्प, कला, संगीत, चिकित्सा, गणित, खगोल, व्याकरण तथा नाट्यशास्त्र जैसी विविध विधाएँ सम्मिलित हैं। इनकी समूची परंपरा ग्रंथों तक सीमित न होकर, गुरु-शिष्य परंपरा, आश्रम-व्यवस्था और लोक-संस्कृति के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रही। भारतीय ज्ञान-दृष्टि में ज्ञान को तीन स्तरों पर देखा गया- 'श्रुति'(सुना हुआ), 'स्मृति'(स्मरण किया हुआ) और 'अनुभूति'(अनुभवजन्य)। इस दृष्टि से ज्ञान का उद्देश्य केवल बौद्धिक कौशल विकसित करना नहीं, बल्कि व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना रहा है।

इक्कसवीं सदी के नए परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी भारतीय शिक्षाचिंतन में एक नया विमर्श प्रस्तुत करती है। यह नीति केवल पाठ्यक्रम परिवर्तन का दस्तावेज़ नहीं है, बल्कि शिक्षा के उद्देश्य को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास भी है। इसके अंतर्गत मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा, बहुविषयक अध्ययन, मूल्यआधारित शिक्षण और भारतीय ज्ञान प्रणाली (Indian Knowledge Systems) पर दिया गया बल इस बात का संकेत है कि नीति अपने सांस्कृतिक जड़ें की ओर लौटने की आकांक्षा रखती है।

औपनिवेशिक शासन के दौरान मैकाले ने भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन करते हुए पश्चिमी ज्ञान और अंग्रेज़ी भाषा को प्राथमिता देने वाली शिक्षा-नीति निर्धारित की। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय ज्ञान परंपरा को 'पिछड़ा' और 'अवैज्ञानिक' मानकर हाशिये पर डाल दिया गया। इससे शिक्षा का उद्देश्य रोजगारोन्मुख और प्रशासनिक आवश्यकताओं तक सीमित हो गया। स्वतंत्रता के बाद भी लंबे समय तक शिक्षा-नीतियाँ औपनिवेशिक ढाँचे से पूर्णत: मुक्त नहीं हो सकीं। परिणामस्वरूप शिक्षा और जीवन, ज्ञान और मूल्य के साथ-साथ परंपरा और आधुनिकता के बीच उत्पन्न हुई जो समय के साथ गहराती चली गई।

NEP की सबसे बड़ी प्रासंगिकता यही है कि यह शिक्षा को मानवकेंद्रित बनाने की बात करती है। आज जब प्रतिस्पर्धा, तनाव और उपभोक्तावाद ने युवा मन को घेर लिया है, तब योग, ध्यान, नैतिक-शिक्षा और सामुदायिक-चेतना जैसे तत्त्व भारतीय ज्ञान परंपरा से प्रेरणा लेकर शिक्षा को संतुलन प्रदान कर सकते हैं। यह संयोग मात्र नहीं है कि नीति 'सांस्कृतिक-जड़ता' और 'नैतिक-नागरिकता' जैसे शब्दों का प्रयोग करती है। हालाँकि, यह भी उतना ही सत्य है कि किसी नीति की सफलता उसके क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। भारतीय ज्ञान परंपरा को यदि केवल प्रतीकात्मक रूप में पाठ्यपुस्तकों तक सीमित कर दिया गया, तो उसका उद्देश्य अधूरा रह जाएगा। आवश्यक है कि परंपरा को आलोचनात्मक और वैज्ञानिक दृष्टि से पढ़ाया जाए, न कि अंधानुकरण के रूप में। शिक्षकप्रशिक्षण, शोधसंस्थानों की भूमिका और समकालीन संदर्भों से जुड़ाव इस दिशा में निर्णायक होंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का एक सकारात्मक पक्ष यह भी है कि यह भारत को केवल ज्ञान के उपभोक्ता नहीं, बल्कि ज्ञान के निर्माता राष्ट्र के रूप में देखने की आकांक्षा रखती है। नालंदा और तक्षशिला जैसी प्राचीन विश्वविद्यालय-परंपराएँ इस बात का प्रमाण हैं कि भारत वैश्विक-ज्ञान-केंद्र रहा है। NEP उसी आत्मविश्वास को आधुनिक रूप में पुनर्जीवित करना चाहती है।

प्रश्न यह नहीं कि भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति कितनी प्रासंगिक हैं, बल्कि यह है कि हम उन्हें कितनी ईमानदारी से आत्मसात् करते हैं। यदि शिक्षा को केवल डिग्री और रोजगार का माध्यम मानने की औपनिवेशिक प्रवृत्ति आगे भी बनी रही, तो कोई भी नीति सार्थक नहीं हो पाएगी। लेकिन यदि शिक्षा को जीवननिर्माण की प्रक्रिया के रूप में देखा गया, तो भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति का यह संगम भारत को न केवल शैक्षिक रूप से सशक्त बनाएगा, बल्कि मानवीय मूल्यों का मार्गदर्शक भी बनाएगा।

भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति का समन्वय तभी सार्थक होगा जब शिक्षा में अनुसंधान, संवाद और नवाचार को बढ़ावा दिया जाए। परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित कर एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली विकसित करना होगा, जो वैश्विक प्रतिस्पर्धा में सक्षम होने के साथ-साथ सांस्कृतिक रूप से आत्मनिर्भर भी हो। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारतीय ज्ञान परंपरा की ओर लौटने का अवसर है- एक ऐसा अवसर, जिसमें चूकना भावी पीढ़ियों के प्रति अन्याय होगा। आइए हम सभी अपनी भारतीय ज्ञान परंपरा की ओर उन्मुख हों। पुनः चर्चा होगी।

संगीत एवं अन्य कला के सुधी विद्वानों, जिज्ञासु अध्येताओं के समक्ष "भैरवी" शोध जर्नल का संयुक्तांक अंक उनतीस नए कलेवर में प्रस्तुत है। पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे, इसी आशा के साथ।

प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण
प्रधान संपादक
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा-846004 (बिहार)
मोबाइल- 9430063265/7903836047
ईमेल : *npushpamji@gmail.com*

अनुक्रम

	संपादक की कलम से ...		9
1.	लदाख अंचल की केसर-गाथा : एक अध्ययन	डॉ. राहुल मिश्र	15
2.	देश विदेश में राम कथा	डॉ. मधु	25
3.	ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्यों में संगीत	मेघना सिंह, डॉ. दीपक सिंह	30
4.	संगीत में नवाचार के प्रभाव और तकनीकों का योगदान: भारत देश के विशेष संदर्भ	डॉ. निशा पराशर	34
5.	बिहार की ज्ञान परंपरा में लोकसंगीत की भूमिका	डॉ. नीतीश रंजन	37
6.	तबले का फर्रुखाबाद घराना एवं वादन शैली की विशेषता	डॉ. प्रेम प्रकाश प्रजापति, डॉ. शोभित कुमार नाहर	46
7.	राग सृजन की गणितीय सम्भावना	रूपम बसाक, डॉ. श्यामा कुमारी	53
8.	भारतीय संगीत शिक्षण पद्धति की दो धाराएं : परम्परागत एवं संस्थागत	श्रीयानी पाण्डेय, डॉ. प्रेम किशोर मिश्रा	58
9.	मानव जीवन में संगीत का महत्व	प्रो. रेनू जौहरी, उदय नारायण पाण्डेय	63
10.	शास्त्रीय एवं अर्धशास्त्रीय विधाओं में तबला संगत: परंपरा, परिवर्तन और कला-यात्रा	अजय शर्मा, बी वर्षा	67
11.	भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वरलिपि पद्धति का ऐतिहासिक विकास तथा शैक्षणिक उपयोगिता	कु. दीपिका पटेल, डॉ. रश्मिका मिश्रा	75
12.	भारतीय शास्त्रीय संगीत का मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं शैक्षिक प्रभाव: एक समग्र विश्लेषण	डॉ.रोमिल जैन	80
13.	चित्रपट संगीत में सितार वाद्य का प्रयोग	पूनम कुमारी, डॉ. प्रेम किशोर मिश्र	90
14.	मध्यकाल के भक्ति गीतों में संगीत : एक उत्तम समन्वय एवं इसका सामाजिक प्रभाव	तेजस्विनी शर्मा	94
15.	श्रीमती शरण रानी : जीवन, साधना, वादन शैली एवं भारतीय सरोद परम्परा में ऐतिहासिक योगदान	डॉ. ममता यादव	98

16. किन्नौरा जनजाति के प्रमुख लोकगीत — डॉ. सरिता नेगी 106

17. सरोद वादन की परंपरा में महिला कलाकारों का योगदान: एक अध्ययन — हरिप्रिया, डॉ. रीता दास 114

18. यूट्यूब से इंस्टाग्राम तक : हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के युवा कलाकारों की डिजिटल यात्रा — विजेता शर्मा, डॉ.अश्विनी कुमार 119

19. पर्क और बर्हिष्य सामों की सांगीतिक समीक्षा (कौथुमीय मद्र पद्धति और उत्तर भारतीय संगीत के विशेष सन्दर्भ में) — पूर्वा जोशी 126

20. ऋतु-संस्कृति की मिसाल - चैती — डॉ. शीला झा 137

21. पं. भीमसेन जोशी की गायकी तथा नवाचार — डॉ. अभिषेक स्मिथ 142

22. झरनी लोकविधा: ऐतिहासिक-सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि में — पूजा कुमारी 151

23. Pandit Jasraj's Haveli Sangeet: Bridging Devotion and Stage — Anaida Naik, Dr. Shyama Kumari 156

24. Suhasini Koratkar - The Silent Torchbearer of the Bhendi Bazaar Gharana — Deepika Gadhekar, Prof. Suniti Dutta 164

25. Clinical And Aesthetic Impact of Music Therapy Sessions at Radiant Hospital Amravati: A Structured Interdisciplinary Study — Dr Ankush A. Giri 173

26. An Analytical Study of Sitar Techniques in the Maihar Seniya Gharana — Dr. Amandeep Kaur 182

27. Nava-Vidha Bhakti: A Bharatanatyam Perspective — Neha Kumari, Dr. Khileshwari Patel 186

28. NEP 2020 as a Catalysr for a New Era in Music Education — Puja Singh, Dr. Jaya Shahi 194

29 Beyond Form and Tradition: The Distinctive Raga Aesthetics of Kishori Amonkar — Sakshi Singh 201

30. Indigenous Knowledge in Kathak Pedagogy and Its Relevance in Higher Education — Ms. Shikha Ramesh, Prof. (Dr.) Vidhi Nagar 216

31. Exploring the Spiritual Essence of Raga in Sikh Gurbani Kirtan at the Golden Temple — Mr. Jaswinder Singh, Dr. Shyama Kumari 224

32. Mental Health and Music :
A Perspective on Disability — Dr.Kuldeep Raina — 234

33. Music as Identity Construction and Expression of Lgbtqia + Individuals with Special Reference to Varanasi : A Narrative Analysis. — Urmi Samaddar, Dr. K. Sashi Kumar — 239

34. The Heroic Hand in Motion: Aesthetic Logic, Character Modulation and Embodied Pedagogy in Kathakali Hastamudra Practice — Vrinda Sadasivan, Dr. Nilam Nandini Sarmah — 247

35. Arya Samaj's Contribution to Indian Culture — Prof. Pushpam Narain — 258

लदाख अंचल की केसर-गाथा : एक अध्ययन

डॉ. राहुल मिश्र

शोध-सारांश

लदाख अंचल समेत संपूर्ण हिमालयी परिक्षेत्र में प्रचलित विभिन्न लोकगीतों, यशोगाथाओं और कथाओं-किस्सों के विपुल भंडार के मध्य 'केसर-गाथा' का विशिष्ट स्थान है। केसर-गाथा को गेसर-सागा या केसर-सागा के नाम से भी जाना जाता है। केसर-गाथा श्रुत परंपरा के माध्यम से वर्षों तक संरक्षित रही है। आल्हा का गायन वर्षाकाल में होता है, तो केसर-गाथा शीतकाल में सुनी-सुनाई जाती है। इस गाथा के सामाजिक व सांस्कृतिक पक्ष भी हैं, साथ ही धार्मिक व ऐतिहासिक पक्ष भी हैं, जो समग्र हिमालयी परिक्षेत्र को जानने-समझने हेतु अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

बदलते परिवेश के साथ ही सूचना-संचार के आधुनिक संसाधनों के विस्तार ने केसर-गाथा को भी प्रभावित किया है। लदाख अंचल समूचे हिमालयी परिक्षेत्र में प्रचलित केसर-गाथा का अध्ययन-अनुशीलन इस परंपरागत लोक-साहित्य के विविध पक्षों को जानने व समझने के लिए उपयोगी होगा।

बीज-शब्द : *गाथा, लोक-जीवन, हिमालयी परिक्षेत्र, लद्दाख अंचल, महायान परंपरा, बोन धर्म आदि।*

शोध-आलेख

पावन-पुनीत सिंधु के जल से सिंचित लदाख अंचल अपनी विशिष्ट प्राकृतिक संरचना के साथ ही अपने अनूठे सांस्कृतिक सौंदर्य के लिए जाना जाता है। कैलास मानसरोवर से नि:सृत सिंधु नद अपने प्रवाह में हिमालय की उपत्यकाओं से होते हुए सिंधु सागर में विलीन होता है। आज के भू-राजनीतिक मानचित्र में भले ही यह अलग-अलग देशों व भौगोलिक पहचानों से जाना जाए, लेकिन समग्र रूप में यह लदाख का विशाल अंचल है, लदाख का परिक्षेत्र है। इसमें वर्तमान का चीन अधिकृत चङथङ का विशाल मैदान भी आ जाता है और पाक अधिकृत गिलगित, बल्टिस्थान आदि के क्षेत्र भी आ जाते हैं। "जनवरी, 1949 में भारत और पाकिस्तान के मध्य युद्ध विराम होने के पूर्व तक लदाख क्षेत्र के अंतर्गत तीन तहसीलें- लेह, कारगिल और स्करदो हुआ करती थीं।"[1]

डोगरा शासकों के समय में लदाख की दो राजधानियाँ हुआ करती थीं। लेह ग्रीष्मकालीन राजधानी थी और स्करदो शीतकालीन राजधानी होती थी। वर्तमान हिमाचल प्रदेश का लाहुल-स्पीति का क्षेत्र भी भौगोलिक व सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना में ऐक्य के कारण लदाख से अनुप्राणित रहा है। लदाख अंचल की परिधि वर्तमान भौगोलिक सीमांकन की दृष्टि से भले ही एक ओर रोहतांग और दूसरी ओर जोजीला

क्षेत्रीय निदेशक, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केंद्र- मुंबई, नवीन पनवेल- 410 206, रायगढ़, नवी मुंबई (महाराष्ट्र)। संपर्क- 9419 973 362, rahul.mishra378@gmail.com, http://bundela-desa-ke.blogspot.com

DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.001

दर्रे तक बताई जाए, लेकिन इसका सांस्कृतिक विस्तार और लदाख अंचल की सांस्कृतिक-सामाजिक-धार्मिक सीमाएँ उपरिवर्णित भौगौलिक विस्तार से साम्य रखती हैं। इतना ही नहीं, अतीत के अध्याय तो लदाख का विस्तार चीन तक बताते हैं।

अनेक पाश्चात्य इतिहासकारों ने तिब्बत के विशाल पठार की प्राकृतिक निर्मिति और इसके निवासियों के धार्मिक-सांस्कृतिक साम्य के अनुसार तिब्बत को एक इकाई मानकर अध्ययन किया है। फलत: पश्चिमी तिब्बत के रूप में जिस भौगोलिक इकाई को बताया गया है, वह वस्तुत: लदाख अंचल का अंग है। लदाख को छोटा तिब्बत कहे जाने का कारण भी यही है।

यह भौगोलिक परिचय लदाख अंचल के विस्तार के साथ ही हिमालयी परिक्षेत्र के इस अंचल की भौगोलिक विशिष्टता के साथ सांस्कृतिक विस्तार की ओर ध्यान आकृष्ट कराने हेतु प्रस्तुत किया गया है। लदाख अंचल के विशाल भौगोलिक विस्तार में जटिल व दुर्गम प्राकृतिक परिवेश भी कम नहीं है। इस जटिल व दुर्गम प्राकृतिक परिवेश और जीवन की दुरूहताओं के मध्य सांस्कृतिक विशिष्टता और ऐतिहासिक समृद्धि के विभिन्न प्रतीक यहाँ द्रष्टव्य हैं। दुर्गम मार्ग और कठिन प्रकृतिगत-जलवायुगत स्थितियाँ भी इन्हें रोक नहीं सकी हैं। संपूर्ण लदाख अंचल से लगाकर तिब्बत और पूर्वोत्तर भारत के हिमालयी परिक्षेत्र तक भाषा, भूषा, व्यवहार और विचार आदि की समानता-समरसता दिखाई देती है। धार्मिक मान्यताओं ने भी इस एकरूपता और एकसरता के प्रसार में बड़ा योगदान दिया है। इसमें लोक परंपरा में जीवंत गाथाएँ, किस्से, कथाएँ आदि भी आती हैं।

लदाख अंचल समेत संपूर्ण हिमालयी परिक्षेत्र में प्रचलित विभिन्न लोकगीतों, यशोगाथाओं और कथाओं-किस्सों के विपुल भंडार के मध्य 'केसर-गाथा' का विशिष्ट स्थान है। केसर-गाथा को गेसर-सागा या केसर-सागा के नाम से भी जाना जाता है। भाषा के अंतर के कारण केसर का उच्चारण गेसर के रूप में किया जाता है। तिब्बत और मंगोलिया में केसर का उच्चारण गेसर के रूप में होता है। मंगोलिया में गेसर खान के रूप में केसर की कथा प्रचलित है।

जाने-माने अंग्रेजी विद्वान और इतिहासकार आगस्ट हारमन फ्रैंके (ए.एच. फ्रैंके) ने लदाख अंचल का गहन अध्ययन किया है। लदाख में श्रुत परंपरा में चलने वाली केसर-गाथा का साहित्यिक, ऐतिहासिक व सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन उन्होंने किया है। उनकी एक पुस्तक है- 'ए लोअर लद्दाखी वर्जन ऑफ केसर-सागा'। इस पुस्तक में उन्होंने निचले लदाख (संभवत: लेह-श्रीनगर राजमार्ग पर स्थित खलचे गाँव) और लेह के निकट शे गाँव में प्राप्त केसर-गाथा के दो वाचिक संस्करणों का विश्लेषणपरक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें भोटभाषा में मूल संकलन के साथ ही अंग्रेजी में अनुवाद और टिप्पणियाँ हैं। इस पुस्तक के प्राक्कथन में कई महत्त्वपूर्ण और खोजपरक तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं। इसमें केसर-गाथा के नायक गेलम गेसर (केसर) की कर्मभूमि के साथ ही गाथा की उद्गम-भूमि की ओर संकेत किया गया है। इतिहासकार श्मिट की खोज का संदर्भ देते हुए कृति में उल्लेख किया गया है, कि- "स्मिट के बताने के अनुसार गाथा में स्थानों के नाम जहाँ तक संभव हो, तिब्बती क्षेत्र में खोजे जाने चाहिए, मंगोल क्षेत्र में नहीं। मौखिक संस्करणों में एक विशेष क्षेत्र (स्थान) का उल्लेख आता है, जो अत्यंत पवित्र भूमि है। यह विशेष क्षेत्र मानसरोवर झील और राकस ताल के आसपास है, जहाँ पवित्र कैलास पर्वत भी स्थित है। यह विशेष परिक्षेत्र पश्चिमी

तिब्बत से संबंध रखता है, जिसकी राजधानी लेह है। लोकगीतों के साथ ही अभिलेखीय साक्ष्यों में संपूर्ण पश्चिमी तिब्बत को गेसर का सिंहासन (ख्रोम-गे-सर-ग्दन-मा) कहा गया है। राजा लङ्-दरमा के पहले लेह के शासक स्वयं को गेसर का वंशज कहते थे।"[2]

पश्चिमी तिब्बत के नाम से जिस भू-क्षेत्र को फ्रैंके ने उल्लिखित किया है, वह वस्तुत: लदाख के चङथङ के मैदान से लगा हुआ वर्तमान शम और उसके निचले भू-भाग से लगाकर जङ्स्कर की घाटी तक का क्षेत्र है। भौगोलिक बनावट के साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक साम्य के कारण कहीं-कहीं पर इस क्षेत्र को पश्चिमी तिब्बत भी कहा गया है। 'तिब्बतन सिविलाइजेशन' नामक अपनी पुस्तक में प्रो. रोल्फ अल्फ्रेड स्टेन लिखते हैं, कि- "यरलुंग त्सांगपो के तटीय क्षेत्र में यारलुंग राज्य के पश्चिम में तिब्बतियों का सामना शङशुङ नामक राज्य से हुआ। संस्कृति, भाषा और अन्य संदर्भों में यह राज्य मंगोलियाई तिब्बतियों से एकदम अलग था। इसकी भाषा हमें प्रारंभिक अभिलेखों से पता चलती है। यह अभी भी अज्ञात है, लेकिन यह भारोपीय भाषा परिवार की लगती है। कैलास पर्वत और मानसरोवर झील इसी राज्य के भाग थे। यह राज्य काश्मीर और भारत सहित नेपाल से जुड़ा हुआ था। भारत से अनेक लोग तीर्थयात्रा के लिए यहाँ आते थे।"[3] प्रो. स्टेन ने आगे यह भी उल्लेख किया है, कि इस क्षेत्र की सीमा रेखा कितनी और कहाँ तक थी, यह बताना कठिन है, फिर भी तिब्बती इतिहासकार आंशिक रूप से इसे चङथङ के पठार से जोड़कर देखते हैं। इस तथ्य से लदाख अंचल और तिब्बत की भौगौलिक स्थिति का आकलन लगाया जा सकता है। एक अन्य प्रमुख तथ्य, जिसे प्रो. स्टेन और फ्रैंके, दोनों ने स्थापित किया है, कि तिब्बत में लामावाद से पूर्व बोन धर्म अस्तित्व में था। बोन धर्म लदाख में प्रचलित था, और जिस भौगोलिक क्षेत्र को पश्चिमी तिब्बत कहा गया है, वह क्षेत्र बोन धर्म का केंद्र रहा है। प्रो. स्टेन लिखते हैं- "तिब्बती सभ्यता व परंपरा में शङ-शुङ की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह एक ऐसे धर्म (बोन धर्म) का घर है, जिसे तिब्बतियों ने बौद्ध धर्म से पहले अपनाया था।"[4] तिब्बत में बौद्धधर्म (जिसे अंग्रेज इतिहासकारों ने लामावाद भी कहा है) के प्रसार से पूर्व बोन धर्म प्रचलित था। लदाख अंचल में भी इस धर्म का विस्तार था। आज भी लेह के निकट चोगलमसर नामक स्थान पर बोन धर्म का एक छोटा-सा मंदिर है, जिसमें बोन धर्म के अनुयायी पूजा-पाठ आदि करते हैं।

बोन धर्म और केसर-गाथा का गहरा संबंध माना जाता है। 'ग्लिङ-चोस' बोन धर्म की पौराणिक कथा है, जिसमें तीन लोकों- आकाश, पृथ्वी और पाताल का वर्णन आता है। इन तीनों को प्रस्तुत करने के लिए रंगों का विधान है। आकाश देवताओं के लिए है, पृथ्वी मानवों के लिए और पाताल नागलोक के रूप में है। इसी तरह चारों दिशाओं के लिए लोकपालों- अमोघसिद्धि, वज्रसत्त्व, सत्नसंभव और अमिताभ का उल्लेख 'ग्लिङ-चोस' में आता है। इसमें 'सेङ्गे' नाम फिरोजी चित्तीदार सफेद शेरनी के लिए आता है। केसर को शिक्षा देने वाले लोहार का नाम हेमिस है। हेमिस संस्कृत के हिम शब्द से संबंध रखता है। इसी तरह राम, सीता और इंद्र आदि के प्रतीकों की उपस्थिति 'ग्लिङ-चोस' में है।[5]

उपरोक्त तथ्य बोन धर्म की पुरातनता के साथ ही इसके भारतीय धर्म-दर्शन-चिंतन से संबंध को स्पष्ट करते हैं। बोन धर्म के पौराणिक काव्य-ग्लिङ-चोस में वर्णित नाग लोक के सांस्कृतिक प्रतीक लदाख में मिलते हैं। लद्दाखी महिलाओं

DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.001

का परंपरागत आभूषण- पेराग नाग के फन के सदृश होता है, जिसमें फिरोजा इत्यादि रत्न जड़े होते हैं और महिलाएँ इसे सिर में धारण करती हैं। इसके साथ ही केसर-गाथा में वर्णित बोन धर्म के दैव-मंडल और दैवीय शक्तियों, कथाओं आदि से यह भी स्पष्ट होता है, कि बौद्ध धर्म (विशेषकर महायानी बौद्ध परंपरा) के विस्तार से पूर्व केसर-गाथा लोक-परंपरा में प्रचलित थी।

लदाख में बौद्ध धर्म के विस्तार के साथ ही बोन धर्म के घटते प्रभाव को जानना भी यहाँ अपेक्षित होगा। इस संदर्भ में प्रो. जामयांग ग्यालसन लिखते हैं- "दसवीं शताब्दी में राजा ठ्रिस्रोङ्-देचेन ने भारतीय बौद्ध विद्वानों- पद्मसंभव, शांतिरक्षित आदि को तिब्बत आमंत्रित किया। पद्मसंभव ने तिब्बत में समये मठ स्थापित किया। वे जब मठ के निर्माण का कार्य करते, तब बुरी शक्तियाँ इसे गिरा देतीं। ऐसा कई बार हुआ। अंत में पद्मसंभव ने उसने मित्रता का अनुरोध किया, ताकि उन्हें बौद्ध देवी-देवताओं जैसा सामाजिक और धार्मिक स्थान दे सकें। बोन धर्म की आत्माओं ने पद्मसंभव के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। इसके बाद उन्होंने विध्वंसक गतिविधियों को रोक दिया। इस तरह पद्मसंभव लदाख में बौद्ध धर्म को फैलाने में सफल हुए। इस घटना के बाद लदाख और तिब्बत में बोन धर्म की पकड़ कमजोर होती गई। 10वीं शताब्दी के बाद लदाख में बौद्ध धर्म बहुत लोकप्रिय हुआ।"[6]

आचार्य पद्मसंभव और राजा केसर की भेंट को लेकर लदाख में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। ये जनश्रुतियाँ न केवल केसर-गाथा के काल-निर्णय की दृष्टि से महत्त्व रखती हैं, वरन् केसर-गाथा की मूल भूमि एवं अन्य सामाजिक-ऐतिहासिक संदर्भों के लिए भी विशेष महत्त्व की हैं। राजा केसर को लदाख में गेलम गेसर, गेसर ग्यालपो नोरबू डादुल, गेसर लिङ् नोरबू डादुल, लिङ् गेसर राजा आदि नामों से भी जाना जाता है। ये विभिन्न नाम तिब्बती भाषा और तिब्बती समाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों के कारण अस्तित्व में आए होंगे, ऐसा माना जा सकता है। लदाख में केसर-गाथा के अध्येता और केसर-गाथा के दो अलग-अलग संस्करणों के संग्रहकर्ता डॉ. ए.एच. फ्रेंके ने केसर और केसर-सागा (केसर-गाथा) नामों का ही प्रयोग किया है।

लदाख में प्रचलित जनश्रुतियों के अनुसार आचार्य पद्मसंभव और राजा केसर की भेंट लदाख की निमो घाटी में हुई थी। "एक किंवदंती के अनुसार आचार्य पद्मसंभव लदाख-यात्रा के दौरान जब ऊपरी लदाख से निचले लदाख की ओर जा रहे थे, इसी दौरान ञेमो नामक गाँव पहुँचने से पहले एक जल-स्रोत के पास उनकी मुलाकात गेसर नोरबू डादुल से हुई थी। गेसर नोरबू डादुल निचले लदाख से ऊपरी लदाख की ओर जा रहे थे। इस जल-स्रोत पर दोनों की मुलाकात हुई तो दोनों ने अपनी मुलाकात को मंगल मानते हुए इस जल-स्रोत को मंगल मानते हुए इस जल स्रोत का नाम र्तेन-डेल छुमिग अर्थात् मंगल जल-स्रोत रखा।"[7]

लेह से श्रीनगर राजमार्ग की ओर चलते समय निमो गाँव के आगे अत्यंत रमणीक घास का मैदान है और इस मैदान से लगी ऊँची पहाड़ी में प्राकृतिक जल-स्रोत आज भी देखा जा सकता है। इस जल-स्रोत का पानी औषधीय गुणों से युक्त है। इस जल-स्रोत के निकट ही गुरुद्वारा पत्थर साहिब है। गुरु नानक की यात्रा का प्रसंग गुरुद्वारा पत्थर साहिब से जुड़ा है। यह पवित्र स्थान आचार्य पद्मसंभव से भी जुड़ा हुआ है। मान्यता है, कि यहाँ एक ऊँची पहाड़ी पर एक राक्षसी रहती थी, जिसने गुरु पद्मसंभव के ऊपर एक शिलाखंड फेंक दिया था, जो उनके शिरस्त्राण से टकराकर पिघल गया। इससे पत्थर

में शिरस्त्राण की आकृति बन गई। गुरुदारा पत्थर साहिब में इसे आज भी देखा जा सकता है। बौद्ध धर्म के चार संप्रदायों में से प्राचीनतम और प्रमुख ञिङ्मा संप्रदाय है। गुरु पद्मसंभव इस संप्रदाय में प्रमुख देव के रूप में पूजे जाते हैं। उन्हें गुरु रिनपोछे कहा जाता है। इस दृष्टि से धर्मभीरु समाज, विशेषकर ञिङ्मा संप्रदाय और सिख पंथ के आस्थावान लोग आज भी गुरु रिनपोछे और नानक लामा के इस पवित्र देवस्थान में दर्शनार्थ जाते हैं।

यह किंवदंती अपने स्थान-परिचय के साथ ही ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती है। कुछ मान्यताओं के अनुसार गेलम गेसर को आचार्य पद्मसंभव का अवतार भी माना जाता है। "तिब्बत में राजा ठ्रिस्रोङ्-देचेन के शासनकाल में गुरु पद्मसंभव ने राक्षसों आदि अशुभ शक्तियों को तीन बार पराभूत करने की प्रतिज्ञा की थी। यह कार्य उनके शक्तिशाली होने के कारण केवल दो बार ही हो पाया। आसुरी शक्तियों के विपरीत प्रणिधान के कारण होर देश में गुर-कर-ग्यलपो, पश्चिम में राजा साथम, तिब्बत के दक्षिण प्रदेश में राज ठि-शिङ आदि अट्ठारह प्रदेशों में इन शक्तियों ने राजाओं के रूप में जन्म लिया। उन्होंने जनता को पीड़ित करने तथा उसके सुख को नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जनता के दारुण दु:ख को देखते हुए गुरु रिनपोछे ने गेसर राजा के रूप में तथा उनके शिष्यों ने भारतीय पंडितों के रूप में जन्म ग्रहण किया। गेसर ने अपने ऋद्धिबल से दुष्टों का दमन करके धर्मशासन की स्थापना की एवं जनकल्याण के अनेक कार्यों को संपन्न किया।"[8]

ऐसी मान्यता है, कि गुरु पद्मसंभव द्वारा जाङ्स्कर क्षेत्र में कनिका स्तूप के पास महाश्मशान में बड़ी तांत्रिक पूजा करके आसुरी शक्तियों को नष्ट किया था और धर्मशासन स्थापित किया था। ञेमो गाँव के निकट राजा केसर की भेंट और लदाख में धर्मशासन की स्थापना के लिए गुरु पद्मसंभव और राजा गेसर की सक्रियता बोन धर्म से बौद्ध धर्म की ओर प्रस्थान के विविध संदर्भों की ओर इंगित करती है। ये प्रसंग लदाख और तिब्बत में धार्मिक क्रांति के साथ ही धर्मसत्ता की स्थापना की ओर इंगित करते हैं। बाद के वर्षों में लदाख और तिब्बत में धर्माधिकारी का पद राजा से श्रेष्ठ होता गया। संभवत: इसी परिवर्तन के कारण अंग्रेज इतिहासकारों व अध्ययनकर्ताओं द्वारा लामावाद का मत दिया गया है। इस बदलाव के कारण संभवत: केसर-गाथा के तिब्बती संस्करण में धार्मिक पक्ष अधिक प्रबल प्रतीत होता है।

ए. एच. फ्रैंके की पुस्तक- 'अ लोअर लदाखी वर्जन आफ द केसर-सागा' में प्रो. सुनीति कुमार चटर्जी ने विस्तृत परिचय लिखा है। इसमें वे फ्रेंके के अन्वेषण के आधार पर लिखते हैं, कि- "केसर की कथा जिन विभिन्न रूपों में पाई गई है, उनमें से ए. एच. फ्रैंके द्वारा लदाख में प्राप्त कविताएँ और लघु गद्य व पद्य कथाएँ (दो संस्करणों में) निस्संदेह कथा के सबसे छोटे और सबसे सुंदर संस्करण प्रस्तुत करती हैं, और संभवत: सबसे प्राचीन भी; निस्संदेह, इन संस्करणों में बौद्ध धारणाओं और पौराणिक कथाओं का सबसे कम मिश्रण दिखाई देता है। अन्य संस्करण-गायकों द्वारा सुनाई गई लंबी कथाएँ और विशाल लिखित ग्रंथ, कथा के अत्यधिक विस्तार और उसके साथ-साथ उसके ह्रास को दर्शाते हैं। इसके अलावा इन बड़े संस्करणों में केसर की कथा लामावादी विचारों और पौराणिक कथाओं के साथ बहुत गहराई से गुँथी हुई है। लदाख से प्राप्त कविताओं और छोटे संस्करणों की तुलना में लंबी कथाओं का परिवेश बिलकुल अलग है। इन लंबे संस्करणों

DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.001

में लामावादी वातावरण ने वास्तव में कथा को बौद्ध विद्वानों का अनुमोदन प्राप्त करने और फलस्वरूप, जनप्रिय बने रहने में सक्षम बनाया है। लेकिन लदाख की कविताओं और पाठों में, जैसा कि फ्रैंके ने स्पष्ट किया है, बौद्ध या लामावादी भावना, चाहे वह लोक की हो या धार्मिक, पूरी तरह से अनुपस्थित प्रतीत होती है। नि:संदेह, एक हजार वर्ष से भी अधिक समय से स्थापित बौद्ध धर्म के संदर्भों को इस विशाल संग्रह में शामिल किए बिना नहीं रहा जा सकता था। लेकिन इसकी धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बौद्ध-पूर्व बोन जगत की है। दूसरे शब्दों में, फ्रैंके द्वारा लदाख में खोजी गई कविताओं और पाठों में केसर-गाथा को जिस सरलतम और सुंदर रूप में पाया गया है, उससे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि तिब्बतियों द्वारा बौद्ध धर्म को सामान्य रूप से स्वीकार किए जाने से पहले इस गाथा का उदय बोन धर्म की गोद में हुआ था।"[9]

लदाख की सांस्कृतिक व सामाजिक संरचना में केसर की उपस्थिति चरित-नायक के रूप में है। विशेष रूप से लोक-जीवन में राजा केसर का शौर्यभाव केसर के अवतारी धार्मिक स्वरूप की अपेक्षा अधिक निखरता है। यद्यपि लदाख की धार्मिक आस्था में भी वे जिनपुत्र और त्रिकुलनाथ (अवलोकितेश्वर, मञ्जुश्री, वज्रपाणि) के अवतार माने जाते हैं, लेकिन लोक-साहित्य उन्हें पराक्रमी व शौर्यवान राजा के रूप में देखता है। लदाख के चङथङ क्षेत्र में लेह से लगभग 125 किमी. दूर गेसर नामक गाँव है। लदाख की परंपरानुसार गाँव के नाम पर यहाँ एक गोनपा (बौद्ध पूजाघर) भी है, जिसे गेसर गोनपा के नाम से जाना जाता है। इस गाँव में ऐसी मान्यता है कि पराक्रमी राजा केसर ने यहाँ पर एक राक्षसी का वध किया था और उसे एक संदूक में रखकर दबा दिया था।[10] इसी प्रकार चङथङ क्षेत्र के ञी नामक गाँव का अतीत राजा गेसर से जुड़ा है। ञी गाँव में राजा केसर द्वारा निर्मित महल के अवशेष हैं। तिब्बत-लदाख युद्ध के समय इस महल की बहुत क्षति हुई थी। किंवदंती है, कि ञी गाँव में रहते हुए राजा केसर ने तीन पत्थरों को जोड़कर एक चूल्हा बनाया था। इस गाँव में उनके चूल्हे वाला पत्थर और भाला आदि आज भी विद्यमान हैं।[11]

लदाख के विभिन्न स्थानों में केसर-गाथा के अनेक प्रतीक मिलते हैं। इसके साथ ही श्रुत परंपरा में केसर-गाथा को जीवंत रखने वाली पीढ़ियाँ भी लदाख के प्राय: सभी गाँवों में मिलती हैं। लदाख का कोई भी ऐसा गाँव नहीं होगा, जहाँ केसर (गेलम गेसर) की गाथा प्रचलित न हो। बदलते समय और आधुनिकता के दौर में लदाख के गाँव भी बदलाव से अछूते नहीं रहे हैं। मैंने लदाख में काफी समय बिताया है, और संयोगवश दुर्गम ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचने का अवसर भी मुझे मिला है। टूटी-फूटी हिंदी में, या किसी नवयुवक की सहायता से बोलचाल की भोटी भाषा के अनुवाद से गेलम गेसर के बारे में गाँवों के वयोवृद्ध लोगों से केसर गाथा के लोक-प्रचलित किस्सों के साथ ही इससे जुड़ी लोक-मान्यताओं को जानने का अवसर भी मिला है। लामायुरू गाँव के एक वृद्ध महाशय ने सामान्य वार्ता में बड़े रुचिकर ढंग से बताया था, कि अगर आप गर्मियों के मौसम में किसी से केसर की कथा सुनाने के लिए कहेंगे, तो वह कभी भी नहीं सुनाएगा, क्योंकि अगर आसपास के लोगों को केसर की कथा सुने-सुनाए जाने का पता चलेगा, तो वे अपना सारा काम छोड़ करके कथा सुनने बैठ जाएँगे। वृद्ध महाशय ने तो यहाँ तक कहा, कि मनुष्य ही नहीं, जानवर और पशु-पक्षी भी केसर-गाथा को सुनने के लिए इकट्ठे हो जाते हैं। यह कथन लदाख अंचल में केसर-गाथा की लोकप्रियता को उद्घाटित करता है।

लदाख की विशिष्ट दरद प्रजाति, जिसे सामान्यत: आर्य के नाम से जानते हैं, अपने वीरों की गाथाओं को आज भी बहुत अच्छी तरह से सँजोए हुए है। वाचिक परंपरा में ये गाथाएँ आज भी जीवंत हैं। आज भी वृद्ध ड्रोगपा पुरुष बड़े चाव से राजा केसर की कथा सुनाते मिल जाएँगे। मुझे भी एक वृद्ध महाशय से राजा केसर के बारे में जानने का अवसर मिला था। उन्होंने बताया था, कि केसर देवता थे, जिन्होंने हमारे लिए मानव का रूप लिया था। राजा केसर को चिकित्सा का भी ज्ञान था। उन्होंने लोगों की भलाई के लिए अनेक युद्ध किए और अपना राज्य स्थापित किया। अपनी प्रजा की सुख-शांति के लिए वे युद्ध के अभियानों में जाते थे।

बल्टिस्थान के अंतर्गत चिगतन के गवैये केसर-गाथा के गायन के लिए प्रसिद्ध थे। "लदाख तथा पुरिग (करगिल) में गेसर-गाथा के कई कथाकार केसर की संपूर्ण कथा जानते हैं। कुछ कथाकार गाथा के कुछ अंशों को ही जानते हैं। लिङ्ग के अठारह वीरों का जन्म, गोग-सा ल्हामो से केसर का जन्म, सेङ्चम डुगुमा से केसर का विवाह, चीन के राजा से युद्ध, खबपा लगरिङ् नामक मार को नष्ट करना, रौद्र रूप धारण करके मंगोलिया के क्रूर राजा पर विजय प्राप्त करना आदि केसर के शांत एवं रौद्र रूपों से संबंधित गाथा के अंशों को लोगों के मध्य सुनाने की परंपरा है।"[12]

लोक-महाकाव्य आल्हा की भाँति केसर-गाथा के कुछ खंड ही अधिक गाए जाते हैं, फलत: वाचिक परंपरा में इन्हीं खंडों का गायन लदाख अंचल में शीतकाल में होता है। उपरोक्त वर्णित कथाओं के अतिरिक्त लिङर राज्य की स्थापना (केसर द्वारा छोटे-छोटे गाँवों व क्षेत्रों को संगठित कर लिङर राज्य स्थापित करना), मोयन शान्तुक का विवाह (वीरोचित गुणों का प्रदर्शन कर स्वयंवर पद्धति से राजा केसर के विवाह का प्रसंग), चासो मिगमर पक्षी का वध (भीमकाय और अद्भुत चासो मिगमर पक्षी से लिङर राज्य को बचाना और उससे प्राप्त रत्न, बहुमूल्य धातु आदि को प्रजाजनों को बाँटना), मोयन शान्तुक का राज्याभिषेक (अनेक संघर्ष और आसुरी शक्तियों को पराजित कर केसर द्वारा राज्य प्राप्त किया जाना), दुदयुल की यात्रा और दुद की पराजय (आततायी दैत्याकार दुद को उसके राज्य में जाकर मारना और वहाँ की जनता को भयमुक्त करना), लिङर पर होर आक्रमण (केसर के लिङर राज्य पर होरों का आक्रमण), केसर की होरयुल की यात्रा (होरों को पराजित करने के लिए केसर का अभियान), होरयुल में लोहार-पुत्र के रूप में केसर (छद्म रूप धरकर होरयुल में प्रवेश करना और उचित समय पर आक्रमण करके होर देश को जीतना), तीन फसपुनों की होर यात्रा (केसर को लाने के लिए तीन फसपुनों की होर यात्रा और केसर की लिङर वापसी) आदि महत्त्वपूर्ण अंश हैं, जिन्हें सुना-सुनाया जाता है।

लदाख में 'दा-चेस्', अर्थात् तीरंदाजी का उत्सव विशेष रूप से मनाया जाता है। इस उत्सव का संबंध केसर-गाथा और राजा केसर से जुड़ा हुआ है। केसर-गाथा के संकलन में फ्रेंके ने विभिन्न स्थानों पर धनुर्विद्या का उल्लेख किया है। जाङ्स्कर के अश्व सबसे अच्छे माने जाते हैं। लदाख के प्रसिद्ध पोलो खेल के पीछे यहाँ की अश्वारोहण की कला का योगदान है। केसर-गाथा में राजा केसर की अप्रतिम घुड़सवारी के कई वर्णन आते हैं। इसी प्रकार धनुष चलाने का कौशल लद्दाखी लोगों में बचपन से ही आ जाता है, क्योंकि धनुर्विद्या लदाख के पर्व-त्योहारों के साथ जुड़ी होने के साथ ही रीति-रिवाजों से भी जुड़ी है। किसी भी शुभ कार्य में तीर

DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.001

(बाण, लद्दाखी में- 'दा') सम्मिलित होता है। लदाख के विद्वान प्रो. जामयांग ग्यालसन ने एक अनौपचारिक साक्षात्कार में बताया था, कि- "अन्य समाजों की तरह लदाख में भी वीरों की गाथाएँ गाई जाती हैं। तीरंदाजी और पोलो जैसे खेल यही दर्शाते हैं। ये राजा केसर के वीरतापूर्ण कामों से जुड़े हैं। दा-चेस् (तीरंदाजी का पर्व) में केसर-गाथा का प्रभाव है। लदाख में प्रचलित गिङ-लू (वीरों के गीत) में राजा केसर की वीरता का वर्णन होता है। इन गीतों को लोग जोश के साथ गाते हैं।"[13]

लद्दाखी भाषा में गीतों को 'लू' और 'मोनलम' आदि कहते हैं। अलग-अलग अवसरों, पर्व-त्योहारों व कामों के लिए अलग-अलग गीत होते हैं। 'सोलवा मोनलम' फसल की तैयारी के गीत होते हैं। इन गीतों में धान्याधिपति (मा-मा) के साथ राजा केसर की प्रार्थना भी होती है। हिंदी अनुवाद सहित सोलवा मोनलम की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

ओङस्-हबङस् योङस्-हबङस्।
म-म ओङस्-सि ग्र्यल-पोई लग-न।
ओङस्-हबङस् योङस्-हबङस्।
गेसर द्मग-गी ग्र्यल-पोई लग-न।
ओङस्-हबङस् योङस्-हबङस्।
म-म ओङस्-सि ग्र्यल-पोई लग-न।[14]
+ + +
धान्याधिपति 'मा-मा' राजा की
कृपा से
हो अभिवृद्धि
धनधान्य संपदा की।।
रणाधिपति केसर (गेसर) राजा की
अनुकंपा से
हो अभिवृद्धि
धनधान्य संपदा की।
धान्याधिपति 'मा-मा' राजा की
कृपा से
हो अभिवृद्धि
धनधान्य संपदा की।।[15]

उल्लेखनीय है, कि उपरोक्त गीत में राजा केसर को रणाधिपति कहा गया है, जो उनके शौर्य व पराक्रम का द्योतक है। ऐसे अनेक गीतों में राजा केसर का वर्णन आता है। केसर-गाथा चंपू-काव्य है। इसमें गद्यात्मक प्रसंगों के साथ ही गीतों का बड़ा अंश है।

लदाख अंचल के साथ ही तिब्बत, मंगोलिया, चीन और पूर्वोत्तर भारत के हिमालयी परिक्षेत्र तक केसर-गाथा का विस्तार है। यदि व्यापक रूप में देखें, तो संपूर्ण मध्य एशिया में किसी-न-किसी रूप में यह वीरगाथा प्राप्त होती है। श्रुत परंपरा के माध्यम से यह गाथा अलग-अलग स्थानों में पहुँचकर स्थानीय कलेवर में ढलती गई और व्यवहृत होती गई। विभिन्न संकलनकर्ताओं ने श्रुतलेख तैयार किए। फ्रेंके ने लदाख के खलचे और शे में प्रचलित केसर-गाथा को संकलित किया। इसके साथ ही उन्होंने लदाख के अनेक गाँवों में गाई जाने वाली केसर-गाथा के अंशों के साथ ही ग्लिङ-लू (केसर के यशोगीत) और विवाह संस्कारों-रीतियों को संकलित किया। इनका केसर-गाथा के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया। "फ्रेंके का यह मानना था कि लदाख केसर गाथा का जन्मस्थान है। उन्होंने तर्क दिए कि 1. केसर गाथा के मौखिक संस्करण (लदाख के) हर गाँव से संकलित किए जा सकते हैं। 2. केसर और उनके योद्धा धार्मिक संस्कारों (जैसे विवाह संस्कार) से जुड़े हैं और उनमें से ही कुछ की देवताओं के रूप में पूजा की जाती है। 3. इसके साथ ही, लेह (लदाख की राजधानी) के पूर्व शासक गेसर को अपना

पूर्वज मानते हैं।"[16] उल्लेखनीय है, कि लदाख में ग्या गाँव में गणतांत्रिक शासन पद्धति के सूत्र मिलते हैं। वहाँ के चुने हुए शासक को ग्यालपो कहा जाता है। अतीत में यहाँ ग्यापा-जो-वो का शासन था, जिसने सिङकङ के आक्रमण के समय स्कीद-दे-ञिमा गोन से सैन्य शक्ति माँगी थी। ङरिस और लदाख ने मिलकर सिङकङ को युद्ध में हरा दिया था। बाद में ग्यापा-जो-वो ने प्रसन्न होकर शे तथा ठिकसे के खाली भूभाग को ञिमा-गोन को भेंट में दे दिया था। लदाख के इतिहास में यह घटना विशेष महत्त्व रखती है। ग्यापा-जो-वो के संदर्भ के साथ ही केसर के वंशजों का उल्लेख लदाख के इतिहासकार टशी रबज्ञस ने किया है। वे लिखते हैं, कि- "लदाख के ऊपरी इलाके के ग्यापा-जो-वो केसर के वंशज हैं, ऐसा प्रतीत होता है। जङ्स्कार में भी केसर के वंशज रहे होंगे ऐसा वर्णन आता है।"[17]

फ्रेंके द्वारा लदाख में प्रचलित केसर-गाथा के संबंध में प्रस्तुत तर्क, लदाख के इतिहास-ग्रंथों में प्राप्त वर्णन के साथ ही लोक-जीवन और लोक-संस्कृति में व्यवहृत विभिन्न मान्यताएँ, रीति-रिवाज और कथा-प्रसंग आदि सिद्ध करते हैं, कि केसर गाथा का उद्भव सातवीं-आठवीं शती. में (कुछ विद्वान दसवीं-ग्यारहवीं शती. भी मानते हैं।) लदाख की धरती पर हुआ है। इस पर विद्वानों के अलग-अलग तर्क हो सकते हैं। शोध की संभावनाएँ इस विषय में तलाशी जा सकती हैं, जो केसर-गाथा के सहारे समग्र हिमालयी परिक्षेत्र के अज्ञात-अल्पज्ञात अतीत को सामने लाने का माध्यम बन सकती हैं।

समग्रत:, केसर-गाथा लदाख की अपनी थाती है, धरोहर है। लदाख के लोक-जीवन में, लदाख की अनूठी संस्कृति के अंग के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती केसर-गाथा लदाख की वीर-प्रसूता धरा का ऐसा आख्यान है, जिसमें शौर्य और पराक्रम के साथ ही विपरीत परिस्थिति में संघर्ष की अदम्य इच्छाशक्ति परिलक्षित होती है। सहृदयता और मानवता के गुण प्रकट होते हैं। आज के आधुनिकता और आपाधापी से भरे जीवन में ऐसी पुरातन-परंपरागत अनेक धरोहरों के अस्तित्व का संकट दिखता है। आज केसर-गाथा के गवैये बहुत कम मिलते हैं। शीतकाल में घर के अंदर बने बड़े-बड़े रसोई घरों के पुराने लकड़ी और उपले वाले देशी चूल्हों की ऊष्णता के बीच परिवार के लोगों और परिचितों-नातेदारों के साथ बैठकर केसर-गाथा और लू (लद्दाखी गीत) आदि सुनने-सुनाने की परिपाटी सिमटती जा रही है। आधुनिकता ने बहुत कुछ बदला है, और अनेक बदलावों के मुहाने पर समाज खड़ा है। ऐसे विषम समय में आवश्यकता है, कि केसर-गाथा सहित लदाख अंचल की अन्य विरुदावलियों, यहाँ के यशोगीतों को संकलित किया जाए, वाचिक परंपरा को सहेजा जाए, इनका अनुवाद किया जाए और नई पीढ़ी को इनके बारे में बताते हुए जागरूक किया जाए।

संदर्भ-

1. श्रीधर कौल एवं एच.एन कौल, जियोग्राफिकल प्रोफाइल, लदाख थ्रू द एजेस, इंदस् पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली, प्रथम सं. 1991, पृ. 20,
2. ए. एच. फ्रेंके, ए लोअर लद्दाखी वर्जन ऑफ केसर-सागा, एशियन एजूकेशनल सर्विसेज, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण 2000, पृ. XXX,
3. रोल्फ अल्फ्रेड स्टेन, तिब्बतन सिविलाइजेशन, स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, स्टेनफोर्ड, कैलीफोर्निया, सं. 1972, पृ. 35,
4. वही, पृ. 35,
5. ग्लिङ-चोस, एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथिक्स, वाल्यूम-7 और 8, संपा. जेम्स हेस्टिंग्स, चार्ल्स स्क्राइबर्स संस, न्यूयार्क, सं. 1951, पृ. 76-78,

DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.001

6. प्रो. जामयांग ग्यालसन, बुद्धिज्म एंड मड्-टो मोनेस्ट्री आफ लदाख, रीसेंट रिसर्चेस ऑन द हिमालय, संपा. प्रेम सिंह जीना, इंदस पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली सं. 1997, पृ. 78-79,
7. हिमालयी बौद्ध संस्कृति कोश, खंड- 2, लदाख, भाग- 2, प्रधान संपादक प्रो. रमेश चंद्र तिवारी, केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह (लदाख), सं. 2011, पृ. 748,
8. वही, पृ. 1084-1085,
9. सुनीति कुमार चटर्जी, परिचय, ए लोअर लद्दाखी वर्जन ऑफ केसर-सागा (लेखक- ए. एच. फ्रेंके), एशियन एजूकेशनल सर्विसेज, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण 2000, पृ. XVIII-XIX,
10. गेसर गोनपा, हिमालयी बौद्ध संस्कृति कोश, खंड- 2, लदाख, भाग- 1, प्रधान संपादक प्रो. रमेश चंद्र तिवारी, केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह (लदाख), सं. 2011, पृ. 418,
11. वही, पृ. 419,
12. हिमालयी बौद्ध संस्कृति कोश, खंड- 2, लदाख, भाग- 2, प्रधान संपादक प्रो. रमेश चंद्र तिवारी, केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह (लदाख), सं. 2011, पृ. 1086,
13. अनौपचारिक साक्षात्कार, प्रो. जामयांग ग्यालसन (सेवानिवृत्त), केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह,वर्ष- 2020,
14. हिमालयी बौद्ध संस्कृति कोश, खंड- 2, लदाख, भाग- 2, प्रधान संपादक प्रो. रमेश चंद्र तिवारी, केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह (लदाख), सं. 2011, पृ. 1171,
15. वही, पृ. 1172-1173,
16. सिल्क हरमन, द लाइफ एंड हिस्ट्री आफ द एपिक किंग गेसर इन लदाख, रिलीजन, मिथ एंड फोकलोर इन द वर्ल्स एपिक, रिलीडन एंड सोसायटी-30, संपा. लॉरी होन्को, माउटन डे ग्रुइटर, बर्लिन, सं. 1990, पृ. 496-497,
17. टशी रबज्ञस, स्कियद-ल्दे-ञिमा-गोन, मरयुल लदाख के इतिहास का सर्वप्रकाशकादर्श (हिंदी अनुवाद), केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह, सं. 2014, पृ. 28।

DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.002

देश विदेश में राम कथा

डॉ. मधु

शोध-सार

रामकथा भारतीय संस्कृति की अमर धरोहर है, जिसकी सेवा-पर्चार्य देश-विदेश में अनवरत चली आ रही है। सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकि ने संस्कृत में रामायण की रचना कर श्रीराम के उदात्त, धर्मरक्षक, सदाचारी तथा सर्वगुण-संपन्न चरित्र को विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के माध्यम से रामभक्ति को जन-जन तक पहुँचाया और "राम से अधिक राम कर दासा" की भावना को प्रतिष्ठित किया। श्रीराम का चरित्र न केवल हिन्दू समाज का आदर्श है, अपितु मुस्लिम कवियों जैसे अमीर खुसरो ने भी उनके गुणगान किए। भारत में रामकथा विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं एवं लोक परंपराओं में जीवंत है। दक्षिण भारत विशेषकर आंध्र प्रदेश में राम की पूजा प्राचीन काल से प्रचलित है तथा हरिकथा, बुर्राकथा, यक्षगान, बोम्मलाट आदि लोक रूपों में रामकथा प्रस्तुत की जाती है। रामकथा केवल भारत तक सीमित नहीं रही, यह एशिया का महाकाव्य बन गई। संस्कृत से अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद के बाद यह दक्षिण-पूर्व एशिया, मध्य एशिया तथा सुदूर देशों तक पहुँची। इंडोनेशिया में ककविन रामायण तथा वायंग छाया नाटक, थाईलैंड में रामकियेन नृत्य-नाट्य, लाओस में फा लक फा लम्, मलेशिया में हिकायत सेरी राम, म्यांमार में रामवत्थु तथा श्रीलंका में सिंहली रामायण गाथाएँ इसके प्रमाण हैं। तिब्बत में दशरथ जातक तथा अनामक जातक के माध्यम से, मंगोलिया में लामा प्रचारकों द्वारा तथा जापान में होबुत्सुशु एवं गगाकू संगीत-नृत्य के रूप में रामकथा पहुँची। खोतान (तुर्किस्तान) में भी इसका प्रभाव दिखाई देता है। प्रवासी भारतीयों ने १९वीं शताब्दी में गुयाना, सूरीनाम, मॉरीशस, फीजी, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में रामचरितमानस को साथ ले जाकर रामकथा की परंपरा जीवित रखी। कठोर दासता एवं प्रतिबंधों के बावजूद उन्होंने कंठस्थ पाठ एवं सामूहिक कीर्तन द्वारा इसे संरक्षित किया। आज इन देशों में दीपावली राम के अयोध्या आगमन के प्रतीक के रूप में मनाई जाती है तथा रामायण घर-घर में पूजनीय ग्रंथ है। रामकथा का प्रसार केवल साहित्यिक ही नहीं, अपितु नाटक, नृत्य, संगीत, चित्रकला एवं लोकगीतों के माध्यम से भी हुआ। यह विश्व की सांस्कृतिक धरोहर बन चुकी है, जिसमें स्थानीय परिवेश के अनुसार चरित्रों एवं कथानकों में परिवर्तन होते हुए भी मूल भाव धर्म, भक्ति एवं सदाचार अक्षुण्ण रहा।

शब्दकुंजी: नाटक, नृत्य, संगीत, चित्रकला, लोकगीतों, धर्मरक्षक एवं सदाचारी आदि

परिचय:

सर्वप्रथम बाल्मीकि जी ने तत्पश्चात् श्री तुलसी दास जी ने श्रीराम के उदात्त चरित्र को भव्य एवं गौरव रूप प्रदान किया है। महिर्ष वाल्मीकि जी ने अपने काव्य के लिए एंसा लोकनाथक खोजते है जो धर्म एवं सदाचार सर्वगुण सम्पन्न

पूर्व शोधार्थी : स्नातकोत्तर संगीत विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर-812007

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.002

हो। श्रीराम विष्णु के समान उदारमय, गंभीर ओजस्वी, संहारकत्रो एवं प्रजापालक है। श्रीराम सम्पन्नता, धर्मरक्षा धर्माचरण गुणों से परिपूर्ण है। वेद, वेदांग, धनुर्वेद एवं समस्त शास्त्रों के ज्ञाता है। श्री राम के चरित्र को किसी भी दृष्टि से परखें वह सर्वथा आदर्श, अनुकरणीय एवं सदाचार समन्वित है। तुलसीदास जी राम से अधिक राम के दास को महत्व देते है- ''राम से अधिक राम कर दासा''।

भगवान श्रीराम स्वयं कहते है- भगवति वेद अति नीचक प्राणी मोहि प्राणप्रिय असि मम बानी।। भक्ति एक क्षुद्र जीव को भी बहुमुल्य रत्न में परिवर्तित कर देती है। श्रीराम संपूर्ण मानव जाति के अराध्य है। तुलसीदासकृत रामचरित मानस एवं बाल्मीकि रामायण ही घर-घर में भक्ति ग्रन्थ के रूप में पूजित नहीं है बल्कि मुस्लिम सम्प्रदाय के कवियों में भी मुक्त हृदय से श्रीराम का गुणगान किया हैं। सूफी साधक और हिन्दू-मुस्लिम एकता के अग्रदूत अमीर खुसरों ने राम के गुणगान में लिखा है। तनम न का वह है मालिक। वाने दिया मेरे गोद में बालक।

श्रीराम दक्षिण भारत के आंध्रप्रदेश से ही सागर की तरफ निकले। इसलिए आंध्र में युग-युगों से श्रीराम की पूजा-बंदना होती रही है, और इसी कारण आंध्र के गाँव-गाँव और शहर-शहर श्रीराम के मंदिर भरे पड़े है। इसका प्रमाण तेलगु में राम साहित्य के साथ-साथ राम तत्व से संबंधित अति प्राचीन लोक साहित्य भी प्राप्त होता है। इन लोक कथाओं में हरिकथा, बुरी कथा, वोग्यु कथा, गोल्ल शुद्धलु, यक्ष गान, बोम्मलाट, वयालाट्, नट्टि, जामु आदि प्रमुख है।

राम कथा की परंपरा भारत की ही नहीं विश्व की संपत्ति है। पहले इसकी रचना संस्कृत में की। इसके बाद भारत के अन्य भाषाओं में उनका अनुवाद हुआ तथा अन्य देशों की भाषाओं में रूपान्तरित और परिवर्तित किया गया। एशिया के देशों में राम कथा इतनी अधिक प्रचलित है कि कुछ विद्वानों ने 'रामायण' को 'एशिया' का महाकाव्या कह दिया है। हजारों वर्षों से इन देशों में राम कथा प्रचलित है। और उनके जीवन का कला, संस्कृति, जीवन धर्म, चिन्तन आदि का महत्वपूर्ण अंग बन गया हैं। राम की कथा देशों में चरित्रों में परिवर्तन हो गया हैं। उनका चरित्र लोक मानस में इतना घुल-मिल गया है। कि उनका एक अलग रूप ही विकसित हो गया है। इन देशों में भारतीय संस्कृति राम कथा के माध्यम से पहुँची और वहाँ की जनता ने उसे अपने साहित्य और धर्म का हिस्सा बना लिया।[1]

रामनवी के दिन राम पर विशेष कार्यक्रम होते है, और रेडियों, टेलीविजन इन्हें प्रसारित करते हैं। भारतीय मजदूर 1838 ई॰ में गुयाना पहुँचे थे, ये भी रामचरित मानस को साथ लेकर आये थे। ये लोग शनिवार को हुनमान चालीसा तथा रविवार को मंदिरों में रामचरित मानस सुनते थे। यहाँ की परंपरा है, कि लक्ष्मीसभा, नवयुवकसभा, कीर्तनमंडली आदि में राम कथा का गान होता है। राम कथा दक्षिण अफ्रिका में भी इसी रूप से आयी थी।

प्रो॰ एस॰ आर॰ मिश्र ने 'रामरसायन सनातन-धर्म' संगठन बनाया और अनेक रूपों में राम-कथा का प्रचार किया। जिसमें नाटक, नृत्य गायन, भी प्रदर्शन-विद्या के रूप में देखने को मिलता हैं। गेय-काव्यों की शैली प्राचीन युग से ती लोक साहित्य के रूप में प्रचलित हैं। मानव वाणी के माध्यम से अपने हृदयगत भावों एवं अनुभूतियों को अनेकों रूप में व्यक्त करता है। सृष्टि में सर्वत्र बिखरे अनंत सौदर्य पर मानव मन रीझा हुआ है। जिससे उसके मुख से सहज ही गान का स्वर फूट पड़ता हैं। मानव हृदय की भावना जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है, तब सहज ही गीतों का प्रादुर्भाव हो जाता हैं।[2]

रस्किन के अनुसार - 'सहज शुद्ध भाव, स्वच्छन्द कल्पना तर्कवाद और न्यायमूलकता से युक्त विचार यही गेय काव्य की वास्तविक विशेषता है।

जानड्रिक वाटर के अनुसार - गेय-काव्य एक ऐसी अभिव्यंजना है, जो विशुद्ध काव्यात्मक (भावात्मक) प्रेरणा से व्यक्त होती है। तथा जिसमें किसी अन्य प्रेरणा के सहयोग की अपेक्षा नहीं रहती।[3]

महादेवी वर्मा के अनुसार - सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था विशेषकर गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना गीति है।[4]

खेतान अर्थात् तुर्किस्तान में भी रामकथा प्रचलित थी। वशिष्ठ विश्वामित्र के संघर्ष को तथा परशुराम के पिता के साथ राम के पिता सहस्त्रवाहु के संघर्ष के रूप में राम कथा में दिखाया गया हैं।

तिब्बत में बौद्ध जातकों के कारण राम-कथा का प्रवेश हुआ। डॉ॰ कामिल बुल्के के अनुसार राम कथा अनामक जातक तथा दशरथ जातक के माध्यम से तिब्बत पहुँची। इन दोनों जातकों का तीसरी और पांचवी शताब्दी में चीनी भाषा में अनुवाद किया गया था। राम कथा का लिखित रूप 13वीं शताब्दी में प्राप्त हुआ था। डॉ॰ कामिल बुल्के के अनुसार तिब्बत में रामकथा बौद्ध कथाओं के रूप में पहुँची थी।

रामकथा तिब्बत से होकर मंगोलिया पहुँची इसका संबंध बौद्ध एवं जैन राम-कथाओं से था। तिब्बत के लामा लोगों ने धर्म प्रचार के लिए मंगोलिया में इस कथा का प्रचार किया। मंगोलिया में राजा जीवक की कथा राम कथा जो आठ अध्यायों में विभक्त है। जो इस कथा की छः पुस्तकें लेनिनग्राद पुस्तकालय में सुरक्षित है।

चीन के माध्यम से राम कथा जापान में पहुँची। 12वीं शताब्दी में रचित होबुरसुशु नामक ग्रंथ से राम की कथा जपान में उपलब्ध हैं। एक हजार वर्ष से बुगाउ अथवा गगाकू नाम से प्रसिद्ध संगीत नृत्य की कुछ शैली जापान के राम महलों में सुरक्षित है, 10वीं शताब्दीं में रचे ग्रंथ 'साम्बो-ए-कोताबा में दशरथ और अवण कुमार का प्रसंग मिलता हैं।

इण्डोनेशिया में अभिलेख एवं साहित्य के रूप में राम-कथा प्राप्त होती हैं। प्राचीन जावा-रामायण या प्राचीन ककविन-रामायण इण्डोनेशिया की सर्वाधिक प्राचीन एवं विशालकाय रचना है, जिसके रचनाकार के रूप में योगेश्वर कवि का प्रमाण मिलता हैं। इस रामायण में 26 सर्ग है, जिनमें 2771 श्लोक हैं। इसकी तुलना संस्कृत के भटिट्काव्य से की जाती है। बालि के संस्कृत साहित्य में भी कई ग्रंथ हैं। जिनमें राम कथा मिलती हैं। इण्डोनेशिया में आज भी अनिनय एवं नृत्य के माध्यम से राम कथा प्रस्तुत की जाती है।

थाई देश में विश्वास है कि रामकथा की सृष्टि उनके ही देश में हुई थी। इस देश में नया शास्क जब भी राजसिंहासन पर विरामान होता है वह उन वाक्यों को दोहराता है, जो राम ने विभीषण के राजतिलक के अवसर पर कहा था। यहाँ के राजा, राम प्रथम, रामद्वितीय आदि नामों से जाने जाते थे।

राम द्वितीय ने नृत्य-नाठ्य का आरंभ किया, और रामकियेन नाट्य-रूप का सृजन किया। राजा परिवार के प्रमुख सदस्य भी इस अभिनय में भाग लेते थे। जो गौरव की बात मानी जाती थी। यह नृत्य-नाट्य थाई देश की राष्ट्रीयता का अभिन्न अंग बन गया हैं।[5]

लाओस में रामकथा, संगीत नृत्य, चित्रकारी साहित्य की धरोहर तार पत्रों में सुरक्षित हैं। राजमहल और नाट्यशाला में राम कथा का संगीत रूपक के रूप में मंचन होता हैं। रामकथा यहाँ दो रूपों में मिलती है। एक रूपान्तर 'फालम्' (प्रिय लक्ष्मण, प्रिय राम) जो व्येस्याने प्रदेश से

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.002

प्राप्त हुआ है। दूसरा पोम्पचाक (ब्रह्मचक) जो उत्तरी लाओस की मेकांग घाटी से प्राप्त हुआ है। भगवान बुद्ध जेतवन में एकत्र मिक्षुओं लव देशों में हुई थी। रामकथा एवं पात्र-सृष्टि बाल्मीकि-रामायण की अपेक्षा थाइलैंड, इण्डोनेशिया मलाया आदि में मिलने वाली राम कथा से अधिक मिलती है।[6]

भारतीय संस्कृति का प्रभाव मुस्लिम देश मलेशिया पर भी पड़ा। यहाँ छाया नाटक, रामकथा साहित्य तथा रामनृत्य में मिलती है। मलय रामायण की प्राचीनतम प्रति जो अरबी लिपि में है, जो सन् 1633 ई॰ में बोदलियन पुस्तकालय में सुरक्षित की गयी। मलय राम-कथा के साहित्य पाठ प्राय: हिकायत सेरी राम के नाम से प्राप्त होते हैं। एक और ग्रन्थ हिकायत महाराज रावण है, जो हिकायत सेरी राम से मिलता है। हिकायत सेरी राम ग्रन्थ में रावण के चरित्र से लेकर राम जन्म सीता जन्म राम-सीता विवाह, रामवनवास, सीता हरण और सीता की खोज, युद्ध, सीता त्याग तथा राम सीता के पुनर्मिलन की कथा हैं। उड़िया राम-साहित्य, संगनाथ तथा कंब रामायण अर्थात् भारत के पूर्वी तठ की रचनाओं का प्रभाव सेरी राम पर पड़ा हैं। सेरी राम पर रामायण ककविन तथा मुसलमानी धर्म का जो प्रभाव है, वह एक प्रकार से अनिवार्य ही था।[7]

श्रीलंका में कई लेखकों ने रामायण की गाथाओं को सिंहली भाषा में लिखा है। इनमें कुमारदास का जानकी हरण प्रमुख है। राम की अपेक्षा हनुमान तथा सीता से संबंधित कहानियाँ अधिक प्रचलित है, रामायण की लंका को वर्तमान श्रीलंका नहीं मानते बल्कि वह द्वीप श्रीलंका के दक्षिण में इण्डोनेशिया का कोई द्वीप मानते है।[8]

बरमा में ईशा के दो शताब्दी पहले से विष्णु एवं बुद्ध के प्रमाण मिलते है। यहाँ ईशा के पूर्व ही रामकथा पहुँच चुकी थी। प्रथम रचना 'रामवस्तु' इसी काल की मिलती है। इसमें राम कथाओं को बौद्ध कलेवर में प्रस्तुत किया गया है। दूसरी रचना जो अठारहवीं शताब्दी के अन्त में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में महाराम की रचना की गयी थी। बरमा से एक नाटकमंडली दिस्म्बर 1905 ई॰ में भारत आकर अयोध्या तथा दिल्ली में अपनी कला का प्रदर्शन किया। यहाँ की मूर्तिकला, हस्तशिल्प, चित्रकला पर भी राम ख्यान का चित्रण हुआ हैं।

रूसी विद्वान एवं व्योकिन तथा ब॰ एमीन ने भी रामायण के अनुवाद का प्रयास किया। सोवियत संघ में रामायण के प्रति रूचि बढ़ती जा रही है। 1986 ई॰ में मास्को-स्थित प्रकाशन गृह खुदोज्येस्त विन्नाया लितरातू रा से व्येरा पोतापोव के नये अनुवाद में बाल्मीकि रामायण के कुछ अंश प्रकाशित हुए हैं। 19 शताब्दी में भारत से हजारों लोग बंधक मजदूरों के रूप में जाये गये। प्रवासी भारतीय ने मारीशस, फीजी, सूरीनाम गुयाना आदि देशों में रामकथा का प्रचार प्रसार किया। ये अपने साथ 'श्रीरामचरितमानस' भी ले गये। राकथा के माध्यम से भारतीय धर्म एवं संस्कृतिसे जुड़े रहे। मरीशस में श्रीरामचरितमानस जब्त कर ली जाती थी और ढण्डित किया जाता था। किन्तु भारतीयों ने उसे कंठस्थ करके जीवित रखा। रात को ये भारत वंशी श्रीरामचरित मानस का पाठ करते थे और जीवन-शक्ति प्राप्त करते थे। आजादी के बाद रेडियो तथा टेलिविजन पर यहाँ नियमित रामकथा की चर्चा होती थी और मंदिरों में इसका पाठ होता था। यहाँ दीवाली मनायी जाती है, और यह लक्ष्मी पूजा के साथ राम के अयोध्या आगमन का प्रतीक है। यहाँ के भारतीय मूल के परिवारों में रामायण अवश्य मिलेगी।

निष्कर्ष:

रामकथा कोई साधारण कथा नहीं, अपितु मानव जीवन के सर्वोच्च मूल्यों धर्म, भक्ति,

कर्तव्य, त्याग एवं सदाचार की जीवंत अभिव्यक्ति है। महर्षि वाल्मीकि से लेकर गोस्वामी तुलसीदास तक तथा लोक कथाओं से विश्व के विभिन्न रूपांतरणों तक यह कथा हजारों वर्षों से मानव हृदय को आलोकित करती आ रही है। यह केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है जिसे एशिया का महाकाव्य कहा जाना पूर्णत: सार्थक है। रामकथा का सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि उसने सीमाओं, भाषाओं, धर्मों तथा संस्कृतियों को लाँघकर स्वयं को हर समाज में आत्मसात कर लिया। इंडोनेशिया के वायंग नाटक में, थाईलैंड के रामकियेन में, जापान के गगाकू संगीत में तथा तिब्बत-मंगोलिया की बौद्ध कथाओं में राम-सीता-हनुमान के चरित्र भले ही स्थानीय रंग में रंगे हों, पर मूल संदेश अडिग रहा। यह प्रमाणित करता है कि सत्य, प्रेम और न्याय की भावना सार्वभौमिक है। जब थाई राजा अपने राज्यारोहण पर राम के विभीषण को दिए उपदेशों को दोहराते हैं या मलेशिया के छाया नाटक में रामकथा जीवंत होती है, तब स्पष्ट होता है कि राम भारतीय सीमाओं से बहुत आगे विश्व मानव के आदर्श बन चुके हैं। प्रवासी भारतीयों की पीड़ा एवं संघर्ष की कहानी में रामकथा का सबसे मार्मिक रूप दिखाई देता है। बंधुआ मजदूरी की काली सदी में जब रामचरितमानस जब्त कर ली जाती थी, तब भी भारतीयों ने उसे हृदय में संजोये रखा। रात्रि के अंधेरे में कंठस्थ पाठ, सामूहिक कीर्तन तथा हनुमान चालीसा ने उन्हें जीवन-शक्ति प्रदान की। मॉरीशस, फीजी, गुयाना, सूरीनाम एवं दक्षिण अफ्रीका में आज भी रामायण प्रत्येक भारतीय परिवार का अभिन्न अंग है। दीपावली का पर्व यहाँ राम के अयोध्या आगमन का उत्सव बन गया। यह सिद्ध करता है कि रामकथा केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, अपितु सांस्कृतिक पहचान एवं आत्मबल का स्रोत है। आधुनिक युग में रेडियो, टेलीविजन, नाटक, नृत्य एवं डिजिटल माध्यमों से रामकथा नई पीढ़ी तक पहुँच रही है। रूस जैसे देशों में भी इसके अनुवाद एवं अध्ययन हो रहे हैं। यह दर्शाता है कि रामकथा समय की सीमाओं से परे है।

निष्कर्षत: रामकथा हमें सिखाती है कि भक्ति छोटे-से-छोटे जीव को भी महान बना सकती है तथा धर्म और सदाचार का पालन मानव जीवन को दिव्यता प्रदान करता है। विश्व के कोने-कोने में फैली यह कथा यह संदेश देती है कि सच्चाई और प्रेम की विजय अनिवार्य है। जब तक मानव हृदय में करुणा, त्याग और न्याय की आकांक्षा जीवित रहेगी, तब तक रामकथा जीवित एवं प्रासंगिक रहेगी। यह विश्व की साझी सांस्कृतिक विरासत है जो मानवता को एक सूत्र में बाँधती है।

संदर्भ-सूची:

1. गोयनका, डॉ॰ कमल किशोर (2010): आलेख विदेशों में रामकथा का स्वरूप, गीताप्रेस गोरखपुर, अंक - 8, पृष्ठ - 815.
2. कुमार डॉ॰ अरविन्द (2006): भारतीय सांगीतिक जगत को तुलसीदास का योगदान, संजय प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ सं॰ - 50-52.
3. गुप्त डॉ॰ गणपति चन्द्र (1981): साहित्यिक निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ सं॰ - 347.
4. मीरा संगीत, अंक पृष्ठ - 14
5. गोयनका, डॉ॰ कमल किशोर (2010): विदेशों में रामकथा का स्वरूप, गीताप्रेस, गोरखपुर, अंक 8, पृष्ठ सं॰ - 817.
6. गोयनका, डॉ॰ कमल किशोर (2010): विदेशों में रामकथा का स्वरूप, गीताप्रेस, गोरखपुर, अंक 8, पृष्ठ सं॰ - 817.
7. गोयनका, डॉ॰ कमल किशोर (2010): विदेशों में रामकथा का स्वरूप, गीताप्रेस, गोरखपुर, अंक 8, पृष्ठ सं॰ - 818.
8. गोयनका, डॉ॰ कमल किशोर (2010): विदेशों में रामकथा का स्वरूप, गीताप्रेस, गोरखपुर, अंक 8, पृष्ठ सं॰ - 817.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.003

ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्यों में संगीत

मेघना सिंह*, डॉ. दीपक सिंह**

शोध सार

संगीत एक ऐसा तत्व है जिसके बिना कोई भी स्थान, प्रस्तुति, सम्वाद आदि सब अधूरे हैं। बिना संगीत के यदि कोई सम्प्रेषण होगा तो उसमें भाव को स्थापित करना लगभग असम्भव होगा। ऐसी स्थिति में यह सम्प्रेषण अपूर्ण ही रह जाएगा। यदि हम 'लोक' की ओर दृष्टिपात करें तो हम पाएंगे कि लोक के किसी भी शैली में संगीत का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक त्यौहार, ऋतु, उत्सव, कार्य आदि में संगीत सन्निहित है। प्रस्तुत शोध पत्र के शीर्षक में नाट्य शब्द भी उद्धृत है। अत: यदि नाट्य पर दृष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि नाट्य की प्राचीन प्रमाणिक ग्रन्थ "नाट्यशास्त्र" में संगीत को अत्यंत सम्मानित स्थान दिया गया। "नाट्यशास्त्र" नाट्य की प्रमाणिक ग्रन्थ होने के साथ ही संगीत की भी एक प्रमाणिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकार की जाती है। "नाट्य" मुख्य विषय होने के बाद भी नाट्य शास्त्र में संगीत को अत्यंत सूक्ष्मता और सावधानी से प्रस्तुत किया गया है। नाट्यशास्त्र के संगीत सम्बन्धित अध्याय की वृहद और सूक्ष्म प्रस्तुति को वर्तमान संगीत के शोधार्थी एवं संगीत के विद्वान, विशिष्ट प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं। कहने का तात्पर्य है कि नाट्य मुख्य विषय होने के बाद भी संगीत को इतना विशिष्ट स्थान देना यह सिद्ध करता है कि प्राचीन समय से ही नाट्य में संगीत एक विशिष्ट तत्व के रूप में उपस्थित रहा है। नाट्य में कथा के भाव का सम्प्रेषण संगीत के माध्यम से ही किया जा सकता है अथवा इस वाक्य को इस प्रकार कहें कि नाट्य में कथा के भाव का सम्प्रेषण, संगीत जितने प्रभावशाली ढंग से कर सकता है उतना कोई भी अन्य तत्व नहीं कर सकता है। नाट्य के कथा के भाव के सम्प्रेषण में संगीत के प्रभाव को देखते हुए वर्तमान फिल्मों में भी संगीत को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। फिल्मों के आरम्भिक दौर में तो फिल्मों के दर्शकों को आमंत्रित करने के लिए तथा फिल्म के मध्यान्ह में संगीत की विधिवत प्रस्तुती तक होती थी। नाट्य के लोक स्वरूप पर दृष्टिपात करें तब भी संगीत एक विशिष्ट भूमिका में दिखता है। क्योंकि संगीत में भाव को यथावत सम्प्रेषित करने की अद्भुद सामर्थ्य है। प्रस्तुत शोध पत्र में ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्यों में संगीत तत्व के अध्ययन प्रस्तावित है।

सूचक शब्द:- *नाट्य, लोकनाट्य, संगीत, कथानक, विवेचना*

विषय प्रवेश:-

लोक नाट्य के सृजन अथवा आरंभन का काल निश्चित रूप से बता पाना अत्यंत कठिन है। इस सन्दर्भ में अनेक विद्वान अपने अलग अलग मत प्रस्तुत करते हैं। श्री राम नारायण अग्रवाल जी कहते हैं "नाटक के पंचम वेद के उदय से भी पूर्व

*Assistant Professor, Department of Vocal Music, Faculty of Performing Art University, Varanasi, U.P.
**Assistant Professor, Department of Performing Art (Vocal Music), Nandlal Bose Subharti Collagr of Fine Arts &Fashion Design, Swami Vivekanand Subharti University, Meerut U.P

यहाँ लोक नाटक या लोक धर्मी नाट्य परम्पराएं अपना रूप ग्रहण कर चुकी थीं, जिन्होंने नाटक के पंचम वेदों की वेदी की निर्माण शिला का काम किया।" पद्मश्री देवी लाल सामर जी कहते हैं "भारतीय नाट्य का इतिहास लगभग पांच हजार वर्ष पुराना है। नाट्य ग्रंथों में यत्र-तत्र उपरूपकों, संगीतक, भाण, श्री गदित, चर्चरी, रासक आदि नामों से इस प्रकार के नाट्य प्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है।" डॉ. श्रीमती ज्ञानवती वैद मेहता जी के अनुसार "लोकनाट्यों की उत्पत्ति विभिन्न धारणाओं के बीच हुई जैसे लोक प्रचलन, लोक विश्वास, वीर पूजा, धार्मिक समारोह, मनोरंजन एवं मांगलिक पर्व इत्यादि।" अत: उक्त विद्वानों के मत के अनुसार कहा जा सकता है कि लोक नाट्य अत्यंत प्राचीन विधा है जो कि नाट्य की सुप्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थ "नाट्यशास्त्र" की रचना से भी पूर्व विकसित हो चुकी थी।

लोकनाट्य के सन्दर्भ में नाट्य शास्त्र में भरत मुनि कहते हैं -

"स्वभाव भावोपगतं शुद्धं तु प्रकृतं तथा,
लोक वार्ता क्रियोपेतम लीला विवर्जितम।
स्वभावाभिनयोपेतं नाना स्त्री पुरुषात्रयं
यदीदृशं भवेन्नाट्यं लोकधर्मी तु स्मृतां।।"

अर्थात् लोकधर्मी नाट्य प्राकृत, स्थाई तथा व्यभिचारी भावों से युक्त रहता है। इसमें कल्पना द्वारा कोई परिवर्तन प्रस्तुत नहीं किया जाता है। यह शुद्ध एवं प्राकृत रूप में रहता है। अगहार आदि आंगिक विलास, लीलाओं का प्रयोग नहीं होता। स्त्री एवं पुरुष पात्रों का प्रयोग तो प्रचुरता से होता है। लोक नाट्य में स्त्री द्वारा पुरुष का अथवा पुरुष द्वारा स्त्री का अभिनय नहीं किया जाता है।

लोकनाट्य के सन्दर्भ में अभिनव गुप्त जी बताते हैं -

"यदा कवियर्था वृत्त वस्तुमात्रं वर्णमति नटश्च प्रयुक्त,
न तु स्वबुद्धिकृतं रंजना वैचियं तत्रानुप्रवेशायस्तदा,
तावात् स काव्यभाग: प्रयोगभागश्च लोकधर्माश्रय तत्रधर्मी।"

अर्थात इस लोक धर्मी रुढ़ि के अनुसार कवि तो यथावत् वस्तु का वर्णन करता है, नट प्रयोग करता है वहां स्वबुद्धि-कृत अनुरंजनकारी वैचित्र्य की कल्पना नहीं होती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं "ऐसा मान लिया जाता है कि जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न हो कर सर्वसाधारण को आंदोलित, चालित और प्रभावित करती हैं वे ही लोक साहित्य, लोक शिल्प, लोक नाट्य, लोक कथानक आदि नामों से पुकारी जाती है। लोक चित्त से तात्पर्य उस जनता के चित्त से है जो परम्परा प्रथित और बौधिक विवेचनापरक शास्त्रों और इन पर की गयी टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित होता है।"

लोक नाट्य शैली अत्यंत प्राचीन समय से अमर बेल के समान विकसित हुआ है। लोक नाट्य के द्वारा न केवल मनोरंजन होता है, अपितु सामजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक तथा पौराणिक घटनाओं के सन्दर्भ में भी ज्ञान प्राप्त होता है। लोक नाट्य संस्कृति की वह खदान है जिसमें से नित्य प्रति विविध प्रकार की मणियाँ प्राप्त होती रहती हैं। लोक नाट्य की प्रवृत्ति बहुरंगी तथा प्रयोगशील है। नाट्य का लोक स्वरूप किसी भी नियम के बंधन से पूर्णत: स्वतंत्र होता है। यह लोक जीवन के यथार्थ का चित्रण होता है।

ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्य:-

ब्रज क्षेत्र में जन मानस के रंजन में लोक नाटक बड़ी भूमिका निभाते हैं। समय तथा जन सामान्य के स्वाद एवं आवश्यकताओं के साथ

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.003

ही इन लोक नाट्यों में परिवर्तन होता रहा किन्तु वर्तमान समय तक लोगों ने अपनी इस सांस्कृतिक धरोहर को सहेज के रखा है। "ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्यों पर चिंतन के लिए हम इन नाट्यों को पांच श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं -

1. संगीत नाट्य- स्वांग, भगत तथा नौटंकी
2. धार्मिक नाट्य- रामलीला, रास लीला तथा नृसिंह लीला
3. नृत्य नाट्य- साखी, चैपाई, तथा डंडेशाही
4. स्त्री तथा बालोपयोगी नाट्य - न्यौरता, टेसूझांझी, खोइया
5. कठपुतली"

उक्त वर्गीकरण में देखा जा सकता है कि नाट्य के संगीत प्रधान होने का एक अलग ही वर्ग है। ऐसे तो उक्त सभी वर्गीकरण के लोक नाट्यों में संगीत की विशेष भूमिका है किन्तु संगीत प्रधान नाट्यों में संगीत कि सहायता से ही कथा प्रस्तुत की जाती है। शोधपत्र के अग्र भाग में सांगीतिक नाट्य श्रेणी के अंतर्गत आने वाले नाट्य यथा - स्वांग, भगत तथा नौटंकी में संगीतकी भूमिका पर चर्चा की जाएगी।

ब्रज क्षेत्र के लोक नाट्य शैलियों में सांगीतिक लोक नाट्य के अंतर्गत आने वाली शैलियों जैसे भगत, स्वांग और नौटंकी की विशेष लोकप्रियता है। इन शैलियों की प्रस्तुति में सम्वाद गेय रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त नाट्यों का संचालन आदि भी सांगीतिक स्वरूप में ही किया जाता है। इस वर्ग के नाट्यों में वृंद गान तथा पार्श्व संगीत, नाटक के भाव को जीवंत कर देता है। मंच पर घूमते हुए, नृत्य करते हुए तथा अभिनय करते हुए गायन करना इन नाटकों को विशेष बनाते हैं। इन नाटकों में मुख्य आकर्षण मधुर संगीत होता है।

लोक नाट्य 'भगत' के आगरा में शुरू होने के सन्दर्भ में श्री राम नारायण अग्रवाल जी लिखते हैं - "स्वांग के सफलता पूर्वक समापन के बाद परम्परानुसार गायकों ने चुनौती देते हुए कहा कि अब तक आगरा 'भडुआ भगत' देखता था हम ने असली भगत प्रस्तुत किया है। अगर कोई माई का लाल हो तो ऐसा भगत कर के दिखाए। हालाँकि यह कथन परम्परागत तरीके से कहा जाता है किन्तु दर्शक दीर्घा में उपस्थित उर्दू के प्रसिद्ध शायर तथा ख्याल गायक नजीर अकबराबादी को यह बात लग गयी। उन्होंने अपने साथ के ख्याल गायकों को एकत्र कर के एक भगत अखाड़ा स्थापित किया तथा उस भगत नाटक के जवाब में जवाबी भगत नाटक किया गया।" इस प्रसंग से समझा जा सकता है कि लोक नाट्यों में शास्त्रीय संगीत के साधक भी भाग लेते थे। अत: इस नाट्य के संगीत का माधुर्य तथा नाट्य में संगीत के उपस्थिति के प्रति सजगता एवं गंभीरता को अनुमानित किया जा सकता है।

लोक नाट्यों में शास्त्रीय संगीत के साधकों का उपस्थित होना यह बताती है कि लोक शैली में भी शास्त्रीय संगीत का माधुर्य, एक सीमा तक नियम बद्धता प्रतिविम्बित होती रही है। भगत शैली के अतिरिक्त यदि सांगीतिक नाट्य श्रेणी के दूसरे शैली नौटंकी पर दृष्टिपात किया जाय तो यहाँ भी शास्त्रीय संगीत कि मधुरता लोक शैली के साथ सामंजस्य बनाती हुई दिखेगी। संगीत प्रधान लोकनाट्य शैली नौटंकी अधिकतर सम्वाद गेय रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं जिसमें मुख्यत: छंद दोहा, चौबोला, दौड़ तथा बहरतबील आदि प्रयुक्त होते हैं। गायन में शास्त्रीय पक्ष के समावेश के सन्दर्भ में श्री रामनारायण अग्रवाल जी कहते हैं - "दोनों नौटंकियां (कानपुरी नौटंकी तथा हाथरसी नौटंकी) संगीत प्रधान हैं फिरभी ब्रज क्षेत्र में प्रचलित हाथरसी नौटंकी में गायन की बारीकी पर विशेष ध्यान दिया जाता

है। इनमें शास्त्रीय रागों के साथ ही उठान तथा आलाप जैसे शास्त्रीय गायन के तत्वों को भी शामिल किया जाता है।" इस कथन से सहम ति व्यक्त करते हुए कपिला वात्स्यायन जी कहते हैं—"हाथरस की नौटंकी में शास्त्रीय संगीत पर अधिक बल दिया जाता है जबकि कानपुर की नौटंकी में सम्वाद तथा उच्च नाटकीयता पर..." नौटंकी में छंदों के अतिरिक्त क़व्वाली, ग़जल, लावानिया आदि भी गाई जाने लगीं। नौटंकियों का प्रमुख वाद्य नगाड़ा होता है इसके अतिरिक्त हारमोनियम, ढ़ोलक, सारंगी आदि वाद्य भी प्रयुक्त होते हैं। वर्तमान काल में क्लैरियोनेट तथा कीबोर्ड जैसे आधुनिक वाद्यों का भी चलन बढ़ गया है।

शोध निष्कर्ष:-

देखा जा सकता है कि जो लोक शैलियाँ ब्रज क्षेत्र में प्रचलित हैं उनमें संगीत को सम्मानजनक स्थान दिया गया है। इन शैलियों में संगीत तत्व के प्रस्तुति तथा श्रवण पर बल दिया जाता है। नाट्य शैली में कथा के भाव को सजीव रूप में अभिनय कर के श्रोताओं के नेत्रों के माध्यम से हृदय में उतारा जाता है तथा नाट्य में संगीत के माध्यम से इस भाव को श्रोता के कर्णपुटों के माध्यम से हृदय में उतार दिया जाता है। ब्रज क्षेत्र में नाट्य तथा संगीत के इस अन्तर्सम्बंध को बहुत पहले ही समझ लिया गया था। ब्रज में प्रचलित लोक शैली के नाट्य में शास्त्रीय संगीत का समावेश ब्रजवासियों के लोक के साथ ही शास्त्रीय संगीत के प्रति लगाव को रेखांकित करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. अग्रवाल, श्री रामनारायण, संगीत, एक लोकं नाट्य परम्परा, पृ. सं. 13
2. मेहता, डॉ. श्रीमती ज्ञानवती वैद, लोक नाट्यों में संगीत, पृ. सं. 15
3. मेहता, डॉ. श्रीमती ज्ञानवती वैद, लोक नाट्यों में संगीत, पृ. सं. 15
4. नाट्यशास्त्र 13, 71,72 (दीक्षित, डॉ. सुरेन्द्र नाथ, भरत और नाट्य कला, पृ. 449)
5. अभिनव गुप्त, अभिनव भारती द्वितीय भाग पृ. 45
6. शर्मा, डॉ. रामनिवास, लोकं साहित्य का लोकतत्व, पृ. सं. 19,20
7. पचौरी, श्री भगवान सहाय, ब्रज साहित्य का मूल्यांकन, पृ. सं. 227
8. अग्रवाल, श्री रामनारायण, संगीत - उदय और विकास, पृ. सं. 85
9. जैन, श्री नेमिचंद्र, नटरंग, पृ. सं. 61
10. वात्स्यायन, श्री कपिला, पारम्परिक भारतीय रंगमंच, पृ. सं. 135

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.004

संगीत में नवाचार के प्रभाव और तकनीकों का योगदान: भारत देश के विशेष संदर्भ

डॉ. निशा पराशर

सारांशिका -

प्रस्तुत विषय 'संगीत में नवाचार के प्रभाव और तकनीकों का योगदान : भारत देश के विशेष संदर्भ', से तात्पर्य है कि वर्तमान में हो रहे सामाजिक बदलावों तथा युवा वर्ग का दृष्टिकोण हर रोज नये नये परिवर्तनों के कारण संगीत में आधुनिकता को अपनाना जरूरी है। आज के युवा वर्ग को शास्त्रीय संगीत से जोड़ने के लिए केवल प्रयोग के रूप में शास्त्रीय संगीत जैसे-परम्परागत शैली में भी व्यंजन कर संगीत में नवाचार हो सकता है वशर्ते शास्त्रीय संगीत के नियम भंग ना हो न ही सौंदर्यात्मक तत्व।

शब्द कुंजी - *नवाचार, सौंदर्यात्मकता, सॉफ्टवेयर, रिकॉर्डिंग, वर्चुबल, इस्ट्रूमेंट, टेकनिक, मंत्रोच्चारण।*

संगीत ऐसी दिव्य शक्ति है जिसके बिना जीवन अपूर्ण सा प्रतीत होता है। इसमें ऐसा आकर्षण है कि चाहे गीत के बोल समझ आए या ना आए स्वर या ध्वनि हमारा ध्यान आनायास ही अपनी ओर खींच लेते है। संगीत चाहे किसी भी क्षेत्र का हो चाहे भारतीय हो या पाश्चात्य, उसका जनजीवन से सदैव सीधा संबंध रहा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक कोई पर्व, त्योहार या संस्कार नहीं है जिसमें संगीत न हो। एक समय था जब संगीत केवल मंत्रोच्चारण के रूप में केवल अरण्यकों में स्थित आश्रमों में ही सुनाई देता था, दरबारी, रईसो और महलों से निकलकर, चलचित्र संगीत सम्मेलन, शिक्षण संस्थाओं तथा मीडिया के रूप में सर्वत्र संगीत प्रतिष्ठित होता चला गया है।

आज संगीत जगत में कई नए सॉफ्टवेयर भी आ गए है। सॉफ्टवेयर रिकॉर्डिग ने संगीत जगत में क्रांति ला दी है। VST (वर्चुअल इंस्ट्रमेंट टेकनिक) टेक्नोलॉजी द्वारा अब, सिंगल माइक से ही रिकॉर्डिग संभव हो जा रही है। यह तकनीक पाश्चात्य वाद्य यंत्रो के साथ-साथ तानपूरा तबला जैसे वाद्य यंत्रों में भी मददगार हो रही है। संगीत जगत में हर दिन नए सॉफ्टवेयर आ रहे हैं जो कि नवीन प्रयोगों में तथा नवीन रचनाओं में सहयोग कर रहे हैं। आज संगीत, साधको का विद्यार्थियों को वाद्य यंत्र खरीदने की आवश्यकता नहीं होती वरन् आइफोन के एप्स, और एड्रॉयड एप्लीकेशन में तानपूरा स्वर तरंग, स्वर पेटी तबला तरंग आसानी से मिल रहे हैं। इन वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से संगीत को न केवल परम्परागत मान्यताएँ बदली हैं अपितु प्रयोगात्मक संगीत को भी नवीन दिशाएं मिली है।

संगीत नवाचार से तात्पर्य संगीत को रचना प्रदर्शन और उत्पादन में रचनात्मक उन्नति और

विद्यालय अध्यापक, संगीत विभाग

सफलताओं से है जिसमें अक्सर नई तकनीके और विविध सांस्कृतिक प्रभाव शामिल होते है।

वर्तमान युग को वैज्ञानिक एवं वैश्विक दो परिदृश्यों पर देखा जा रहा है। विज्ञान के क्षेत्र में उत्तरोत्तर उत्रोतर प्रगति ने मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित नवोन्मेषशाली होने के लिए उत्प्रेरित किया है अतएव नयी सोच नई दृष्टि, नयी कल्पना, नये प्रयोग नयी खोज नये उन्मेष, नये परिवर्तन नये अविष्कार, नये सृजन अथवा निर्मिति नयी-नयी उपज, समसामयिकता अथवा कन्टेम्परेरी एवं नवाचार आदि-आदि इस युग के मानव की जीवन-शैली और व्यवहार के प्रमुख अंग बन गये। कलाओं की दृष्टि से विचार करें तो ये तत्व संगीत के सृजनधर्मों मानव जीवन के सबसे निकट माने जा सकते है क्योंकि मानवीय भावो-संवेगो की अभिव्यक्ति को सबसे सहज, सशक्त एवं सर्वोत्कृष्ट भाषा अथवा माध्यम संगीत ही है क्योंकि कहा भी गया है ''Music in the best language of human emotions'' कलाकार ने हर देश काल एवं परिस्थितियों के बदलते परिवेश को जीते हुए उससे अद्भूत सुख-दुखादि भावों एवं रसानुभवों को अपनी कलाओं में उकेर कर साकार रूप दिया है। मानव एक सामाजिक प्राणी है अतएव सामाजिक सरोकारों से भी उसे प्राप्त हुआ एवं उसके जीवन का अंग बना, उसका प्रभाव उसके प्रत्येक सृजन एवं क्रियान्विति में पड़ना स्वभाविक है। वह कभी सहज के कारण कलाओं का अंग बना।

नवाचार शब्द का सीधा सा अर्थ है नया आचरण जिसकी व्याख्या है नव+अच+अर अर्थात् नवीन आचरण को ओर उन्नमुख होना, इस रूप में इसे परिभाषित भी कर सकते है कि ''नवोन्मेषशाली सोच दृष्टि एवं बुद्धी द्वारा किया वह कार्य, जो पूर्व में देखा या सुना न गया हो।'' भारतीय संगीत के संदर्भ में ये दो रूपों में उपघटित हुआ। पहला पुराने को नयी सोच के साथ नये रूप में विकसित करना एवं दूसरा अविष्कृत रूप में किसी चीज का समक्ष रखना। गायन के वाद्यमंत्रों में नवाचार के लिए, जैव सामग्री, सवंर्धित वास्तविकता और कंप्यूटर तकनीक का इस्तेमाल किया जा रहा है, इन नवाचारों से संगीत बाद्यंत्रों की आवाज और अनुभव बेहतर हो रहे हैं।

गायन के वाद्ययंत्रों में नवाचार के कुछ उदाहरण:

- टिक्जिक एक बांस का बाद्य यंत्र है जिसे एक हाथ में पकड़कर बजाया जाता है, यह बिना पिच वाले वाद्य यंत्र के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।
- संबर्धित वास्तविकता तकनीक का इस्तेमाल करके संगीत वाद्ययंत्रों पर वर्चुअल मॉडयुलर सिंथेसाइजर बनाए जा रहे हैं।
- कंप्यूटर एल्गोरिडम का इस्तेमाल करके संगीत उत्पन्न किया जा रहा है।
- मकड़ी के रेशम और कवक, जैसी जैव सामाग्री का इस्तेमाल करके संगीत वाद्ययंत्र बनाए जा रहें हैं।
- स्मार्ट उपकरण और मुद्रित उपकरण बनाए जा रहें हैं।

संगीत के नवाचारों के कुछ उदाहरण -

संगीत में नवाचारों के बारे में सही अर्थ में समझने के लिए कई प्रमुख क्षेत्रों में विचार करना चाहिए।

- प्रौद्योगिकी - ऑटोन्टयून, संगीत उत्पाद सॉफ्टवेयर और इलेंक्ट्रोनिक उपकरणों

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.004

जैसे नवाचारों ने संगीत के निर्माण और सुनने के तरीके को बदल दिया है।

- शैलियां - इलेक्ट्रॉनिक नृत्य संगीत (ई डी एम) या ट्रैप जैसी उभरती शैलियां विकसित होती रूचियों और संगीत प्रयोगों को प्रतिबिंबित करती है।
- उपकरण - नए उपकरणों का आविष्कार और अपनानाा, जैसे विद्युत गिटार ने कुछ संगीत शैलियों के लिए से परिभाषित किया है। इनमें प्रत्येक तत्व संगीत के सतत् विकास में योगदान देता है, समाज पर इसकी दिशा और प्रभाव को आकार देता है।

सभी नवाचारों को शुरू में स्वीकार नहीं किया जाता, कुछ को मुख्यधारा में लोकप्रियता हासिल करने में समय लगता है।

संगीत नवाचार का एक उदाहरण हिप, हॉप संगीत में सैंपलिंग का उपयोग है, जहाँ नए नए गाने बनाने में मौजूदा ट्रैक के स्निपेट का पुनः उपयोग किया जाता है।

प्रयोगात्मक दृष्टिकोण:- संगीतकार अक्सर अपरंपरागत संरचनाओं और स्केल के साथ प्रयोग करते हैं, जैसे कि माइक्रोटोनैलिटी, जिसमें अर्थ स्वर से छोटे अतंराल का उपयोग किया जाता है।

हाइब्रिड शैलियाँ:- कलाकार विभिन्न शैलियों को मिलाकर नई शैलियाँ बनाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप जैज प्यूजंन या लोक पंक शैलियाँ बनती हैं।

एल्गोरिदमिक रचना:- कम्प्यूटर, एल्गोरिकमिक का उपयोग करके संगीत उत्पन्न करना, अप्रत्याशित और जटिल परिणाम उत्पन्न करना। इसके लिए लोकप्रिय उपकरण ईयरस्केच नामक सॉफ्टवेयर है जो छात्रों और संगीतकारों को कोड के आधार पर संगीत बनाने के लिए पायथन या जावास्क्रिप्ट का उपयोग करने की अनुमति देता है।

संदर्भ सूची -

1. International Journal of Research Granthalay
2. मसूरकर शिल्पा संगीत में नवाचार
3. https :// insphirajournal.com
4. कुमार, डॉ. विजय, भारतीय संगीत के शुष्काक्षरों के प्रयोग की परम्परा, नैतिक प्रकाशन, गाजियाबाद (उ.प्र.) 2013

DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.005

बिहार की ज्ञान परंपरा में लोकसंगीत की भूमिका

डॉ. नीतीश रंजन

सारांश

लोक समाज के लोक पर्व,लोक त्यौहार इत्यादि में लोकगीत सामान्य मानव की सहज संवेदना से जुडे हुए हैं। समाज के हरेक पहलू संस्कार, प्रकृति पूजा, जन जीवन के हरेक क्रियाकलापो में लोकगीतों द्वारा ही हम उत्सवों को मनाते हैं एवं लुत्फ़ उठाते हैं और यही हमारे जीवन जीने की शैली में मनोरंजन प्रदान करती है। भारतवर्ष में अनेक भाषा, बोली, धर्म,संप्रदाय इत्यादि हैं जिनकी अपनी अपनी सभ्यता एवं संस्कृति है इसी विविधता में एकता का प्रतीक हमारी लोकभाषा, लोकगीत इत्यादि है जो मानव के बीच एक संचार का माध्यम भी है।इन गीतों में प्राकृतिक सौंदर्य, सुख–दु:ख, विभिन्न संस्कारों जन्म से मृत्यु तक को बड़े ही हृदयस्पर्शी ढंग से गाया जाता है। लोकगीत हमारी प्राचीन परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा ही नहीं बल्कि हमारी संस्कृति का अनमोल धरोहर भी है। लोकजीवन की सत्यता लोकगीतों में दिखाई पड़ती है इसलिए लोकगीतों की आत्मा ही लोक संगीत है।

मुख्य शब्द:— कला, संगीत, लोकसंगीत, संस्कृति, संस्कार

बिहार की ज्ञान परंपरा में लोक संगीत की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि बिहार में शास्त्रीय संगीत की परंपरा के साथ-साथ लोकसंगीत की परंपरा भी बहुत पौराणिक काल से चली आ रही है। लोकगीत और संगीत दोनों का ही उद्गम और विकास प्रकृति परिवेश में स्वत: हुआ है। जैसे भारत हमारा कृषि प्रधान देश है उसी प्रकार बिहार राज्य भी कृषि प्रधान एवं आम जन जीवन से प्रभावित बहुत ही सरल और सहज है। प्रत्येक अवसरों पर संस्कार गीतों की छटा,मौसमी गीतों में ऋतु गीत, कृषि प्रधान राज्य होने के कारण श्रम गीत, कृषि गीत एवं सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ साथ जन चेतना एवं जनजागरण हेतु अनेक जागरूकता गीतों की रचना और गायन होती रहती है। लोकसंगीत भारतीय समाज का दर्पण है, जिसमें जीवन-ज्ञान,सांस्कृतिक मूल्य, सामाजिक रीति-रिवाज तथा आध्यात्मिक चेतना का सहज प्रसार हुआ है।

बिहार जो प्राचीन ज्ञान-परंपरा (नालंदा, विक्रमशिला, वैशाली, मगध) का केंद्र रहा है, यहाँ के लोकसंगीत ने भी ग्रामीण समाज को शिक्षा, संस्कार और सामाजिक चेतना प्रदान की है। बिहार की माटी की अपनी सुगंध है यहाँ के लोकगीत की आवाज सूरीनाम से लेकर सिंगापूर तक गई है यहाँ (मैथिली, बज्जिका, भोजपुरी, मागधी, अंगिका आदि) सुंदर भाषाएँ हैं। यहाँ धार्मिक लोकगीत, सामाजिक लोकगीत, पेशागीत, जातीय लोकगीत और विभिन्न अवसरों पर गाये

पूर्व शोधछात्र, वि.वि. संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरंभागा

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.005

जाने वाले लोकगीत आदि काफी प्रसिद्ध है। इन गीतों से उस समय के समाज की सामाजिक व्यवस्था, मान्यता,धारणाएँ एवं मानवीय मूल्यों की अवस्था ज्ञात होती है।

महर्षि व्यास ने महाभारत की विशेषताओं के वर्णन प्रसंग में 'लोक' शब्द का 'साधारण जनता' के अर्थ में व्यवहार किया है-

अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानाञ्जनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलन कारकम्।।

"अज्ञानरूपी अंधकार से अंधे होकर व्यथित लोक साधारण जनता को आँखों की ज्ञानरूपी अंजन की शलाका लगाकर खोल देता है।"[1]

"संगीत मानव मात्र की आत्मा का ऐसा भोजन है जिसके अभाव में मानवोचित गुण फल-फूल नहीं सकते, जिसे मानवता के विकास की उत्कृष्ट इच्छा है, उसे कोई भी महात्मा अथवा योगी चित्त की स्थिरता के लिये संगीत का ही आश्रय लेने का ही आदेश देता है।"[2]

"संगीत का मूल आधार नाद है।नाद अपने आप में पूर्ण है, उसे किसी बाह्य अमूर्त आधार की आवश्यकता नहीं।"[3]

सृष्टि के प्रारंभ से मानव प्रकृति प्रेमी था और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। उस समय उसका आचार विचार, रहन-सहन आडंबर और कृत्रिमिता से दूर सरल, सहज तथा स्वाभाविक था और मनुष्य अपने मनोरंजन के लिए कुछ ना कुछ उपाय ढूंढता रहता था जिसे वे कभी नृत्य, संगीत, रचना, नाटक, चित्रकला इत्यादि कलाओं के द्वारा प्रकट करता था प्राचीन युग से लेकर आज तक यह प्रक्रिया चलती आ रही है। किसी जनपद की लोकभाषा में लिखे गए संगीत को लोकसंगीत की संज्ञा प्रदान की गई। हमारे देश की मूल संस्कृति जिसे हम लोक संस्कृति कहते हैं, लोकगीतों में विरासत के रूप में रची बसी हैं।

लोकगीतों की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत मिलते हैं जैसे की लोकगीत मौखिक परंपरा की वस्तु है, लोकरचित है, लोकविषयक अर्थात यह संपूर्ण समाज की निधि है। वस्तुतः गीतों की सृष्टि में किसी एक का हाथ नहीं रहता है। यही कारण है कि विद्वानों ने लोकगीत को लोकसमूह द्वारा निर्मित माना है यह हमारे जीवन विकास के इतिहास है।

लोक संगीत की शिक्षा परंपरागत तरीके से लेने की कोई जरूरत नहीं होती क्योंकि यह खुद परंपराओं से एवं उसके उसूलों से बना होता है जो पारंपरिक शिक्षा की जननी भी मानी जाती है क्योंकि यही जनमानस के लोकव्यवहार का अत्यंत प्राचीन संवेदनाओ का उदगार है। यह लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों का प्रकटीकरण ही लोकसंगीत है।

भारतीय लोकजीवन गाँवों और नगरों दोनों में ही लोक-संस्कारों जैसे-तीज, त्यौहार, व्रत-उपवास आदि से सम्बद्ध होकर लोक के यथार्थ रूप को प्रकट करता है।

वैदिक काल से लोकगीत तथा लोक साहित्य लोक कंठों में विराजमान है। लोकगीतों में समाज की परछाई व इसमें समाहित अच्छाई व बुराई सभी का अवलोकन बड़े आसानी से हो जाता है। यह मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं एवं परिस्थितियों को दर्शाने का उत्तम साधन है जिसमें पारिवारिक और सामाजिक जीवन का सामयिक तथा भावनात्मक चित्रण रहता है सामाजिक चेतना कि पुकार मिलती है। लोक संगीत के द्वारा हम जीवन के सभी पक्षों का दर्शन करते हैं। हर जाति, धर्म, संप्रदाय के अपने गीत होते हैं जो जीवन से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक लोकसंगीत समयानुकूल भावना की अभिव्यक्ति कर देता है।

'लोकगीत में जनजीवन के हर्ष और विषाद,

आशा और निराशा, सुख और दुख सभी की अभिव्यक्ति होती है। इसमें कल्पना के साथ रस-वृत्ति, भावना और नृत्य की हिलोर भी अपना काम करती है, परन्तु ये सब खाद हैं। लोकगीत हृदय के खेत में उगते हैं। इसमें हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है जैसे प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा में विश्वास और करुणा में कोमलता। प्रकृति के गान में मनुष्य इस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है जैसे, कविता में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग। प्रकृति संगीतमय है। लोकगीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंश हैं।[4]

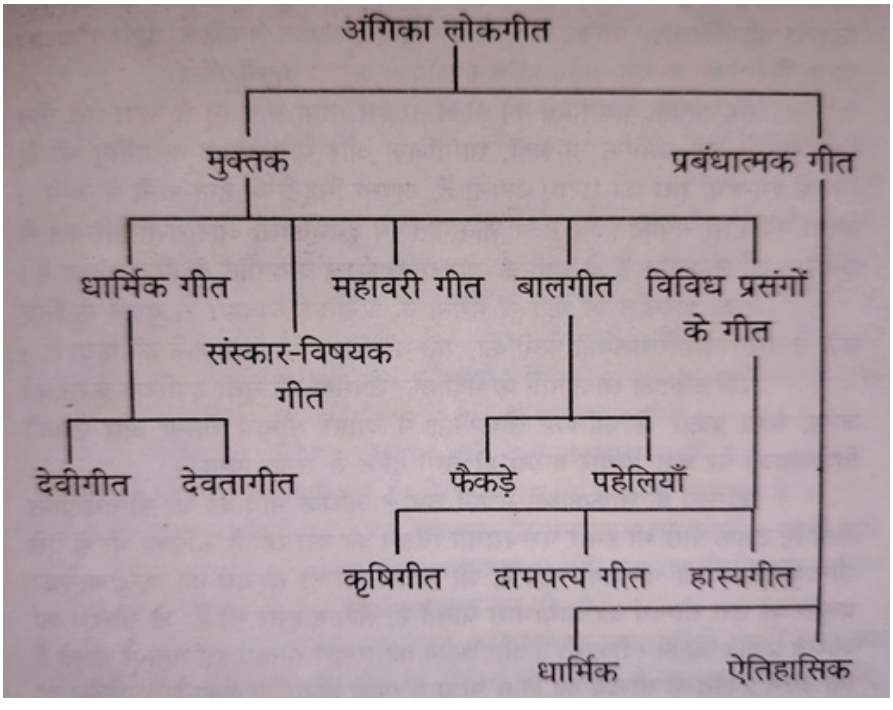

भारतीय लोक साहित्य में प्राप्त लोकगीतों के भेद[5]

भारतीय ज्ञान परंपरा में लोक संगीत की ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक भूमिका है जो ग्रामीण समाज में शिक्षा, संस्कार, सामाजिक चेतना, समाज सुधार, जनचेतना इत्यादि को ग्रामीण अंचलों में प्रचलित लोकगीतों के माध्यम से इतिहास की जानकारी, भूगोल की जानकारी, धार्मिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा, जीवनोपयोगी शिक्षा, सांस्कृतिक शिक्षा प्रदान करती है और जिसके माध्यम है लोकसंगीत में निहित गीत। जैसे– कजरी,चैती, ऋतु चक्र गीत, सोहर, जन्म–मरण, झूमर, विवाह आदि संस्कार गीत, कृषिगीत बिदेसिया इत्यादि।

ऐतिहासिक भूमिका

मुगलों के शासनकाल में किस प्रकार इस देश में अशांति और दुर्व्यवस्था फैली थी उसका चित्रण अनेक लोकगीतों में किया गया है।इसी प्रकार कुँवर सिंह के अंग्रेजों के साथ लड़ने के

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.005

वर्णन से बहुत-सी सच्ची ऐतिहासिक घटनाओं का पता चलता है। बाबू कुँवर सिंह ने 1857 के विद्रोह में जिस वीरता तथा पराक्रम के साथ अंग्रेजों से युद्ध किया था वह इतिहास के पन्नों पर अमिट अक्षरों में अंकित है। गीतों में वर्णित उनके बाहुबल की कहानी सुनकर आज भी पाठकों को रोमांच हो आता है। कुँवर सिंह की वीरता से परिपूर्ण इस गीत में उनकी बहादुरी का जीता-जागता चित्र उपस्थित किया गया है। इस गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

लिखि लिखि पतिया के भेजलन कुँवर सिंह
ए सुन अमरसिंह भाय हो राम।।
चमड़ा के टोड़वा दाँत से ही काटे कि
छतरी के धरम नसाय हो राम।
बाबू कुँवर सिंह भाई अमर सिंह,
दोनों अपने हैं भाय हो राम।

उपर्युक्त गीत में जन-विद्रोह के एक प्रमुख कारण की ओर संकेत किया गया है। साथ ही कुँवर सिंह की सेना का दानापुर (पटना) से चलकर कोइलवर में आने का उल्लेख पाया जाता है।[6]

भौगोलिक भूमिका

स्थानीय भूगोल के विषय में जानकारी, किस स्थान पर कौन सी विशेष वस्तु की उत्पत्ति या किस स्थान में कौन सी वस्तु अधिक प्रसिद्ध है जैसे — बनारसी पान जिसपर एक बहुप्रचलित फिल्मी गीत भी है "खईके पान बनारस वाला", मगहिया पान, बनारस की साड़ी, मनेर का लड्डू, सिलाव का खाजा, मुजफ्फरपुर की लीची, भागलपुर का कतरनी चूड़ा, गया का तिलकुट, आरा का खुरमा मिठाई, नूरसराय नालंदा का खोवा का लड्डू और बाढ़ की लाइ इत्यादि। इसकी चर्चा के साथ–साथ नदी,पहाड़, गांव, नगर, पौधा, देवी–देवता,कुल देवता इत्यादि की जानकारी मिलती है।उदाहरण स्वरूप यह वंदना जिसमें बिहार के अंग क्षेत्र के भूगोल की चर्चा है —

वंदना (बिहुला विषहरी)

होरे पुरब बन्दौनी, हे बान्दौ उगल अब सुरुज हे
होरे उनके चरण हे बान्दौ सिरण लियबे चड़ाई से माया हे
होरे दखिन बन्दौनी हे बान्दौ बाबा न अब वैद्यनाथ हे
होरे उनके चरण हे.....
होरे पश्चिम बन्दौनी हे बान्दौ, देवन अब करताल हे
होरे उनके चरण हे.....
होरे उत्तर बन्दौनी हे बान्दौ, गंगा वीर हनुमान हे
होरे उनके चरण हे.....
होरे आकाश बन्दौनी हे बान्दौ, आकाश अब जे कमैनी हे
होरे उनके चरण हे.....
होरे पताल बन्दौनी हे बान्दौ, बाइसो जोडी नाग हे
होरे उनके चरण हे.....
होरे तब, जे बन्दौनी हे बान्दौ, धरती अब जे धरम हे
होरे उनके चरण हे.....
होरे तब के बन्दौनी है बान्दौ, पाँचो न बहिन विषहरी हे
होरे उनके चरण हे.....
होरे तब जे बन्दौनी हे बान्दौ, तैतीस कोट अब देव हे
होरे उनके चरण हे.....
होरे गोड़ तोरा लागू हे माता, पैया तोरा हम परु हे
अरे भुललो अक्षर हे माता कठन दे हो निमाई से माया हैं

होरे रे गीत के ऊपर हे माता होईबे तहू सहाय से माया हे.....

आर्थिक भूमिका

लोकगीतों में अक्सर हम देखते हैं कि आर्थिक पक्षों की चर्चा अत्यधिक की जाती है जैसे सोने की थाली में जेवना पड़ोसल, भक्ति गीतों में सोने सुराही गंगाजल पानी इत्यादि यह बताता है कि उसे समय का समाज कितना समृद्ध एवं धन धान्य से भरपूर था की मनोकामना पूर्ण होने पर देवी देवताओं को भी सोने,चांदी इत्यादि धातु के बने बर्तन,मुकुट चढ़ाने का वादा गीतों के माध्यम से किया जाता था। उदाहरण स्वरूप एक भक्ति गीत —

अब ना रहब हे मैया, मिट्टी के घर में
अब ना रहब हे मैया, करकट के घर में
छत ढलवाईदा हे मैया, पटना शहर में.....

सोने सुराही गंगाजल पानी,
कलसा बैठाइब हे मैया, अपनी महलिया में,
छत ढलवाईदा दे मैया, पटना शहर में

लाली–लाली चुनरी में गोटा लगवली हो,
खोईचा भरइब हे मैया, अपनी महलिया में,
छत ढलवाईदा दे मैया, पटना शहर में

कंचन थारी कपूर के बाती,
आरती उतारब हे मैया, अपनी महलिया में,
छत ढलवाईदा दे मैया, पटना शहर में

सामाजिक भूमिका

यदि किसी समाज का वास्तविक चित्र देखना है तो उसके लोकगीतो का अध्ययन करना जरूरी है। इसमें हरेक प्रकार के संबंध पर गीत रचना की गई है जो संस्कार गीतों में देखने को मिलता है। पुत्र–माता,पिता–पुत्री,ननद–भौजाई, पति–पत्नी युगल जोड़ी के संबंध पर आधारित गीतों की रचना,सास–बहू के नोकझोंक, सौतन व उसके सौतेले व्यवहार की चर्चा,सामाजिक चेतना पर आधारित गीत एवं हमारी पौराणिक कथा, लोकगाथा पर भी गीत गाये गए है।उदाहरण स्वरूप एक झूमर गीत जिसमें किस प्रकार एक नई नवेली दुल्हन अपने ससुराल में झुमका खो जाने की व्यथा एवं उसपर ससुराल वालों की प्रतिक्रिया का वर्णन किया है —

झूमर गीत

मोरा गिरल कान का बाला,
गिरा रे मोरा बाला ,
गिरा रे मोरे अंगने में ..... गिरा रे मोरे अंगने में.....
सासु सुबहईये देईहें गाड़ी,
सासु सुबहईये जी,सासु सुबहईये जी,सासु सुबहईये,
सासु सुबहईये देईहें गाड़ी,
मोरे ससुर, बड़े हैं अनाड़ी, बड़े हैं अनाड़ी,
जताबे मोहे अंगने में, जतावे मोहे अंगने में.....
बऊआ तू काहे रही घबराए,
बऊआ तू काहे जी,बऊआ तू काहे जी ,बऊआ तू काहे,
बऊआ तू काहे रही घबराए
बाला मैं देईब बनवाई,देईब बनवाई,
गिरा जो मोरे अंगने में,गिरा जो मोरे अंगने में,
ननदी मोरी घर घर बांचें,
देवरा मोरा लुक छुप डांटे,
हो मोरा पिया बड़े है अनाड़ी, बड़े हैं अनाड़ी,
जताबे मोहे अंगने में, जताबे मोहे अंगने में,
मोरा गिरा रे कान का बाला
गिरा जो मोरे अंगने में,गिरा जो मोरे अंगने में
— रचनाकार — अरविंद यादव (लोकगायक)

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.005

जागरूकता गीत — दहेज विरोधी गीत (भोजपुरी)

शादी करिह मत कम ही उमर में, बोझ नइखे बेटी आपन घर में।
जेतना तू बेटी के पढ़ाब लिखाब, बनी संस्कार भेद–भाव तू मिटाब।
ईहे करि हे रौशन ससुरा नईहर में, बोझ नइखे बेटी आपन घर में।
समय से शादी करिह जानी अधिकार के, कबो न भूलइह माई बाबु के प्यार के
माई पलले बानी एक ही उदर में, बोझ नइखे बेटी आपन घर में।

सांस्कृतिक भूमिका

संस्कृति की आधारशिला पुरातन होती है इसके मूल तत्वों के संबंध में तत्व सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है, वह है अतीत का प्रभाव। आज भी हमारा आदर्श हमारा अतीत ही है जो हमारे जन्म,विवाह,मृत्यु तक के संस्कार गीत जिसमें अनेक वैवाहिक रस्म के गीत,झूला झूलते,चक्की पीसने के गीत जिसे जतसार भी कहते है ऐसे अनेक प्रकार के गीतों की रचना शामिल हैं।

उदाहरण के लिए संस्कार गीतों में परिछन गीत जो विवाह के समय बारात के द्वार पर पहुँचने पर कन्या पक्ष की स्त्रियों द्वारा वर के ऊपर से दही, अक्षत, आरती और मूसल, बट्टा आदि घुमाकर उसकी बुरी नजर उतारते और उसे बुरी नज़र से बचाने हेतु उसकी आरती उतारते और परिछन गीत गाते है—

दुल्हा आये दुअरिया हे देख-देख हे सखिया।
घोड़वा चढ़ल दुलहा आये दुआरिया,
बाजा बाजे घनघोरिया हे, देख देख हे सखिया
झुण्ड के झुण्ड आवे हाथी अमरैया,
जोड़ा बग्घी घोड़ा घोड़िया हे देख देख हे सखिया
हम-हुम हुमकत आवे कहरिया,
लिए कारचोबी खड़खड़िया हे देख देख हे सखिया
रौशनी से रात लागै दिन दुपहरिया,
छूटे रवायस घड़ा-धड़िया हे देख देख हे सखिया
परिछन करे सजि सिया महतरिया,
प्रेम मगन भरी थरिया हे देख-देख हे सखिया
देके रुमाल दुल्हा हसे मुख मोरिया,
मोद पर मारे नजरिया हे देख-देख हे सखिया
दुल्हा आये दुअरिया हे देख-देख हे सखिया

धार्मिक भूमिका

किसी भी जाति के देवी–देवता गोसाई, बाबा, पीर इत्यादि की चर्चा धार्मिक लोकगीतों में की जाती है। इसमें शीतला माता जिसे चेचक अधिष्ठात्री देवी माना जाता है, गंगा मैया, तुलसी माता, छठी मैया एवं सूर्य देव की पूजा छठ व्रत की धार्मिक गीतों के द्वारा की जाती है।उदाहरण हेतु एक देवी गीत जिसके रचयिता मैथिल कवि कोकिल विद्यापति जी है—

जय जय भैरवी असूर भया उनी,
पशुपती भामिनी माया
सहज सुमति वर दिय ऐ गोसाउनी,
अनुगति गति तु अ पाया
वासर रैन सबासन शोभित,
चरण चन्द्रमणि चूड़ा
कतओक दैत्य मारि मुख मेलल,
कतओ उगिलि करु कूड़ा
सामर बरण नयन अनुरंजित,
जलद जोग फुल कोका
कट कट विकट ओंठ पुट पांडरि,
लिघुर फेन उठ फोंका
घन घन घनन घुंघरू कत बाजय,
हन हन कर तु आ काता
विद्यापति कवि तु आ पद सेवक,
पुत्र विसरू जनि माता [7]

नैतिक भूमिका

लोक संगीत में इतनी ताकत है कि यह व्यक्ति के मन मस्तिष्क पर अनेक प्रकार से प्रभाव डालती है और मानसिक रूप से सबल बनाने की प्रेरणा देती है। यह व्यक्ति को उसके मूल संस्कार,व्यवहार नैतिकता से जोड़कर रखती है और जब जब इसका अभाव महसूस होता है तो लोक संगीत के माध्यम से ही समाज के लोगों में जन चेतना का संदेश देकर जनजागरण करती है।उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है एक नैतिक शिक्षा पर आधारित बाल प्रेरक गीत (अंगिका) —

मंटू मामा पीबी ताड़ी,
हाँकै लागलै मोटर गाड़ी।
दायाँ-बायाँ सब कुछ छोड़ी,
बीचे बीच सें किल्ला तोड़ी।
हैंडिल रही-रही घूमै छै,
मंटू मामा झूमै छै।
हैंडिल गेलै बगदी के,
आरो गाड़ी कबदी के।
तनटा जे दायाँ झुकलै,
बीच गढ़ेया में ढुकलै।
गाड़ी भेलै चित्त-चितांग,
टुटलै मामा के दू टाँग।
मूँ में घुसलै कीचड़-कादों,
भर-भर गोबर केरों लादों।
मामा बोलै गों-गों-गों,
हुन्नें मोटर पों-पों-पों।
मोटर ऊपर बनलै गामा,
चक्का नीचें पिचका मामा। [8]

एक नैतिक शिक्षा पर आधारित साक्षरता गीत (मगही)—

बउआ पढ़बे लिखबे बनबे तु महान रे,
न तो कुटबे धान रे ना।
मंगला पढ़लक आईएस करलक,
कलेक्टर के नौकरी धड़लक,
गदिरी न पढ़लक त बेचें बीड़ीपान रे,
न तो कुटबे धान रे ना।
पढ़बे लिखबे होबे नवाब,
घूमबे फिरबे होबे खराब।
न तो मम्मी मारतो बेलना सुबह शाम रे,
न तो कुटबे धान रे ना।
पढ़बे लिखबे मौज मनइबे,अच्छा पहिनबे अच्छा खईबे,
मान बात न त रगड़ी देबइ तोहरा कान रे,
न तो कुटबे धान रे ना।

—स्वरचित

ऋतु चक्र की भूमिका

लोक संगीत में ऋतुओं का बहुत महत्व है सभी ऋतुओं के अलग-अलग गीत गाए जाते हैं एवं उसके विशेष बखान,गुण–दोष,प्रकोप,फल–फूल इत्यादि की भी चर्चा गीतों में की जाती है। उदाहरण में प्रस्तुत है एक कजरी गीत (मगही)
हरी-हरी आये, सावन कजरारी बदरीया घेरे कारी ना....
जब से गये मथुरा मोहनवा, तड़पत है बृजनारी मधुबनवा,
हरी-हरी सुसकी, राधा प्यारी, संग बृजवा के नारी न।
मोर–मोरीनीया करें निहोरा, गेल बिसर कहां चित्त चोरा,
हरी-हरी तड़पे बृज के नारी, वृन्दावन के जीवधारी न।
कुब्जा सौतीनीया के फेरा,मोहन के रख लई देई घेरा,

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.005

हरी-हरी प्यासा, हरी-हरी प्यासा तड़पें हारी वीरह तनमा के जारी ना।

— रचनाकार — पं सतीश शर्मा (गायक)

कृषि वर्ग की भूमिका

मजदूरों, किसानों, हरबाहों, चरबाहों, घसबाहों और भैसबाहों अर्थात् मेहनतकश लोगों के उल्लास, वेदना, संवेदना, दुख-दर्द और उनकी संस्कृति को लोक भाषा में दर्शना कृषि गीत की भूमिका है।थरूआरी धारू जाति द्वारा गाया जाने वाला गीत 'थरूआरी' कहलाता है। बिहार के उत्तर-पश्चिम भाग में सोमेश्वर की पहाडियाँ हैं उसी क्षेत्र में थारू जनजाति के लोग निवास करते हैं। ये सुन्दर ईमानदार और सहज विचार वाले लोग हैं। थारू जातियों में अधिकतर लोग कृषक है। थारूआरी में सुख-दुख, पर्व-त्योहार और फसल गीत भी होते हैं। थरूआरी में एक फसल गीत है जिसे 'झमटा' कहते हैं, इसका एक उदाहरण निम्नलिखित है-

कहँवा हीं सीरजेला अटेया से पटेया
कहँवा हीं तितला मजोरवा हे ननदी
कहँवा हीं सीरजेला राजा हंस जोड़वा
कहँवा हीं महुआ के गाछ हे ननदी।। [9]

लोकनाट्य की भूमिका

बिहार में लोकनाट्य भी भावाभिव्यक्ति का एक बहुत ही प्राचीनतम माध्यम है इसका गायन भी लोक भाषा में ही किया जाता है जिसके जरिए अनेक गाथा, कथा–कहानी को नाटक के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। जैसे जट–जटिन, डोमकच,सामा–चकेवा, बिदेसिया, झिझिया, बिदापत नाच, कौआ हकनी, लोढ़ीयारी,रमखेलिया,नारदी इत्यादि।

'रमखेलिया' की तरह 'नारदी' जो कृष्ण लीला या रास की अंगिका लोकनाट्य शैली है। नारदी पुरुष-पात्र प्रधान लोकनाट्य है, इसमें पुरुष ही राधा का रूप धारण करता है और कृष्ण-राधा संवाद के साथ अभिनय भी चलते रहते हैं। संवाद पूर्णत: गीत प्रधान होते हैं।

इसका एक अंश द्रष्टव्य है—

कृष्ण-कहाँ केरी छेकी तोहें गोपी हे गवालिन
कहाँ में दहिया बेचें जाय, गुजरिया हे,
कहाँ में दहिया बेचें जाय

राधा- अरे गोकुल के अहो कृष्ण हो, गोप हे ग्वालिन
मथुरा दहिया बेचे जाय।

कृष्ण-जों तोहें जैभौ हे ग्वालिन दहिया के बेचें
देहो दहिया मोर दान, गुजरिया दे देहो,
दहिया मोर दान

राधा- जों तोहें अहो कृष्ण हो दहिया के भूखल,
आन्हों कदम रौं पात अहो कृष्ण हो, आन्हों
कदम के पात।

कृष्ण-कदमों के पात फाटी जैतै ग्वालिन, तोहरे
अँचरा दही खाय गुजरिया
तोहरे अँचरा दही खाय।

राधा- हमरा अँचरा कान्हा हो जूठी रे सखरिया,केना
तोहें नारी-अँचरा दही खाय
अहो कृष्ण हो, केना तोहें अँचरा दही
खाय। [10]

पर्यावरणीय चेतना — पर आधारित पर्यावरण गीत (अंगिका)

पर्यावरण बचावो भैया काम ई बड़ी महान छै,
एकरा से बढ़लो ई जग में नै दोसर कोनो काम छै।
हवा स्वच्छ जो मिलतौ भैया,
मन आनंद तोरो रहतो हो,
रोग बिमारी पास न ऐतो,
जिंदगी सुख में बिततो हो।
घर घर गाछ लगावों भैया,सरकारी ऐलान छै,
एकरा से बढ़लो ई जग में नै दोसर कोनो काम छै।

धुईया धक्कड़ कम उड़ावो,
वातावरण के स्वच्छ बनावो,
कूड़ा कर्कट दूर हटावो जीवन के ई लक्ष्य बनावो।
पाठ ई सब क पढ़ावो भैया, लोग बड़ी अन्जान छै,
एकरा से बढ़लो ई जग में नै दोसर कोनो काम छै।
ई बात पर अमल जो करबों,
कहियो न पछतैबो हो,
यही जिंदगी है तो भैया, स्वर्ग के आनंद पैबो हो।
एक बार अजमावो भैया, हम सबके अरमान छै,
एकरा से बढ़लो ई जग में नै दोसर कोनो काम छै।
— रचनाकार — गुलज़ारी प्रसाद साहनी (लोकगायक)

बिहार के कुछ लोकसंगीत के कलाकार पद्मश्री विन्ध्यवासिनी देवी, पद्मश्री शारदा सिन्हा, भरत शर्मा व्यास, भरत सिंह भारती, ब्रजकिशोर दूबे, श्रीमती नितु कुमारी नूतन, श्रीमती रंजना झा, श्री मनोरंजन ओझा,गुलज़ारी प्रसाद साहनी,अरविंद यादव का नाम प्रमुखता से ले सकते हैं। ये सभी कलाकार आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के माध्यम से भी बिहार के लोकसंगीत को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया है।

निष्कर्ष

लोकगीतों की उत्पत्ति कहां से हुई, इसके रचयिता एवं रचना काल का स्पष्ट कहना बहुत ही मुश्किल है परंतु दादी नानी से चली आई हुई गांव घरों के घर अंगना से उत्पन्न हुई माना जा सकता है क्योंकि इसमें क्षेत्रीय भाषा की पुट दिखाई देती है।जीवन के अनेक संघर्षो का चित्रण जैसे जाति,प्रकृति, लिंग भेद,संस्कार,पूजा–पाठ,व्रत–त्यौहार इत्यादि की चर्चा लोक संगीत के जरिए की जाती है। इसलिए लोकगीतों का संरक्षण भी अत्यंत जरूरी है जिससे भावी पीढ़ी को यह हस्तांतरित किया जा सके और हमारे संस्कारों कि 'लौ' चिरकाल तक जलती रहे।

संदर्भ

1. देवी डॉ. गायत्री, अंगिका लोकगीत, मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली–110092,पृष्ठ संख्या–29
2. कालिदास साहित्य एवं वादन कला पृष्ठ संख्या–4
3. संगीत, मासिक पत्रिका, नवम्बर 1974, पृष्ठ संख्या–29
4. देवी डॉ. गायत्री, अंगिका लोकगीत, मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली - 110092,पृष्ठ संख्या–33
5. अमरेंद्र डॉ.,अंगिका लोक साहित्य और मंजूषा लोककला, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/ मुजफ्फरपुर,पृष्ठ संख्या–३३
6. देवी डॉ. गायत्री, अंगिका लोकगीत, मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली 110092, पृष्ठ संख्या–49
7. https://youtu.be/gMVumyq-naM?si=V-Eg0l8TK3K1I_QZ
8. रानी डॉ. श्वेता, डॉ. अमरेंद्र का अंगिका बाल साहित्य, संस्कृति प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, पृष्ठ संख्या–२९,३०
9. वारिस हसन, निदेशक एस. सी. ई. आर. टी., अनहद संगीत पुस्तक, कक्षा 10, भाग–2, पृष्ठ संख्या–25
10. अमरेंद्र डॉ.,अंगिका लोक साहित्य और मंजूषा लोककला, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/ मुजफ्फरपुर,पृष्ठ संख्या–५९,६०

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.006

तबले का फर्रुखाबाद घराना एवं वादन शैली की विशेषता

डॉ. प्रेम प्रकाश प्रजापति*, डॉ. शोभित कुमार नाहर**

सरांश

दिल्ली से सर्वप्रथम तबला लखनऊ आया तथा वहाँ से फर्रुखाबाद और बनारस गया। लखनऊ घराने के उ. बख्शू खाँ के शिष्य एवं दामाद उ. हाजी विलायत अली खाँ ने अपने हुनर तथा अथक परिश्रम एवं चिन्तन-मनन से लखनऊ घराने की वादन शैली में मौलिक परिवर्तन करके एक नवीन वादन शैली का आविष्कार किया तथा उत्तर प्रदेश के छोटे से अपने शहर फर्रुखाबाद के नाम से फर्रुखाबाद घराने की स्थापना की। उ. हाजी विलायत अली खाँ ने इस बाज में न तो दिल्ली और अजराड़ा के समान बन्द बोलों का प्रयोग किया और न ही पंजाब तथा बनारस घराने के समान अधिक खुला बोलों का प्रयोग किया। वहीं लखनऊ बाज लव प्रधान था जबकि उन्होंने चांटी और लव को समान महत्व देते हुए दोनों के मिश्रण से फर्रुखाबाद घराने की स्थापना की। प्रस्तुत शोध पत्र तबले के फर्रुखाबाद घराने के विकास और उसकी वादन शैली की विशेषताओं को रेखांकित करने का प्रयास है.

मुख्य बिन्दुः *तबला, फर्रुखाबाद घराना, उ. हाजी विलायत अली खाँ, वादन शैली, गत, चलन, रेला, रौ।*

उ. हाजी विलायत अली खाँ श्रेष्ठ तबला वादक के साथ-साथ एक उच्चकोटि के रचनाकार भी थे तथा सदैव नवीन रचना करना एवं वादन शैली में नवीनता की खोज के लिए वे सदैव प्रयासरत थे। आचरण, व्यवहार कुशलता, गुरुभक्ति एवं विद्वता से प्रभावित होकर उ. बख्शू खाँ ने अपनी पुत्री का विवाह उ. हाजी विलायत अली खाँ से कर दिया।

उ. हाजी विलायत अली खाँ के बचपन का नाम विलायत खाँ था। वे अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। कहा जाता है कि वे कई बार हज करने गये तथा तबले का श्रेष्ठ कलाकार होने की दुआ की। जिसके कारण लोग उन्हें उ. हाजी विलायत अली खाँ के नाम से सम्बोधित करने लगे।

इस सम्बन्ध में डॉ. अबान ई. मिस्त्री ने अपनी पुस्तक 'पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें' में लिखा हैं कि, ''विलायत अली साहब अनेक बार हज करने गये और प्रत्येक बार अल्लाह पाक से तबले की विद्या की दुआ मांगी।'' हकीम मोहम्मद करम इमाम मअदन-उल मूसिकी में लिखते हैं कि ''हाजी विलायत

*संगीत शिक्षक, उत्क्रमित+2 उच्च विद्यालय, कलहाबाद, बरकट्ठा हजारीबाग, झारखण्ड।

Email: premtabla1@gmail.com

**सहायक प्राध्यापक, सितार विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

Email: shobhitnahar@gmail-com

अली गत वादन में कुशल थे, हज करने के पश्चात् उन्होंने महफिलों में तबला बजाना छोड़ दिया था।''

पं. छोटेलाल मिश्र अपनी पुस्तक 'ताल प्रबन्ध' में लिखते हैं कि, ''उ. बख्शू खाँ के दामाद एवं शिष्य उ. हाजी विलायत अली खाँ फर्रुखाबाद घराने के प्रवर्तक हैं। उन्होंने लखनऊ की वादन शैली में मौलिक परिवर्तन करके एवं विभिन्न प्रकार की अनेक रचनाएँ की जिससे फर्रुखाबाद को एक पृथक घराने की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।''

इस संदर्भ में पं. अरविंद मुलगांवकर ने अपनी पुस्तक 'तबला' में लिखा है कि, ''इस घराने में जन्म लेने वाले अधिकांश तबला वादक उत्तम वादनकार और रचनाकार हुए। ऐसा कहा जाता है कि फर्रुखाबाद घराने के संस्थापक उ. हाजी विलायत अली खाँ उत्तम वादक, शिक्षक व रचनाकार थे। उन्होंने अपने धर्मक्षेत्र की हजयात्रा सात बार की थी। प्रत्येक यात्रा में परवरदिगार से उन्होंने यही मांगा कि उनकी रचनाएं अत्यंत प्रभावशाली हों। फर्रुखाबाद घराने के श्रेष्ठ कलाकारों उ. अमीर हुसैन खाँ एवं उ. अहमद जान थिरकवा ने इन बातों का कई बार उल्लेख किया है।''

'तबला वादन में निहित सौन्दर्य' पुस्तक में लिखा है कि, ''इस घराने के संस्थापक उ. हाजी विलायत अली खाँ लखनऊ घराने के खलिफा उ. बख्शू के शिष्य और जमात भी थे। लखनऊ घराने का महत्वपूर्ण खजाना हाजी साहब को उनके ससुर की ओर से उनकी बेटी मोती बीबी (हाजी साहब की बीबी) से प्राप्त हुआ, किन्तु फर्रुखाबाद घराने ने अपनी एक स्वतन्त्र वादन विचार शैली निर्माण की।''

उ. हाजी विलायत अली खाँ ने उ. बख्शू खाँ से दीर्घकाल तक तबले की शिक्षा प्राप्त की तथा लखनऊ के अन्तिम नवाब वाजिद अलीशाह के शासनकाल सन् 1847 ई. से सन् 1856 ई. तक लखनऊ के दरबार में ही रहकर तबला वाद्य का विकास किया।

नवाब वाजिद अलीशाह के शासन के समाप्ति के बाद उ. हाजी विलायत अली खाँ सन् 1857 ई. में रामपुर के संगीत प्रेमी नवाब युसुफ खाँ के दरबार में चले गये तथा वे रामपुर दरबार में रहकर फर्रुखाबाद घराने की वादन शैली का प्रचार-प्रसार करते रहे।

फर्रुखाबाद घराने की वंश एवं शिष्य परम्परा

उ. हाजी विलायत अली खाँ के मृत्यु के पश्चात् उनके चारों पुत्रों उ. निसार खाँ, उ. अमान अली खाँ, उ. हुसैन अली खाँ तथा उ. नन्हें खाँ ने रामपुर दरबार में ही रहकर फर्रुखाबाद घराने की वादन शैली का विकास एवं प्रचार-प्रसार किया। हाजी साहब के पुत्रों एवं शिष्यों ने इस परम्परा को काफी समृद्ध किया।

इनके सबसे बड़े पुत्र उ. निसार अली खाँ तबले तथा पखावज के उच्चकोटि के विद्वान थे। उन्होंने अपनी वंश परम्परा में अपने छोटे भाई हुसैन अली खाँ को तबला वाद्य की शिक्षा दी थी तथा इनके शिष्यों में उ. मुनीर खाँ ने विशेष ख्याति अर्जित की। उ. मुनीर खाँ बचपन में उ. निसार अली से तबले की शिक्षा प्राप्त की थी।

उ. हाजी विलायत अली खाँ के दूसरे पुत्र का नाम अमान अली खाँ था जो एक योग्य तबला वादक थे। कुष्ठ रोग से ग्रसित होने के कारण उनके घर वालों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। पारिवारिक उपेक्षा से दुःखी होकर वे जयपुर चले गये।

जयपुर के कथक नृत्य के प्रकाण्ड विद्वान पं. जियालाल जी ने उनकी शिष्यवत् सेवा की

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.006

तथा उनसे फर्रुखाबाद घराने के तबला वादन की विशिष्ट शिक्षा प्राप्त की। पं. जियालाल अपने समय के अद्वितीय कथक आचार्य तथा कुशल तबला वादक थे। पं. जियालाल की परम्परा में उनके पौत्र नर्तक पं. राम गोपाल के पुत्र राजकुमार मिश्र तबला और पखावज के सुयोग्य कलाकार हैं। इलाहाबाद के स्व. प्रो. लाल जी श्रीवास्तव ने पं. जियालाल जी से भी तबले की शिक्षा प्राप्त की थी जो एक गुणी तबला वादक हुए। जिनकी शिष्य-प्रशिष्यों की संख्या बहुती लम्बी है।

हाजी साहब के तीसरे पुत्र का नाम उ. हुसैन अली खाँ था जिनकी तबले की शिक्षा पिता के पश्चात् उनके बड़े भाई उ. निसार से हुई। उ. हुसैन अली खाँ फर्रुखाबाद घराने के प्रतिष्ठित तबला वादक हुए जिन्होंने इस घराने का भरपूर प्रचार-प्रसार किया। उ. हुसैन अली के प्रमुख शिष्यों में उ. मुनीर खां, अता हुसैन खाँ, सुप्पन खाँ, मिअन, मोधू खाँ रईस (लखनऊ) इत्यादि हैं।

उ. मुनीर खाँ अपने समय के सुप्रसिद्ध तबला-नवाज तथा अद्वितीय गुरु माने जाते थे। उ. मुनीर खाँ ने 24 गुरुओं से तबले की शिक्षा प्राप्त की थी जिसमें फर्रुखाबाद घराने के उ. हुसैन अली और निसार अली दिल्ली घराने के खलीफा उ. बोली बख्श, उ. नजर अली खाँ, ताज खाँ, नासिर खाँ पखावजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मुनीर खाँ के शिष्यों-प्रशिष्यों द्वारा तबले का बहुत विकास हुआ। उनके प्रमुख शिष्यों में उ. अमीर हुसैन खाँ (भांजा), उ. गुलाम हुसैन खाँ, उ. अहमदजान थिरकवा, उ. हबीबुद्दीन खाँ (मेरठ) उ. शमशुद्दीन खाँ इत्यादि हैं।

उ. हाजी विलायत अली खाँ के चैथे पुत्र उ. नन्हे खाँ थे। कुछ लोग उन्हें पुत्र न मानकर पौत्र मानते हैं। उ. नन्हे खाँ के पुत्र उ. मसीतउल्ला खाँ (मसीत खाँ) अपने समय के प्रतिष्ठित तबला वादक और आदर्श गुरु हुए। उ. मसीत खाँ को रामपुर दरबार में राज्याश्रय प्राप्त था परन्तु नवाब हामिद अली की मृत्यु के बाद वे कलकत्ता चले गये। लगभग 80 वर्ष की आयु में वहीं इनका निधन हुआ। उ. मसीत खाँ के पुत्र उ. करामतउल्ला खाँ अपने समय के प्रतिष्ठित तबला वादक हुए। आपके पुत्र उ. साबिर खाँ वर्तमान समय में फर्रुखाबाद घराने के सुयोग्य तबला वादक हैं जो इस घराने का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

उ. मसीत खाँ के शिष्य व प्रशिष्य परम्परा में पद्मभूषण पं. ज्ञान प्रकाश घोष, कन्हाईदत्त, हिरेन्द्र किशोर राय चैधरी, उ. मुन्ने खाँ (लखनऊ) अजीम खाँ, मंटू बाबू, हेमेन्द्र नाथ सरकार इत्यादि प्रमुख हैं। पं. ज्ञान प्रकाश घोष के प्रमुख शिष्यों में पं. निखिल घोष, पं. शंकर घोष एवं पं. अनिंदो चटर्जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। पं. निखिल घोष के पुत्र पं. नयन घोष एक सुयोग्य तबला एवं सितार वादक हैं। पं. शंकर घोष के पुत्र पं. विक्रम घोष एक प्रसिद्ध तबला वादक हैं। पं. अनिन्दो चटर्जी के पुत्र अनुब्रत चटर्जी एक होनहार तथा युवा तबला वादक के रूप में इस परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं।

फर्रुखाबाद घराने के विकास में हाजी साहब की पत्नी के भाई सलारी खाँ जो उनके गुरु भाई तथा साला थे उनकी भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सलारी मियाँ ने हाजी साहब की गतों के जवाबी तोड़े तथा दिल्ली के पेशकार में परिवर्तन करके उसका एक नवीन रूप तैयार किया। हाजी साहब की तरह ही सलारी खाँ की गतों को भी फर्रुखाबाद घराने में काफी महत्व दिया जाता है। सलारी खाँ की जवाबी गतें काफी मशहूर हैं।

सलारी खाँ की शिष्य परम्परा में मुस्तफा हुसैन, गुलाब हुसैन तथा हबीब उल्ला तथा प्रशिष्यों में बाबू खाँ उर्फ हैदर हुसैन, गुलाम मोहम्मद, फैयाज खाँ, (मुरादाबाद वाले) बसुआ खाँ, चुन्नी लाल बन्दोपाध्याय, सरदार खाँ, मेहदी खाँ इत्यादि हुए। उ. हाजी विलायत अली के एक शिष्य उनके दामाद उ. हुसैन बख्श जो हैदराबाद के थे। उ. हुसैन बख्श के प्रशिष्यों में उ. शेख दाऊद का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इनके एक विख्यात शिष्य चूड़िया इमाम बख्श थे। उनकी परम्परा में उनके पुत्र हैदर बख्श, पौत्र बन्दे हसन (अलीगढ़) तथा प्रशिष्य बालू भाई रूकड़ीकर एवं सत्य नारायण वशिष्ठ के नाम प्रमुख रूप से हैं।

हाजी साहब के एक शिष्य पटना के मुबारक अली खाँ थे, उनसे इन्दौर के उ. जहाँगीर खाँ तथा लियाकत अली ने तबले कि शिक्षा ली थी।

उ. मुनीर खाँ के शिष्यों में पद्मभूषण उ. अहमद जान थिरकवा का नाम काफी आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। इनके शिष्यों में दामाद अहमद अली, पुत्र नबी जान, मुहम्मद जान, अली जान के अतिरिक्त लाल जी गोखले (पूणे), स्व. प्रेम बल्लभ (दिल्ली), स्व. निखिल घोष (बम्बई), सूर्यकान्त गोखले, एम.वी. भिंडे, नारायण राव जोशी, मोहन लाल जोशी, प्रो. सुधीर कुमार वर्मा, स्व. रामकुमार वर्मा, स्व. अहमद मियाँ, सरवत हुसैन, रोजवेल लायल, गुलाम अहमद तथा राशिद मुस्तफा इत्यादि प्रमुख हैं।

स्व. उ. अमीर हुसैन के पुत्र स्व. फकीर हुसैन खाँ भी एक सुयोग्य तबला वादक थे। इनके शिष्यों में पं. अरविन्द मुलगांवकर, पं. पंढरीनाथ नागेशकर, गुलाम रसूल, निखिल घोष, शरीफ अहमद, बाबा साहेब मिरजकर, इकबाल हुसैन, पांडुरंग सोलंकी और डॉ. अबान ई. मिस्त्री के नाम विशेष रूप से हैं।

पं. पंढ़रीनाथ नागेशकर के शिष्य पद्मश्री पं. सुरेश तलवलकर एक अन्तर्राष्ट्रीय एवं ख्यातिलब्ध तबला वादक हैं। इनके कई शिष्य आज राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अपनी प्रस्तुति दे रहे हैं। जिसमें मुख्य रूप से पद्मश्री पं. विजय घाटे, राम दास पलसुले, सुप्रीत देशपांडे, प्रोफेसर प्रवीण उद्धव, निजामुद्दीन जावेद तथा आपके पुत्र सत्यजीत तलवलकर एवं पुत्री सावनी तलवलकर प्रमुख हैं।

वादन शैली की विशेषता-

फर्रुखाबाद घराने की उत्पत्ति लखनऊ घराने से ही हुई है तथा यह घराना पूरब बाज के अंतर्गत आता है। उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ ने कई वर्षों तक उस्ताद बख्शू खाँ से तबले की विधिवत शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात अपने प्रतिभा एवं योग्यता के बल पर फर्रुखाबाद घराने की नींव डाली। उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ ने तबले पर बजाई जाने वाली रचनाएं, भाषा, बोल एवं बोल संयोजन को और अधिक परिष्कृत कर एक नया स्वरूप तबला जगत को प्रदान किया। उन्होंने अपनी रचनात्मक सृजनशीलता के बल पर लखनऊ घराने की वादन शैली को और अत्यधिक विकसित कर उसे एक नया स्वरूप प्रदान किया।

फर्रुखाबाद घराना पूरब बाज की ही शाखा होते हुए भी इसकी वादन शैली ना तो लखनऊ के समान नृत्य से प्रभावित है और ना बनारस तथा पंजाब घराने जैसा जोरदार है, न ही दिल्ली के समान किनार का है। अन्य घरानों के समान इस घराने में भी पेशकार तथा कायदा बजाए जाते हैं परंतु इस बाज में रेले को एक नए रूप में बजाने की प्रथा विकसित की गई है जिसे 'रौ' या रविश कहते हैं। इस घराने की वादन शैली की एक खास विशेषता यह भी है की यहां

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.006

की रचनाओं में गतों को काफी महत्व दिया जाता है। आज भी हाजी साहब, सलारी मियां या फर्रुखाबाद की गतों को विद्वानों के द्वारा बड़े आदर के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इस घराने में गतों को लयकारी के भिन्न-भिन्न दर्जों में बजाया जाता है। इस घराने के तबला वादन में एक अन्य विशेषता चलन, चाला या चाल प्रस्तुत करने की है जो अन्य घरानों में नहीं है। फर्रुखाबाद घराने में तकतक, धिरधिर, घिड़नग, दिनतक आदि बोल समूहों को अत्यधिक मात्रा में बजाया जाता है।

इस संदर्भ में डॉ. आबान ई. मिस्त्री अपनी पुस्तक में लिखी हैं, ''इस घराने की चर्चा करते हुए उस्ताद अहमद जान थिरकवा ने कहा था कि फर्रुखाबाद का तबला शुद्ध तबला है। दूसरे घराने की भांति इसमें ताशा के बोल(तींतीं), नक्कारा के बोल(नाड़ नाड़), ढोल तथा खंजरी के बोल इत्यादि नहीं मिलते। विविध साजों के बोलों से तबले का विस्तार तो अवश्य होता है किंतु शुद्धता खत्म हो जाती है। जो भी हो किंतु फर्रुखाबाद का तबला मधुर संयत एवं संतुलित है इतना मानना पड़ेगा।''

इस संदर्भ में पं. विजय शंकर मिश्र जी कहते हैं कि, "हाजी विलायत अली खाँ, उस्ताद मोदू खाँ और बख्शू खाँ के साथ लखनऊ दरबार में काम करते थे। इन लोगों के लखनऊ आने से पहले वो वहां एक तबला वादक के रूप में जाने जाते थे। पहले से उनको तबला बजाने आता था। उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ उस्ताद बख्शू खाँ के तबले से प्रभावित हुए और उन्हें लगा कि और तबला सीखना चाहिए। इसलिए उन्होंने उनकी शागिर्दी कबूल कर ली। तथा उन्होंने बख्शू खाँ से तबला सीखा।

उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ ने फर्रुखाबाद के तबले को लखनऊ घराने की वादन शैली से अलग करने के लिए दिल्ली का बंद तबला और लखनऊ का खुला तबला दोनों को मिलाकर बजाना शुरू किया। लखनऊ और फर्रुखाबाद की वादन शैली में ज्यादा अंतर नहीं है। वहां की रचनाओं में अंतर है। उन्होंने अलग-अलग तरह की रचनाएं रचीं जैसे जो आज यह पेशकार 'धिक्ड़धिंधा धाऽधिंधा धातिधाति धाधाधिंधा' पूरी दुनिया बजाती है और यह फर्रुखाबाद की रचना है। इस पेशकार का आविष्कार फर्रुखाबाद में हुआ। चाला फर्रुखाबाद की देन है। रेले की चरम स्थिति 'रौ' ये फर्रुखाबाद की देन है। तो वादन शैली के आधार पर फर्रुखाबाद, लखनऊ से अलग हुआ। यह अलग बात है कि वहां के कलाकार बजाते हैं तो कहीं लव का प्रयोग करते हैं तो कहीं चांटी का प्रयोग करते हैं। हाजी साहब ने बहुत अच्छी-अच्छी गतें बनाई। सलारी खाँ जो बख्शू खाँ के बेटे थे, जो हाजी साहब के साथ ही रहते थे तो उन्होंने उन गतों के जोड़े बनाए।''

तबले का रख-रखाव एवं बैठक-

फर्रुखाबाद घराने के तबला वादक पद्मासन में बैठकर ही तबला बजाते हैं। उस्ताद मुनीर खाँ, उस्ताद अमीर हुसैन खाँ, उस्ताद अहमद जान थिरकवा, करामतुल्ला खाँ आदि सभी कलाकार पद्मासन में बैठकर तबला बजाया करते थे। फर्रुखाबाद घराने के वर्तमान में जो भी कलाकार है वे सभी पद्मासन में बैठ कर ही तबला वादन करते हैं।

इसके अतिरिक्त तबले का रख-रखाव तबला वादक की अपनी रुचि एवं व्यक्तिगत शैली पर भी निर्भर करता है। कुछ तबला वादक तबले को आगे की ओर अधिक झुका कर रखते हैं, एवं कुछ तबला- बायाँ थोड़ा सीधा करके रखते हैं। इस घराने में तबले का रख-रखाव लखनऊ घराने से बहुत मिलता जुलता है। इसमें कुछ

खास परिवर्तन नहीं देखने को मिलता है। वादक की रूचि के अनुसार तबले के आकार में भेद दिखाई देते हैं। जैसे उस्ताद अहमद जान थिरकवा एवं उस्ताद अमीर हुसैन खाँ को आस एवं गूंज अधिक पसंद होगी इसलिए वे बड़े मुंह का तबला बजाना पसंद करते थे। पंडित सुरेश तलवलकर जी भी बड़े मूंह का ही तबला बजाते हैं।

फर्रुखाबाद घराने में तबले के वर्णों का निकास-

लखनऊ घराने में बजने वाले लगभग सभी बोल फर्रुखाबाद घराने में बजाए जाते हैं, और करीब-करीब निकास भी सबका एक ही है। लेकिन फिर भी कुछ बोल एवं वर्ण ऐसे हैं जिन्हें लखनऊ घराने के निकास से तो बजाया ही जाता है, उन्हीं वर्णों को कुछ बंदिशों में दिल्ली के निकास पद्धति के अनुसार भी बजाते हैं। इस प्रकार फर्रुखाबाद घराने की वादन शैली में लखनऊ घराने की निकास पद्धति के साथ-साथ दिल्ली घराने की निकास पद्धति का सम्मिश्रण किया गया है। जैसे 'तिरकिट' बोल कायदा, रेला, टुकड़ा, गत तथा रौ आदि लगभग सभी रचनाओं में प्रयोग किया जाता है। परंतु रचना के अनुसार तिरकिट का निकास बदलता रहता है। कुछ कायदे फर्रुखाबाद में ऐसे हैं जो चाँटी और स्याही का प्रयोग करके दो अंगुलियों से बजाया जाता है।

''उदाहरण के लिए फर्रुखाबाद का एक कायदा देखिए जो पं. मुलगांवकर जी द्वारा रचित है, जिसमें दिल्ली घराने के निकास पद्धति का प्रयोग किया गया है-

धाऽऽधा तिरकिटतिरकिट धाधाऽधा तिरकिटतिरकिट
धाधातिरकिट धातिरकिटधा तिरकिटधिनगिन
नगतिरकिटतक
तिरकिटतिरकिट धातिरकिटधा तिरकिटधिनगिन
नगतिरकिटतक
नगतिरकिटतक तागेतिरकिटधागे तिरकिटधिनागिन
नकतिरकिटतक
ताऽऽता तिरकिटतिरकिट ताताऽता तिरकिटतिरकिट
तातातिरकिट तातिरकिटता तिरकिटतिनकिन
नगतिरकिटतक
तिरकिटतिरकिट धातिरकिटधा तिरकिटधिनगिन
नगतिरकिटतक
नगतिरकिटतक तागेतिरकिटधागे तिरकिटधिनागिन
नगतिरकिटतक

इस कायदे में तिरकिट बोल दो बार लगातार भी आया है और एक बार भी आया है। दोनों तिरकिट का निकास इस प्रकार है -

तिरकिटतिरकिट

ति	र	कि	ट
मध्यमा से	तर्जनी से	बायें पर	अनामिका से

तिरकिट

ति	र	कि	ट
मध्यमा से	तर्जनी से	बायें पर	मध्यमा से

फर्रुखाबाद घराने में स्वतंत्र तबला वादन प्रस्तुत करने का व्यवस्थित क्रम-

फर्रुखाबाद घराने के कलाकार अपने स्वतंत्र वादन का प्रारंभ ठेका बजाने के पश्चात पेशकार, चाला या चलन की प्रस्तुति से करते हैं। इसके बाद अलग-अलग कायदों का वादन किया जाता है जो कि आड़ लय या बराबर की लय में होते हैं। तत्पश्चात विभिन्न प्रकार के रेले बजाते हैं जैसे छन्द रेला, कायदा रेला, स्वतंत्र रेला आदि। इसके उपरांत इस घराने में रौ बजाने का बहुत प्रचलन है और फिर रौ बांधने के बाद उसमें विभिन्न प्रकार की गतों का वादन किया जाता है

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.006

जो कि फर्रुखाबाद घराने की विशेषता है। गतों की प्रस्तुति के बाद अनेक प्रकार के चक्रदार टुकड़े, परन बजाते हुए अपने वादन को समाप्त करते हैं। कुछ तबला वादक लग्गी से अपने स्वतंत्रत तबला वादन का समापन करते हैं।

अत: यह कहा जा सकता है कि फर्रुखाबाद घराने के द्वारा निर्मित पेशकार इस घराने की खास विशेषता बन गया। इस घराने में विभिन्न प्रकार की गतों की प्रस्तुति किया जाता है। इस घराने की वादन शैली में चलन, चाला या चाल, रेला, रौ आदि की प्रस्तुति की जाती है।

संदर्भ

1. मिस्त्री डॉ. आबान ई., पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें, पृ. 155
2. मिश्र, पं. छोटेलाल, ताल प्रबन्ध, पृ. 16
3. मुलगांवकर पं. अरविंद, अनुवादक-त्रिवेदी, श्री वीणा, तबला, पृ. 281
4. माईणकर, श्री सुधीर, तबला वादन में निहित सौन्दर्य, पृ. 215
5. मिस्त्री, डॉ. अबान ई., पखावज एवं तबला के घराने एवं परम्परायें, पृ. 159
6. साक्षात्कार, मिश्र, पं. विजय शंकर, दिनांक 15.12.2021
7. शोध प्रबन्ध, हरि, हरिओम, पृ. 49

DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.007

राग सृजन की गणितीय सम्भावना

रूपम बसाक*, डॉ. श्यामा कुमारी**

सारांश

ललित कलाओं में संगीत का स्थान सर्वोपरि है। संगीत के मूल तत्व - स्वर, लय, एवं पद, अत्यंत सूक्ष्म, अमूर्त, गतिशील तथा जीवन्त हैं। इन्ही तत्वों के कारण संगीत का सम्बन्ध - इतिहास, मनोविज्ञान, सौंदर्यशास्त्र, ध्वनि-विज्ञान इत्यादि कई विषयों से है। इसी क्रम में संगीत और गणित का भी घनिष्ट सम्बन्ध है। खण्डमेरु द्वारा स्वर प्रस्तार हो या ताल के क्षेत्र में विकट लयकारियाँ सभी स्थानों पर संगीत एवं गणित अन्तर्सम्बंधित हैं। इसी क्रम में नवीन राग निर्मिती में भी गणित का विशेष स्थान है। प्रस्तुत शोध-आलेख का उद्देश्य नवीन राग संरचना में गणित के प्रयोजन के आधार को स्पष्ट करना है। यह शोध यह प्रतिपादित करने का प्रयास करता है कि किस प्रकार गणितीय स्वर-संयोजन, अनुपात एवं संभावनाओं के माध्यम से नवीन रागों की संरचना सम्भव है। इस प्रकार यह अध्ययन संगीत और गणित के गहन अन्तर्सम्बन्ध को रेखांकित करते हुए नवीन राग संरचना के लिए एक सुदृढ़ वैचारिक आधार प्रस्तुत करता है।

महत्वपूर्ण शब्द — *संगीत, राग, थाट, जाति, गणित*

प्रस्तावना

भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्परा में राग संगीत को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। शास्त्रीय संगीत की सभी विधाओं के मूल में 'राग' विद्यमान है। ध्रुपद, धमार, ख़्याल, ठुमरी, तराना, टप्पा इत्यादि सभी शास्त्रीय व उपशास्त्रीय संगीत की विधाएँ रागाश्रित होती हैं। 'राग' शब्द का उद्गम मूलत: संस्कृत भाषा के 'रञ्ज' धातु से माना गया है, इसी 'रञ्ज' धातु में 'घञ्' प्रत्यय जुड़ कर 'राग' बनता है, जिससे स्पष्ट होता है कि रंजकता से ही राग है। 'राग' शब्द का पारिभाषिक रूप में प्रयोग सर्वप्रथम 'मतंग कृत बृहद्देशी' मे किया गया है। मतंग के अनुसार 'राग' की परिभाषा इस प्रकार है:-

स्वरवर्ण विशेषेण ध्वनिभेदेन वा पुन:।
रञ्जयते येन य: कश्चित स राग: संमत: संताम्।।
योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषित:।
रंजको जनचित्तानां स च राग: कथितो उदाहृत:।।
(आचार्य मतंग, बृहद्देशी)1

अर्थात् विशिष्ट स्वरों एवं वर्णों से विभूषित ऐसी ध्वनि रचना जिससे मनुष्य के चित्त का रंजन हो उसे आचार्य मतंग ने 'राग' की संज्ञा दी है।

शोधार्थी : गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
Email & rupambasak.vm.2025@bhu.ac.i
सहायक आचार्य : गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
Email & shyama.vocal@bhu.ac.in

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.007

"राग एक निश्चित स्वर समूह है जो स्वर सप्तक से विचरता हुआ रंजकता उत्पन्न करता है, भावों को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करता है और चित्त को प्रसन्नता प्रदान करता है, जिनमें आरोह और अवरोह विद्यमान रहते है, जो वादी- सम्वादी और अनुवादी स्वरों की सहायता से अनेक प्रकार की स्वर लहरियाँ उत्पन्न करता है, जो कला के क्षेत्र मे मूल रस का रूप धारण कर गीत और उसके अन्य अवयवों द्वारा रस का संचार करता है, जिसमे स्वर अपने तीव्रता जाति और तारता गुणों का प्रदर्शन भली-भांति कर सकता है।"[2]

राग का विकास एवं वर्गीकरण

राग के विकासक्रम के साथ ही साथ रागों को वर्गीकृत करने की विभिन्न पद्धतियाँ समय-समय पर प्रचार में आती रहीं यथा, ग्राम राग - देशी राग वर्गीकरण; दश विध राग वर्गीकरण; शुद्ध, छायालग और संकीर्ण राग वर्गीकरण; राग-रागिनी वर्गीकरण; रागांग वर्गीकरण इत्यादि। इसी क्रम में पं॰ लोचन ने अपने ग्रन्थ 'राग तरंगिणी' में थाट-राग वर्गीकरण का बीजारोपण किया है। पं॰ लोचन ने थाट को 'संस्थान' की संज्ञा प्रदान की है।

उन्होनें अपने ग्रन्थ के पंचम अध्याय, 'पंचम तरंग' में 12 संस्थानों का उल्लेख किया है-

1. भैरवी	2. तोड़ी
3. गौरी	4. कर्णाटी
5. केदार	6. ईमन
7. सारंग	8. मेघ
9. धनाश्री	10. पूर्वा
11. मुखारी	12. दीपक

संस्थान, थाट अथवा मेल, ये सभी समानार्थी शब्द हैं। आधुनिक काल में पं॰ विष्णु नारायण भातखण्डे ने थाटों की संख्या 10 मानी है-

1. बिलावल	2. खमाज
3. कल्याण	4. काफी
5. भैरव	6. मारवा
7. पूर्वी	8. आसावरी
9. तोड़ी	10. भैरवी

इन्हीं मुख्य 10 थाटों के अंतर्गत रागों को वर्गीकृत किया गया है। "इस प्रकार लोचन ने किसी समय थाटों के अंतर्गत रागों को रखने की जिस प्रणाली को प्रस्तुत किया था, वह भातखण्डे के समय में पूर्ण वैज्ञानिक और व्यवस्थित रूप में परिणत हुई।"[3]

रागों को वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित वर्गीकरण हेतु पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने जिन दस थाटों की संकल्पना प्रस्तुत की, इस वर्गीकरण पद्धति के निर्माण में वें पं॰ व्यंकटमखी जी के मेलकर्ता प्रणाली से प्रभावित थे। सत्रहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत के महान संगीतज्ञ एवं गणितशास्त्री पं॰ व्यंकटमखी ने सप्तक के शुद्ध व विकृत कुल 12 स्वरों से, 72 मेलकर्ता उत्पन्न करने का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। यह सिद्धान्त पूर्णतया गणितशास्त्र पर आधारित था। इसी सिद्धान्त के आधार पर यदि उत्तर भारतीय संगीत में मेलकर्ताओं (थाटों) की रचना की जाए तो कुल थाटों की संख्या 32 होगी।

सर्वप्रथम सप्तक को दो समभागों में विभाजित किया जाता है, प्रथम समभाग में सा, रे, ग, म, तथा द्वितीय समभाग में प, ध, नि, सां, को रखा जाता है। तत्पश्चात रे, ग, म, ध, नि जैसे चल स्वरों को क्रमबद्ध रूप से शुद्ध एवं विकृत अवस्थाओं में परिवर्तित करते हुए सभी सम्भावित स्वर-संयोजनों (combinations) का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार हमे पूर्वांग एक उत्तरांग के चार - चार स्वर समूह मिलेंगे -

पूर्वांग	**उत्तरांग**
सा रे ग म	प ध नि सां
सा रे ग म	प ध नि सां
सा रे ग म	प ध नि सां

सा रे ग म प ध नि सां

इसके उपरान्त पूर्वांग के प्रथम स्वर समूह, सा रे ग म को उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूहों के साथ बारी-बारी से मिला कर कुल चार सप्तक प्राप्त होंगे -

1. सा रे ग म - प ध नि सां
2. सा रे ग म - प ध नि सां
3. सा रे ग म - प ध नि सां
4. सा रे ग म - प ध नि सां

इसी प्रकार पूर्वांग के सभी स्वर समूहों को उत्तरांग के सभी स्वर समूहों से मिला कर, 4×4 = 16 थाट प्राप्त होते है। इसके पश्चात इन 16 शुद्ध मध्यम वाले थाटों में तीव्र मध्यम के प्रयोग से कुल

16 + 16 = 32 थाट प्राप्त होते हैं।

राग-जाति के आधार पर एक मेलकर्ता से 484 राग

राग में प्रयुक्त स्वरों की संख्या के आधार पर राग की मुख्य तीन जातियाँ है-

- औडव - पाँच स्वर
- षाडव - छः स्वर
- सम्पूर्ण - सात स्वर

किसी सप्तक को औडव रूप देने के लिये दो स्वर तथा षाडव रूप देने के लिये एक स्वर का वर्जन किया जाता है।

सम्पूर्ण जाति के राग में कोई भी स्वर वज्र्य नहीं होने के कारण प्रत्येक मेल से सम्पूर्ण जाति का एक ही राग प्राप्त किया जा सकता है।

षाडव जाति के राग उत्पन्न करने के लिये मेल के आरोह एवं अवरोह से क्रमशः एक - एक स्वर वर्जित किये जा सकते है। प्रथम स्वर षड्ज मूलाधार होने के कारण वर्जित नहीं किया जा सकता, इस प्रकार षाडव जाति के कुल छः आरोह एवं छः अवरोह प्राप्त होंगे -

	आरोह	अवरोह
1.	सा - ग म प ध नि	नि ध प म ग - सा
2.	सा रे - म प ध नि	नि ध प म - रे सा
3.	सा रे ग - प ध नि	नि ध प - ग रे सा
4.	सा रे ग म - ध नि	नि ध - म ग रे सा
5.	सा रे ग म प - नि	नि - प म ग रे सा
6.	सा रे ग म प ध -	- ध प म ग रे सा

प्राप्त आरोह एवं अवरोह को परस्पर मिलकर कुल 6 × 6 = 36 षाडव रागों का निर्माण कर सकते हैं।

औडव जाति के राग के सृजन के लिए 1:2, 1:3, 1:4, 1:5 तथा 1:6 के अनुपात द्वारा स्वरों को क्रमशः वर्जित करना होगा। प्रथम स्वर षड्ज मूलाधार होने के कारण वर्जित नहीं किया जा सकता तथा प्रत्येक अनुपात में पहले स्वर के परिप्रेक्ष्य में परवर्ती स्वर निर्धारित होगा-

अनुपात	वर्जित स्वर	
1:2	रेग, गम, मप, पध, धनि	(5 जोड़ें)
1:3	रेम, गप, मध, पनि	(4 जोड़ें)
1:4	रेप, गध, मनि	(3 जोड़ें)
1:5	रेध, गनि	(2 जोड़ें)
1:6	रेनि	(1 जोड़ा)
		(कुल 15 जोड़ें)

इन अनुपातों द्वारा वर्जित किये जाने वालो स्वरों के कुल 15 जोड़ें मिले जिनसे 15 आरोह एवं 15 अवरोह प्राप्त किये जा सकते हैं।

	आरोह	अवरोह
1.	सा - - म प ध नि	नि ध प म - - सा
2.	सा रे - - प ध नि	नि ध प - - रे सा
3.	सा रे ग - - ध नि	नि ध - - ग रे सा
4.	सा रे ग म - - नि	नि - - म ग रे सा
5.	सा रे ग म प - -	- - प म ग रे सा
6.	सा - ग - प ध नि	नि ध प - ग - सा
7.	सा रे - म - ध नि	नि ध - म - रे सा
8.	सा रे ग - प - नि	नि - प - ग रे सा

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.007

9. सा रे ग म - ध - - ध - म ग रे सा
10. सा - ग म - ध नि नि ध - म ग - सा
11. सा रे - म प - नि नि - प म - रे सा
12. सा रे ग - प ध - - ध प - ग रे सा
13. सा - ग म प - नि नि - प म ग - सा
14. सा रे - म प ध - - ध प म - रे सा
15. सा - ग म प ध - - ध प म ग - सा

इन 15 आरोह एवं 15 अवरोह को परस्पर मिलाकर कुल 15 × 15 = 225 औडव राग प्राप्त किये जा सकते हैं।

व्यावहार की दृष्टि से रागों में सदैव एक समान आरोह एवं अवरोह प्राप्त होना अनिवार्य नहीं होता है। इसी कारण आरोह-अवरोह के भिन्न संरचनाओ के आधार पर रागों की कुल 9 उपजातियों की परिकल्पना की गई हैं। यथा-

1. सम्पूर्ण - सम्पूर्ण
2. सम्पूर्ण - षाडव
3. सम्पूर्ण - औडव
4. षाडव - सम्पूर्ण
5. षाडव - षाडव
6. षाडव - औडव
7. औडव - सम्पूर्ण
8. औडव - षाडव
9. औडव - औडव

आरोह - अवरोह की इन नौ उपजातियों को आधार बनाकर प्रत्येक थाट से कुल 484 रागों की सम्भावना मानी गई है।

- सम्पूर्ण - सम्पूर्ण → 1 × 1 = 1
- सम्पूर्ण - षाडव → 1 × 6 = 6
- सम्पूर्ण - औडव → 1 × 15 = 15
- षाडव - सम्पूर्ण → 6 × 1 = 6
- षाडव - षाडव → 6 × 6 = 36
- षाडव - औडव → 6 × 15 = 90
- औडव - सम्पूर्ण → 15 × 1 = 15
- औडव - षाडव → 15 × 6 = 90
- औडव - औडव → 15 × 15 = 225

(कुल 484 राग)

इस प्रकार राग - जातियों के आधार पर एक थाट से कुल 484 रागों की उत्पत्ति हो सकती हैं। परन्तु व्यवहार की दृष्टि से औडव जाति के रागों में 1:2 अनुपात द्वारा प्राप्त स्वरों की जोड़ियों, अर्थात्, रेग, गम, मप, पध एवं धनि को वर्जित नहीं किया जा सकता है। इसलिए औडव जाति के कुल

15 - 5 = 10 आरोह एवं 10 अवरोह ही प्राप्त होंगे। इस आधार पर -

- सम्पूर्ण - सम्पूर्ण → 1 × 1 = 1
- सम्पूर्ण - षाडव → 1 × 6 = 6
- सम्पूर्ण - औडव → 1 × 10 = 10
- षाडव - सम्पूर्ण → 6 × 1 = 6
- षाडव - षाडव → 6 × 6 = 36
- षाडव - औडव → 6 × 10 = 60
- औडव - सम्पूर्ण → 10 × 1 = 10
- औडव - षाडव → 10 × 6 = 60
- औडव - औडव → 10 × 10 = 100

(कुल 289 राग)

अर्थात् सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दृष्टि से, राग-जाति के आधार पर, गणित के माध्यम से कुल रागों की संख्या 289 हो सकती हैं।

इसी प्रकार उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में गणित के आधार पर 32 थाटों से कुल,

32 × 289 = 9,248 रागों की उत्पत्ति हो सकती है और यदि इन रागों के वादी व सम्वादी स्वर बदलते जाएँ तो यह संख्या असंख्य का रूप धारण कर सकती हैं।

निष्कर्ष

बौद्धिकता के आधार पर नवीन राग सृजन के कई पैमाने हो सकते हैं, जैसे रागों के मिश्रण से निर्मित राग, रागों में वादी-संवादी के बदलाव

से निर्मित राग, मूर्च्छना पद्धति द्वारा निर्मित राग इत्यादि। इन्हीं संभावनाओं में से एक है यह गणितीय पद्धति। यह गणना राग संरचना में निहित गणितीय सम्भावनाओं को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती हैं कि किस प्रकार केवल एक स्वर सप्तक से, विभिन्न राग-जातियों के आधार पर 289 रागों की उत्पत्ति हो सकती है। यदि इन रागों में वादी एवं संवादी स्वरों का बदलाव करें अथवा मूर्च्छना पद्धति का प्रयोग करें तो असंख्य नवीन रागों की उत्पत्ति सम्भव हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मतंग. बृहद्देशी. श्लोक 263 एवं 264
2. मदन डॉ. पन्ना लाल एवं मदन डॉ. मीरा (जे. कुमार). (2018). संगीत शास्त्र विज्ञान. चंडीगढ़: अभिषेक पब्लिकेशन्स. पृ.58
3. चक्रवर्ती डॉ. इन्द्राणी. (1988). संगीत मंजूषा. दिल्ली: मित्तल पब्लिकेशन्स. पृ.188
4. कुमार अशोक. (2021). संगीत रत्नावाली. चंडीगढ़: अभिषेक पब्लिकेशन्स. पृ.202
5. सौम्या डॉ. शिखा. (2021). भारतीय संगीत परम्परा एवं परिवर्तन (13वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक). जयपुर: प्रिज्म बुक्स (इण्डिया). पृ.355
6. यादव डॉ. नमिता. (2009). मतंग से पूर्व राग की अवधारणा एवं विकास. इलाहाबाद: अनुभव पब्लिशिंग हाउस

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.008

भारतीय संगीत शिक्षण पद्धति की दो धाराएं: परम्परागत एवं संस्थागत

श्रीयानी पाण्डेय*, डॉ. प्रेम किशोर मिश्रा**

सार:-

भारत में संगीत के अध्यापन का कार्य मुख्य रूप से दो पद्धतियों में होता आ रहा है- घरानेदार गुरु शिष्य परम्परा पद्धति और संस्थागत शिक्षण पद्धति। प्राचीन काल में भारतीय संगीत का प्रयोग पक्ष गुरुकुलों में गुरुओं द्वारा सिखाया जाता था। आज भारतीय संगीत में संस्कारगत शिक्षा का श्रेय गुरु शिष्य परम्परा को ही जाता है। इस परम्परा ने 'संगीत' को समृद्ध तो किया, परन्तु यह शिक्षा कुछ प्रमुख शिष्यों या विद्यार्थियों तक ही सीमित रह गई जिससे संगीत के प्रचार-प्रसार पर भी अधिक प्रभाव पड़ा। संगीत को जनसामान्य के लिये सुलभ बनाने की दृष्टि से विष्णुद्वय द्वारा 19वीं शताब्दी से सर्वप्रथम संगीत विद्यालयों की स्थापना कर संस्थागत शिक्षण प्रणाली का प्रारम्भ किया गया। शास्त्रीय संगीत का अधिकतम प्रचार-प्रसार, शिक्षण में नियमबद्धता एवं स्तरीकरण के उद्देश्य से संगीत विषय की संस्थागत स्वरूप में दी गई शिक्षा समसामयिक आवश्यकता थी। अत: इस लेख के माध्यम से संगीत क्षेत्र में शिक्षण परम्परा, अनेकों समस्याओं एवं उपायों पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

मुख्य शब्द :- *संगीत, संस्थागत, परम्परागत, शिक्षा*

सभी प्राणियों में मनुष्य को बुद्धि और विवेक से भूषित आत्माभिव्यक्ति करने में सक्षम श्रेष्ठ प्राणी माना गया है। इस परिवर्तनशील एवं विकासशील सभ्यता में मनुष्य के हृदयगत भावनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम और साधन के रूप में विविध कलाओं का जन्म हुआ। इन सभी विविध कलाओं में सर्वाधिक उत्कृष्ट कला है ''संगीत''। अत: यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण विश्व में सबसे प्राचीन और समृद्ध होने के साथ ही अत्यन्त प्रभावशाली एवं आत्मसन्तुष्टि प्रदान करने वाला हमारा भारतीय संगीत ही है। संगीत हमारी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। भारत में संगीत की शिक्षा प्रणाली में अध्यापन का कार्य मुख्य रूप से दो पद्धतियों में होता जा रहा है। गुरु-शिष्य परम्परा पद्धति जिसे गुरुकुल पद्धति के रूप में भी जाना जाता है और दूसरी संस्थागत पद्धति।

*शोध छात्रा : वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी,
E-mail - shrimusic111@gmail.com, मोबाइल : 9369058020
**सह-आचार्य : वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

संगीत की परम्परागत शिक्षण पद्धति

प्राचीनकाल से ही भारतीय संगीत का प्रायोगिक शिक्षण गुरुकुलों में गुरु-शिष्य परम्परा से होता आ रहा है। भारतीय शास्त्रीय संगीत परम्परागत संगीत है। संगीत की परम्परागत शिक्षण प्रणाली में मुख्य स्थान सदैव गुरु शिष्य परम्परा पद्धति का ही रहा है। परम्परा शब्द अपने आप में एक बहुत ही व्यापक अर्थ वाला शब्द है। 'परम' का अर्थ है श्रेष्ठ और 'परा' का अर्थ है उससे भी श्रेष्ठ। अत: परम्परा के अन्तर्गत हमें अपने पूर्वाचार्यों से जो कुछ भी प्राचीन धरोहर के रूप में शिक्षा द्वारा प्राप्त होता है, उसको उसी रूप में ग्रहण करके जब हम अपने ज्ञान विवेक से उसमें कुछ और जोड़ते है तो उसकी समृद्धि होती है। इस प्रकार अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान की शुद्धता को बनाये रखते हुए उसमें कुछ और भी जोड़ दिया जाये तो वह और भी उत्तम और श्रेष्ठ बन जाता है। अत: विकास का क्रम क्रमश: आगे बढ़ता रहता है। संगीत के अन्तर्गत गायकी और नायकी दोनों का ही समान महत्व माना गया है। गायकी का संबंध किसी कलाकार के व्यक्तिगत कला कौशल से है परंतु नायकी का संबंध उसकी गुरु परम्परा या सम्प्रदाय से है। परन्तु परम्परा का अर्थ यह कदापि नहीं मानना चाहिए कि जो चला आ रहा है हम उसका अंधानुकरण करते चले तथा उसमें कुछ भी परिवर्तन न करें। परिवर्तन तो सृष्टि का नियम है। यदि किसी परम्परा में विवेकपूर्ण परिवर्तन किया जाये तो उससे परम्परा और पुष्ट होती है, नष्ट नहीं होती। भारतीय शास्त्रीय संगीत परम्परागत संगीत है। जितने भी उच्च स्तरीय संगीतज्ञ हुये है, वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गुरु शिष्य परम्परा से ही संस्कारित हुये है। संगीत का इतिहास देखने से हमें यह पता चलता है कि भारतीय परम्परा की मौलिकता उसकी विधाओं का मौखिक आदान-प्रदान रहा है।

भारत की प्राचीन विधायें धर्म, न्याय, अर्थशास्त्र, वैद्यक, शास्त्र, दर्शन या संगीत सभी मौखिक रूप से पढ़ाई जाती थी। इसी प्रकार संगीत शिक्षण में गुरु शिष्य परम्परा का प्रचलन प्राचीन काल से मध्यकाल तक रहा है। यह परम्परा उत्कृष्ट कोटि की परम्परा थी। इस परम्परा में विद्यार्थी गुरुकुल में रहते हुये विद्या ग्रहण करते थे। विद्यार्थी पूर्णत: गुरु के अधीन रहते थे। इस पद्धति में शिष्य कठिन से कठिन स्वरालियों को भी गुरुमुख से सुन कर सीख लिया करते थे। उनकी शिक्षा में संगीत साधना के साथ-साथ संगीत के तकनीकी पक्ष पर भी विशेष जोर दिया जाता था। शिष्यों में गुरुजनों का सम्मान व कठोर साधना के संस्कार पल्लवित होते थे। इस पद्धति से शिष्यों में अनुशासन की भावना भी बनी रहती थी। इस परम्परा में गुरु बहुत ही गिने चुने प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को ही अपना शिष्य बनाते थे और अपने शिष्यों को अभिजात कोटि का कलाकार बनाने में सक्षम होते थे। संगीत कला के सैद्धान्तिक एवं कलात्मक (प्रयोगात्मक) दोनों ही पक्षों का संरक्षण एवं संवर्धन इसी परम्परा से कई वर्षों तक होता रहा।

प्रत्येक गुरु की अपनी विशिष्ट कला के परिणामस्वरूप संगीत, गायन की विभिन्न पद्धतियों का रूप धारण करती है। गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत ही अनेक कलाकारों ने अपनी कठिन साधना तथा उपासना द्वारा संगीत गायन के विभिन्न स्वरूपों, शैलियों और पद्धतियों आदि को परिमार्जित करने के साथ संगीत के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट शैलियों को स्थापित किया है। इन्हीं विशिष्टताओं पर आधारित उनके अपने स्थानों के नाम पर घराने स्थापित होते गये। विद्यादान करने वाले गुरु और प्रतिभाशाली शिष्यों की

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.008

उपस्थिति से ही घराना बनता है। प्राचीन प्रबंध गान की गीतियाँ, ध्रुपद की बानियाँ तथा ख्याल वे घराने इन सभी का विकास गुरु शिष्य परम्परा के आधार पर ही हुआ है।

संगीत शिक्षा की इस पद्धति में न केवल घरानों की अपनी शैलियाँ, अनेक शिष्यों और पुत्रों द्वारा क्रमशः आगे बढ़ी बल्कि इस शिक्षण प्रणाली में संगीत के नवीन रूप विकसित होकर सामने आने लगे जो गुरु-शिष्य परम्परा के कुशल मार्गदर्शन द्वारा ही संभव हो पाया है। संगीत के प्रसिद्ध घरानों में लखनऊ, किराना, ग्वालियर, आगरा, जयपुर आदि है। जिनकी अपनी विशिष्ट गायन शैलियाँ हैं। इस परम्परा ने संगीत को समृद्ध जरूर किया, परन्तु यह शिक्षा कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित थी, जिस कारण संगीत का प्रचार-प्रसार भी सीमित रह गया। इसके अतिरिक्त इस परम्परा में कोई निश्चित पाठ्यक्रम व समयावधि नहीं होती थी जिसके कारण शिष्यों को शिक्षा ग्रहण करने में कई वर्ष लग जाते थे तथा शिक्षार्थी का भविष्य संदिग्धावस्था के बीच रहता था। इन सभी अवस्थाओं के बीच संगीत के क्षेत्र में पुनरूत्थान की क्रान्ति और सुधार की भावना लिये दो उत्साही विद्वानों विष्णु नारायण भातखण्डे तथा विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने संगीत में नवचेतना का आन्दोलन जारी किया, जो सर्वप्रथम संगीत को पाठ्यक्रम (शैक्षिक विषय) में सम्मिलित कर शिक्षा का अंग बनाने के उद्देश्य के लिये था।

संगीत की संस्थागत शिक्षण प्रणाली

आधुनिक काल में प्रयोग की जा रही शास्त्रीय संगीत शिक्षा की संस्थागत शिक्षण प्रणाली के स्वरूप का बीज 19वीं शताब्दी में ही डाला जा चुका था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा बीसवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी एवं पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी और अन्य मूर्धन्य विद्वानों के प्रयत्न से संगीत की संस्थागत शिक्षण पद्धति प्रचलन में आई। इन शिक्षण संस्थाओं में संगीत के क्रियात्मक पक्ष के साथ-साथ संगीत के शास्त्रीय पक्ष की भी शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाने लगी। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् संगीत विद्यालयों की संख्या काफी बढ़ गई। पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर एवं पं. विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा संस्थागत शिक्षण प्रणाली का सूत्रपात सामान्य शिष्यजनों में शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार एवं सम्मान की वृद्धि हेतु किया गया था। विष्णु द्वय का एक ही उद्देश्य था प्राचीन घरानेदार संगीत की धरोहर को जन-जन के समक्ष लाकर संगीत शिक्षण को सुलभ कराना।

सर्वप्रथम संस्थागत शिक्षण में संगीत विद्यालय की स्थापना मौलाबख्श द्वारा 1886 ई. में बड़ौदा में किया गया जो बाद में 'बड़ौदा स्टेट ऑफ म्यूजिक स्कूल' के नाम से जाना गया। इसके पश्चात् 1901 में गान्धर्व महाविद्यालय की स्थापना लाहौर में की गई। इस विद्यालय में प्राचीन गुरुकुल प्रणाली और आधुनिक संस्थागत शिक्षण प्रणाली का अद्भुत समन्वय देखने को मिला। धीरे-धीरे कई अन्य स्थानों में भी गान्धर्व महाविद्यालय की शाखायें स्थापित की गई। संगीत को जन सामान्य में प्रचलित करने के उद्देश्य के साथ क्षेत्र मोहन गोस्वामी जी ने सन् 1871 में कलकत्ता में संगीत विद्यालय की स्थापना कर एक सतत् प्रयास किया। गोस्वामी जी ने स्वरलिपि का भी निर्माण किया परन्तु उनका प्रयास कुछ सीमित क्षेत्रों में ही बंध कर रह गया। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ विशेष विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई जो मुख्य रूप से संगीत की शिक्षा देने के उद्देश्य से ही स्थापित किये गये थे। इनमें 1902 में रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय, कलकत्ता की स्थापना हुई जहाँ साहित्य, संगीत एवं कलाओं

का अनुपम संगम देखने को मिलता है। 1926 में भातखण्डे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ की स्थापना की गई। प्रारम्भ में यह ''मैरिस कॉलेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक'' के नाम से जाना जाता था। 1960 में भातखण्डे जन्म शताब्दी के अवसर पर उन्हीं की पुण्य स्मृति में संस्था का नाम ''भातखण्डे हिन्दुस्तानी संगीत महाविद्यालय'' रख दिया गया। 1926 में ही प्रयाग संगीत समिति की भी स्थापन की गई। 1956 में इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ स्थापित हुआ। यह विश्वविद्यालय भी मुख्य रूप से संगीत की ही शिक्षा प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त 1950 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के अन्तर्गत संगीत विभाग की स्थापना की गई। इस विभाग की स्थापना से प्रेरित होकर संगीत के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में अन्य विश्वविद्यालयों में भी अलग से संगीत विभाग की स्थापना होना प्रारम्भ हो गया। इनमें दिल्ली, इलाहाबाद, पूना, मुम्बई आदि शहरों के विश्वविद्यालयों में स्वतंत्र संगीत विभाग की स्थापना की गई। इन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के अकादमी ने भी संगीत क्षेत्र में अपना विशेष योगदान दिया। इनमें मुख्य रूप से संगीत नाटक अकादमी, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादमी, संकल्प, स्पिक मैके संगीत रिसर्च अकादमी इत्यादि हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि संस्थागत शिक्षण आधुनिक समय में संगीत के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना चुका है। इन शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से अनेक वैज्ञानिक पद्धतियों का भी विकास हुआ जो संगीत क्रिया के साथ मिलकर अद्भुत सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास कर रही हैं। इन सभी संस्थानों में संगीत सम्बन्धित एक निश्चित पाठ्यक्रम होता है जो निश्चित समयावधि में पूर्ण किया जाता है साथ ही संस्थाओं तथा विद्यालयों द्वारा विद्यार्थियों के लिये अनेक आर्थिक अनुदानों की भी व्यवस्था की जाती रही है। जिससे संगीत के विद्यार्थियों का मनोबल तथा विषय में तत्परता बनी रहे।

संगीत के संस्थागत शिक्षण के साथ-साथ विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर व शोधात्मक स्तर पर संगीत शिक्षण तथा आकाशवाणी व दूरदर्शन के साथ-साथ चलचित्र संगीत से तो संगीत का विकास हुआ ही है। इसके साथ ही प्रशासकीय संस्थानों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक समूहों अथवा वैयक्तिक रूप से संगीतज्ञों को अन्य देशों में भेजा जाना, उन्हें पुरस्कृत किया जाना आदि में पूर्णत: संगीत के शैक्षणिक तथा लोकप्रियता के पक्ष को सुदृढ़ किया है। अनेक महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों ने संगीत को अपने अध्यापन की विषयवस्तु बनाया जिससे संगीत की शिक्षा अपेक्षाकृत सुगमता से उपलब्ध होने लगी।

आज हमें संगीत शिक्षा के लिये निर्धारित पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तके, नई परीक्षा विधि तथा संगीत के प्रचार-प्रसार एवं विकास की नई-नई तकनीक के साधन सरलता से प्राप्त होते हैं। राजाओं के दरबारों, नवाबों की महफिलों, हवेलियों और मन्दिरों की चारदीवारी से बाहर निकलकर संगीत ने जन सामान्य के आँगन में भी गुनगुनाना शुरू कर दिया है। आधुनिक काल में संगीत की समृद्ध परम्परा इन दो महान शास्त्रज्ञों द्वारा ही संभव हो सकी है। पं. विष्णु दिगम्बर पलुष्कर तथा पं. विष्णु नारायण भातखण्डे दोनों ही संगीत की वर्तमान गरिमा और प्रतिष्ठा के अधिष्ठाता है।

शिक्षण संस्थाओं में दी जा रही संगीत की सामूहिक शिक्षा से विद्यार्थियों को लाभ होने के साथ-साथ कुछ समस्यएं भी सामने आई हैं। आज संगीत की सूक्ष्मताओं पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना कि निर्धारित पाठ्यक्रम की

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.008

औपचारिकता को पूरा करने पर। इसके अतिरिक्त शिक्षण संस्थाओं में योग्य शिक्षकों का अभाव सहायक वाद्यन्त्रों की कमी, शास्त्रीय तथा प्रयोग पक्ष के शिक्षण में पाठ्यक्रमों की न्यूनता तथा घरों में संगीताभ्यास के लिये उपयुक्त वातावरण उपलब्ध न हो पाना इत्यादि कारणों से भी संस्थाओं में संगीत शिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संगीत शिक्षा के वर्तमान पाठ्यक्रमों में शास्त्रीय संगीत के शिक्षण के साथ-साथ विद्यार्थियों को उनकी प्रतिभा के आधार पर फिल्म संगीत, लोक संगीत, सुगम संगीत के लिये रचना करना, विभिन्न वाद्यों के संगीत रचना करना आदि की शिक्षा भी दी जानी चाहिये जिससे भविष्य में विद्यार्थियों के रोजगार के कई साधन सामने हो।

गुरु-शिष्य परम्परा पर आधारित घराना शिक्षण प्रणाली तथा संस्थागत संगीत शिक्षण प्रणाली के गुण तथा दोषों का आकलन करने के पश्चात् इनके समाधान की तथा संगीत शिक्षा को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। घरानेदार परम्परा एवं संस्थागत शिक्षा पद्धति के परिमार्जित मिश्रण को यदि सुप्रसिद्ध कलाकारों, शासन और संगीत प्रेमियों का सहयोग प्राप्त हो जाये तो आज भी संस्थाओं के द्वारा संगीत की गरिमा को सुरक्षित कर भावी पीढ़ियों तक प्रेषित किया जा सकता है। वर्तमान की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरुप आज एक ऐसी सुसंगठित पद्धति की जरूरत है जो गुरु-शिष्य परम्परा और घराने की विशेषताओं पर आधारित हो, जो शिक्षा से सम्बन्धित नये विकास को समेटती हो, जो नये प्रयोगों तथा नये विचारों का सम्मान करे और जो शास्त्रीय परम्परा की लुप्त विधाओं की पुर्नरचना को प्रोत्साहित करे। अंत में मैं यही कहना चाहूँगी कि गुरु-शिष्य परम्परा की कतिपय अच्छाईयों को सम्मिलित कर आज के वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य से जोड़कर एक सर्वांग सुन्दर संस्थागत शिक्षण प्रणाली का यथासंभव निर्माण किया जाना चाहिये।

सन्दर्भ ग्रन्थ -

1. शर्मा, प्रो. स्वतंत्र, सौन्दर्य, रस एवं संगीत, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, 2010
2. पलनीटकर, डॉ. अलकनंदा, शास्त्रीय संगीत शिक्षा समस्याएं एवं समाधान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, 2017
3. चौधरी, डॉ. सुभद्रा, संगीत संचयन, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर
4. रानी, डॉ. भावना, शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता में सांगीतिक संस्थाओं का महत्व, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008

DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.009

मानव जीवन में संगीत का महत्व

प्रो. रेनू जौहरी*, उदय नारायण पाण्डेय**

भूमिका

मानव जीवन भावनाओं, संवेदनाओं और अनुभूतियों का संगम है। मनुष्य अपने हर्ष विवाद, प्रेम, करूणा, उत्साह और शांति को व्यक्त करने के लिए विभिन माध्यमों का सहारा लेता है, जिसमें संगीत सबसे सशक्त और प्रभावशाली माध्यम है। संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि आत्मा की आवाज है। यह मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक उसके जीवन का अभिन्न अंग बना रहता है। बिना संगीत के जीवन नीरस, सूना और अधूरा प्रतीत होता है।

संगीत शब्द की उत्पत्ति 'सम्' और गीत से मानी जाती है जिसका अर्थ है-सुरो के साथ गाया गया गीत। भारतीय संस्कृति में संगीत को ईश्वर की आराधना का माध्यम माना गया है। वेदों, उपनिषदों और पुराणों में संगीत की महत्ता का वर्णन मिलता है कहा गया है-''गीतम् वाद्यम तथा नृत्यम त्रयं संगीतमूच्यते'' अर्थ, गायन, वादन और नृत्य इन तीनों का समन्वय ही संगीत है।

Key Word *ऐतिहासिक संगीत, भावनात्मक प्रभाव, मानसिक स्वास्थ्य, रोजगार, संगीत शिक्षा शारीरिक स्वास्थ्य।*

संगीत का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व-

संगीत का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यता का आदिमानव ने प्रकृति की ध्वनियों-नदियों की कल-कल पवन की सरसराहट, पक्षियों का कलख से प्रेरणा लेकर संगीत की रचना की। धीरे-धीरे यह लोकगीतों, धार्मिक अनुष्ठानों और सांस्कृतिक आयोजनो का हिस्सा बन गया।

भारतीय संस्कृति में संगीत को देवताओं से जोड़ा गया है। माता सरस्वती की वीणा धारण किये हुये ज्ञान और संगीत की देवी माना गया है भगवान कृष्णा की बांसुरी, भगवान शिव का डमरू ही सभी संगीत की दिव्यता को दर्शाता है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की दो प्रमुख परांपरायें हिन्दुस्तानी संगीत और कर्नाटक संगीत विश्व भर में अपनी विशिष्ट पहचान रखती है। रागों और तालों की वैज्ञानिक संरचना यह सिद्ध करती है कि संगीत केवल कला ही नहीं बल्कि एक गहन विद्या भी है।

शोध निर्देशिका : आचार्या, तबला, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
शोधार्थी : एम. म्यूज/नेट, संगीत-वादन (तबला), संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.009

मानव जीवन में संगीत का भावनात्मक महत्व-

संगीत मानव हृदय को सीधे स्पर्श करता है, यह उन भावनाओं को भी व्यक्त कर देता है, जिन्हें शब्दों में कहना कठिन होता है। जब मनुष्य दुखी होता है, तब करूण रस से भरा संगीत उसे सहारा देता है जब वह प्रसन्न होता है, तब उल्लासपूर्ण धुने उसकी खुशी को द्विगुणित कर देता है।

संगीत तनाव को कम करता है। अवसाद और चिंता से राहत देता है। मन को शांति और संतुलन प्रदान करता है। यही कारण है कि कठिन परिस्थितियों में भी लोग संगीत की ओर आकर्षित होते है। यह मन का सच्चा मित्र है, जो बिना किसी अपेक्षा के साथ निभाता है।

संगीत और मानसिक स्वास्थ्य-

आधुनिक जीवन में तनाव, भागदौड़ प्रतिस्पर्धा ने मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। ऐसे में संगीत एक प्रभावी औषधि के रूप में सामने आया है। संगीत चिकित्सा आज एक मान्यता प्राप्त उपचार पद्धति बन चुकी है। मधुर संगीत सुनने से रक्तचाप, नियंत्रित रहता है। स्मरण शक्ति और एकाग्रता में वृद्धि होती है। नींद की समस्या में सुधार होता है। मानसिक रोगों में सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अल्लासमर, डिप्रेशन, आंटिज्म जैसे रोगों में संगीत चिकित्सा के अच्छे परिणाम है संगीत केवल मनोरंजन नहीं बल्कि स्वास्थ्य का रक्षक भी है।

संगीत और शारीरिक स्वास्थ्य-

संगीत का प्रभाव केवल मन तक सीमित नहीं रहता है, बल्कि शरीर पर भी पड़ता है योग, ध्यान और प्राणायाम के साथ जब संगीत जुड़ जाता है तो उसका प्रभाव कई अधिक बढ़ जाता है। व्यायाम करते समय संगीत थकान को कम महसूस कराता है। ऊर्जा और उत्साह बढ़ाता है कार्य क्षमता में वृद्धि होती है। लयबद्ध संगीत हृदय की धड़कन और श्वास-प्रश्वास को संतुलित करता है। जिससे शरीर स्वस्थ रहता है।

शिक्षा में संगीत का महत्व-

संगीत शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह बच्चों के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है, संगीत सीखने से अनुशासन और धैर्य का विकास होता है। रचनात्मकता और कल्पना शक्ति बढ़ती है।

शिक्षा में संगीत का उद्देश्य केवल पुस्तकीय ज्ञान देना नहीं है बल्कि विद्यार्थियों का सर्वागीण विकास करना है इस दृष्टि से संगीत का शिक्षा में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत न केवल शिक्षा को रोचक और आंनददायक बनाता है, बल्कि विद्यार्थियों के मानसिक बौद्धिक और भावनात्मक विकास में भी सहायक होता है।

संगीत के अभ्यास से विद्यार्थियों की एकग्रता और स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। राग, ताल और लय का नियमित अभ्यास मष्तिष्क को सक्रिय रखता है, जिससे पढ़ाई में ध्यान केन्द्रित करना आसान हो जाता है। अनेक शोधों से यह सिद्ध हुआ है कि संगीत से जुड़े विद्यार्थी भाव जैसे विषयों में बेहतर प्रदर्शन करते है क्योंकि संगीत में अनुशासन, गणना और क्रमबद्धता निहित होती है।

शिक्षा में संगीत का एक बड़ा महत्व व्यक्तित्व विकास में दिखाई देता है। संगीत

सीखने से आत्मविश्वास, धैर्य और आत्मसंयम का विकास होता है। मंच पर गायन या वादन करने से झिझक दूर होती है और अभिव्यक्ति की क्षमता सशक्त होती है। इसके साथ ही विद्यार्थियों में टीमवर्क, सहयोग और नेतृत्व जैसे गुण विकसित होते है।

वर्तमान समय में नई शिक्षा नीति में भी कला और संगीत आधारित, शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है, जिससे विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास संभव हो सके। शिक्षा में संगीत का महत्व अत्यन्त व्यापक है और यह विद्यार्थियों को सृजनशील, संवेदनशील और संतुलित नागरिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सामाजिक जीवन में संगीत की भूमिका-

संगीत समाज को जोड़ने का कार्य करता है। विभिन्न त्योहारों, विवाह, धार्मिक आयोजनों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में संगीत लोगों को एक सूत्र में बांधता है। लोकगीत किसी क्षेत्र की संस्कृति, परम्परा और जीवनशैली को दर्शाते है भारत की विविधता संगीत में भी झलकती है- भोजपुरी, राजस्थानी, पंजाबी, बंगाली, मराठी, कश्मीरी, लोक गीत सभी अपनी-अपनी पहचान, रखते है। संगीत जाति, धर्म और भाषा की सीमाओं को तोड़कर मानवता का संदेश देता है।

आधुनिक युग में संगीत-

आज तकनीक के विकास ने संगीत को वैश्विक बना दिया है। रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट और सोशल मीडिया के माध्यम से संगीत हर व्यक्ति तक पहुंच रहा है। फिल्मी संगीत, पॉप, रॉक, जैज, फ्यूजन संगीत के अनेक रूप विकसित हुये है।

संगीत में रोजगार-

वर्तमान समय में संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं रह गया है यह रोजगार और करियर का एक सशक्त माध्यम बन चुका है। जिन लोगों में संगीत के प्रति रूचि और प्रतिभा होती है उनके लिए यह क्षेत्र अनेक अवसर प्रदान करता है। सही प्रशिक्षण, अभ्यास और समर्पण के साथ संगीत में उज्ज्वल भविष्य बनाया जा सकता है।

संगीत के क्षेत्र में सबसे प्रमुख रोजगार गायन और वादन से जुड़ा है। शास्त्रीय, सुगम, लोक और फिल्मी संगीत में गायक तथा वाद्य कलाकार के रूप में काम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय और संगीत अकादमियों में संगीत शिक्षक या प्रोफेसर बनने के भी अच्छे अवसर है। आज कई लोग ऑनलाइन प्लेटफार्म के माध्यम से भी संगीत शिक्षण कर रहे है।

फिल्म, टेलीविजन, वेब सीरीज और विज्ञापन जगत में संगीत निर्देशक और संगीत संयोजक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वही रिकॉर्डिंग स्टूडियो, रेडिया और टीवी, चैनलों में साउंड इंजीनियर और म्यूजिक प्रोड्यूसर के रूप में भी रोजगार मिलता है। डिजिटल युग में यूट्यूब, सोशल मीडिया और म्यूजिक ऐप्स ने नए कलाकार के लिए अवसरों के द्वार खोल दिये है।

निष्कर्ष-

संगीत मानव जीवन का प्राण है। यह हमारे सुख-दुःख का साथी, मन का चिकित्सक समाज का सेतु और आत्मा का मार्गदर्शक है। संगीत के बिना जीवन की कल्पना करना वैसा ही है जैसा रंगों के बिना चित्र। आज के तनावपूर्ण युग में

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.009

हमें संगीत को अपने जीवन में स्थान देना चाहिये, ताकि हम मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से संतुलित जीवन जी सके।

''संगीत जीवन है और जीवन में संगीत ही सच्चा आनन्द है।''

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमार अशोक, संगीत रत्नावली, प्रकाशक-अभिषेक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ.सं.-4
2. वसन्त, संगीत विशारद प्रकाशक-संगीत कार्यालय हाथरस उ.प्र., पृ.सं.-121
3. शर्मा डॉ. स्वाति, संगीत चिकित्सक, प्रकाशक-श्री विनायक पब्लिकेशन, आगरा, पृ.सं.-168
4. कुमार विवेक, 18 News 18 Uttar Pradesh April 26, 2025
5. कुमार अशोक, संगीत रत्नावली, प्रकाशक-अभिषेक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ.सं.-519
6. नॉर्ड एंग्निया 6 जुलाई, 2020 www.hordangliachordangliacduation. com-
7. शर्मा डॉ. स्वाति, संगीत चिकित्सक, प्रकाशक-श्री विनायक पब्लिकेशन, आगरा, पृ.सं.-190
8. श्रीवास्तव, डॉ. वीणा, भारतीय लोक संगीत, प्रकाशन-राधा पब्लिकेशन्स, पृ.सं.-246

शास्त्रीय एवं अर्धशास्त्रीय विधाओं में तबला संगत: परंपरा, परिवर्तन और कला-यात्रा

अजय शर्मा* बी वर्षा**

सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत में लय और ताल की प्रधानता अनादि काल से रही है, और तबला इस धरोहर का अभिन्न अंग है। यद्यपि तबले का विकास एक स्वतंत्र वाद्य के रूप में हुआ, किंतु उसकी वास्तविक सार्थकता संगत की भूमिका में सर्वाधिक दृष्टिगोचर होती है। यह शोध-लेख खयाल गायकी सहित ध्रुपद, ठुमरी, भजन तथा शास्त्रीय नृत्य में तबला संगत के स्वरूप, तकनीकी पक्ष, और सौंदर्यात्मक आयामों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें समय के साथ संगत शैली में आए परिवर्तन, विभिन्न घरानों की शैलीगत छाप, और मंचीय प्रस्तुति में आधुनिक उपकरणों के प्रभाव का अध्ययन भी सम्मिलित है। लेख का उद्देश्य तबला संगत की गहन समझ विकसित करना, उसके सांगीतिक महत्त्व को रेखांकित करना, और आगामी पीढ़ियों के लिए इस कला के संरक्षण की आवश्यकता पर बल देना है।

मुख्य शब्द : *तबला संगत, खयाल गायकी, घराना शैली, लय और ताल, अर्द्धशास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय नृत्य।*

1. भूमिका

भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्राणतत्व ताल और लय है। राग जहाँ सुर-संयोजन और भाव-उद्‌बोधन का आलोक रचता है, वहीं ताल उस आलोक को धारण करने वाली ढाँचा-रचना है, जो सम, खण्ड, उपखण्ड और आवर्तन के अनुशासन से प्रस्तुति को स्थैर्य प्रदान करती है। इसी लयी अनुशासन में संगत का सौन्दर्य निहित है, सहगामी कलाकार केवल पृष्ठभूमि नहीं रचता, बल्कि मुख्य कलाकार के भाव-विस्तार, राग-विकास और आलाप–तान–बोल की गति के साथ सूक्ष्म संवाद स्थापित करता है। रस और भाव के सिद्धान्तों के अनुरूप संगतकार का सजग श्रवण, पूर्वानुमान, और सम पर संगति का सटीक प्रतिष्ठापन, प्रस्तुति की सम्पूर्णता का आधार बनता है। फलत: गायन, वादन अथवा नृत्य, किसी भी विधा में, उचित संगत के बिना प्रस्तुति अपूर्ण और एकांगी प्रतीत होती है; संगत ही श्रोता के मन में लय-बोध दृढ़ करती है, रचना का भार वहन करती है और रसाभिव्यक्ति को सम्पूर्णता तक ले जाती है।

तबला का उद्‌भव और विन्यास भारतीय वाद्य-परम्परा में एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक चरण का द्योतक है। यद्यपि उत्पत्ति के सम्बन्ध

* शोधार्थी, विक्रम विशवविद्यालय, उज्जैन, मध्य प्रदेश।

** शोध निर्देशक, प्राध्यापक, शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम, मध्य प्रदेश।

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.010

में विभिन्न मत उद्धृत हैं, पर यह निर्विवाद है कि युगान्तरों में पखावज-परम्परा तथा दरबारी-संगीत के विकास के साथ-साथ, दायाँ–बायाँ के संयुक्त स्वर-क्षेत्र, ध्वनि-गुण और सूक्ष्म नाद-परिवर्तनों ने तबले को विशिष्ट लय–माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित किया। मध्ययुगीन काल से लेकर आधुनिक मंच-परम्परा तक, ध्रुपद–धमार, ख़याल, ठुमरी तथा कथक-नृत्य की संगत ने इसके वादन-शैलियों को परिष्कृत किया; घराना-परम्पराओं का गठन हुआ; और नाद, उँगली-प्रयोग, बोल-विन्यास तथा सम पर प्रत्यावर्तन की सौन्दर्य-मीमांसा विकसित हुई। गुरु–शिष्य परम्परा में सन्निहित कठोर साधना, रचनात्मक अनुशासन और सह-अनुभूति के संस्कार ने तबला-संगत को केवल ताल-रक्षा का कार्य नहीं रहने दिया, बल्कि उसे सह-शिल्पी के गरिमामय स्थान तक उठाया।

इसी सन्दर्भ में यह भी स्मरणीय है कि संगत का हेतु केवल मात्रा-गणना नहीं, भाव–अनुरूपता है। विलम्बित विस्तार में मन्द्रित, गम्भीर नाद से रचना को आधार देना, मध्य और द्रुत गतिक्रम में समोचित उज्ज्वलता तथा स्पष्ट उच्चारण से रचना की ऊर्जा को धार देना; तथा ठुमरी जैसे भाव-प्रधान शैली-विन्यासों में कोमल लय-आभा, लय–लोचन और अंतर्हित विरामों का सुसंगत सम्मान, ये सब संगत के सूक्ष्म धर्म हैं। नृत्य-विधाओं में पद-संयोजन, तत्कार, भाव-संचार और टुकड़ों–परानों के संरचनात्मक संतुलन के साथ तबले का प्रश्न–उत्तरी संवाद प्रस्तुति को अनुपम रसात्मक अखण्डता प्रदान करता है। इस प्रकार, भारतीय शास्त्रीय संगीत की विविध विधाओं में तबला-संगत लय-संरचना, भाव-संवर्द्धन और कलात्मक सामंजस्य की त्रयी के रूप में कार्यकर होकर, संगीतानुभूति को समग्र और आनन्दरसायित बनाती है।

2. तबला संगत की विशेषताएँ

भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबला संगत केवल ताल की गणना या ठेका प्रस्तुत करने का कार्य नहीं करती, बल्कि वह एक सांगीतिक स्थापत्य का निर्माण करती है जिसमें मुख्य कलाकार की प्रस्तुति सुरक्षित और व्यवस्थित रूप से विकसित होती है। लय की अविचल स्थिरता संगत का प्रथम और सर्वोपरि गुण है; विलम्बित गतिक्रम में तो यह गुण विशेषत: अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि सम के प्रति कलाकार और श्रोता दोनों की सजगता, रचना के सौन्दर्य और विश्वसनीयता की नींव होती है (Sarker, 2025)। संगतकार की यह ज़िम्मेदारी है कि वह आवर्तन के प्रत्येक अंश को समान स्पष्टता और संतुलन से निभाए, जिससे राग-विकास का क्रम बिना किसी लय-विचलन के प्रवाहित हो सके।

तबला-संगत की दूसरी प्रमुख विशेषता है भावानुकूलता। ख़याल, ठुमरी, ध्रुपद या कथक, प्रत्येक शैली का अपना भाव–परिसर और अभिव्यक्ति का तापमान होता है। विलम्बित ख़याल में गम्भीर और ध्यानमग्न वातावरण के अनुरूप मृदुल बोलों का प्रयोग, तानों और आलापों के बीच सूक्ष्म भराव (फिल-इन) और सम के समीप सजग संकेत इस भावानुकूलता के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इसके विपरीत, द्रुत ख़याल में संगतकार का स्वरूप एक संवादी का हो जाता है, जहाँ प्रश्न–उत्तर, तिहाइयों और चंचल बोल-योजना से गायक की रचनात्मक ऊर्जा को प्रतिध्वनित किया जाता है (Sarker, 2025; Sharma, 2020)। ठुमरी में यह भावानुकूलता और भी सूक्ष्म हो जाती है, जहाँ लय का ढाँचा अपेक्षाकृत लचीला होता है और संगतकार को भावानुसार विराम, ठहराव तथा कोमल लय-प्रवृत्ति अपनानी पड़ती है (Verma, 2018)।

तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है कलाकार के साथ सामंजस्य। यह सामंजस्य केवल तानों, मुखड़ों और ठेकों के मिलान तक सीमित नहीं, बल्कि कलाकार के मनोभाव, रचनात्मक प्रवाह और प्रस्तुति की संरचना को सूक्ष्म श्रवण द्वारा समझने और उसके अनुरूप तत्काल प्रतिक्रिया देने की क्षमता है (Khan, 2019)। मंच पर जब गायक, वादक या नर्तक किसी रचनात्मक मोड़ पर पहुँचता है, तो संगतकार का सजग हस्तक्षेप, चाहे वह सम पर एक तीव्र तिहाई हो या मात्राओं का सूक्ष्म विस्तार, पूरी प्रस्तुति में जीवन्तता भर देता है। यही कारण है कि उत्कृष्ट तबला-संगत केवल लय-संरक्षक नहीं, बल्कि सह-रचनाकार के रूप में सम्मानित होती है।

3. विभिन्न संगीत विधाओं में तबला संगत

(क) ध्रुपद : ध्रुपद, भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्राचीनतम और सर्वाधिक गंभीर विधाओं में से एक है। इसमें प्रयुक्त लय–संरचना स्थिर, गाम्भीर्यपूर्ण और गूढ़ भावभूमि से युक्त होती है। ध्रुपद में तबला का प्रयोग अपेक्षाकृत आधुनिक काल में सीमित रूप से हुआ, परन्तु इसकी संगत में पखावज-शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। यहाँ संगतकार को भारी और दीर्घस्वर बोलों, गहरी सम तथा स्थिर लय का निर्वाह करना पड़ता है, जिससे रचना का वैदिक–ध्यानात्मक वातावरण अक्षुण्ण रहे (Khan, 2019)। इस विधा में अलंकरण या अत्यधिक भराव की अपेक्षा सम पर सटीक प्रतिष्ठापन और लय की स्थिरता ही संगत की सफलता का मानदंड है (Sharma, 2020)।

(ख) ख़याल : ख़याल में तबला-संगत की भूमिका समय, गतिक्रम और भाव के अनुसार रूपान्तरित होती है। विलम्बित ख़याल में संगतकार एक स्थापत्य–निर्माता की तरह कार्य करता है, जहाँ लय के अचल प्रवाह के साथ-साथ, गायक की राग-विस्तार प्रक्रिया के अनुरूप सूक्ष्म बोलों का प्रयोग किया जाता है (Sarker, 2025)। विलम्बित ख्याल में तबला हमेशा विलम्बित लय की ही ताल जैसे एक ताल, तीनताल, झूमरा, रूपक ताल, तिलवाड़ा या आड़ाचार में बजाया जाता है। संगतिकार ठेका भराव के साथ वादन करता है और अंत में एक मात्रा, आधी मात्रा या अधिकतम दो मात्राओं की तिहाई या छोटा टुकड़ा बजाकर सम पर पहुँचता है। तिहाई सामान्य है, लेकिन टुकड़ा तभी बजाया जाता है जब मुख्य कलाकार अनुमति दे। स्थाई या अंतरा पूरा होने पर बोल बांट शुरू होती है, जहाँ गायक की लय और बोलों के वजन के अनुसार ही तबला संगति की जाती है। उदाहरण के लिए रूपक ताल का बोल भराव कुछ इस प्रकार होगा :

ती, ऽत्रक ती ऽ नाना तिरकिट	धीधी नानातिट	धीधी नानातिट
x	1	2
ती		
x		

इसके विपरीत, द्रुत ख़याल में संगतकार का स्वरूप संवादी हो जाता है, गायक की तानों और चंचलता का उत्तर तिहाइयों, टुकड़ों और लघु-लयकारी से देना, और सम पर तीक्ष्ण प्रभाव उत्पन्न करना इसकी विशेषता है (Sharma, 2020)। इस विधा में सामंजस्य, तात्कालिक रचनात्मकता और लय-शक्ति का संतुलन सर्वोपरि है। द्रुत ख्याल की शुरुआत में तबला वादक ताल और सम पहचान कर छोटा टुकड़ा या मुहरा बजाकर ठेका पकड़ता है, और कभी-कभी सीधे ठेके से भी शुरू करता है। द्रुत लय में पूरे समय ठेका ही आधार रहता है। जब गायक बंदिश को स्थापित कर ले, तब वादक अवसर देखकर छोटा

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.010

टुकड़ा बजा सकता है। रूपक, झपताल, तीनताल और एकताल जैसे ठेके द्रुत गति में बजाए जाते हैं और संगति हमेशा गायक की लय और शैली के अनुरूप रहती है। उदाहरण स्वरुप रूपक ताल में मध्य व द्रुत लय में मुखड़े का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है:

ती	ती	ना	किडनग	तिरकिट	तकताऽ	तिरकिट
x			1		2	
ती						
x						

(ग) ठुमरी एवं अर्द्धशास्त्रीय विधाएँ

ठुमरी, कजरी, दादरा जैसी अर्द्धशास्त्रीय विधाओं में तबला-संगत का केन्द्रीय तत्व है भाव–प्रधानता। यहाँ लय की कठोरता से अधिक महत्व भाव के प्रवाह और गीत की अर्थव्यंजना को दिया जाता है। संगतकार को गायक के प्रत्येक ठहराव, भाव-परिवर्तन और विराम पर सजग प्रतिक्रिया देनी होती है, साथ ही आवश्यकतानुसार लग्गी, रेला और हल्की भरावन का प्रयोग करना होता है (Verma, 2018)। इस प्रकार, ठुमरी में तबला न केवल ताल रखता है, बल्कि भावानुसार लय को मोड़ने और श्रोताओं को रस-परिसर में रखने का कार्य भी करता है (Sarker, 2025)।

निम्नलिखित दो विश्लेषण के माध्यम से ठुमरी में तबला-संगत की शैली और व्यावहारिक रूप को सरलता से समझा जा सकता हैं:

1. "भूल निभाने से" — विदुषी निर्मला देवी (1979)

ताल : जत (14 मात्रा)

राग : खमाज

तबला : उस्ताद शेख दाऊद

ठेका-विश्लेषण

इस प्रस्तुति में उस्ताद शेख दाऊद का वादन अत्यंत संयत, शांत और मर्यादित रूप में सामने आता है।

- जत ताल का मूल ठेका अत्यंत स्वच्छ, स्थिर और अविचल ध्वनि-प्रवाह में प्रस्तुत किया गया है।
- बोलों का उच्चारण स्पष्ट है तथा अनावश्यक अलंकार या भरणों का प्रयोग अत्यंत सीमित रखा गया है।
- संपूर्ण ठुमरी में संगत ऐसी प्रतीत होती है मानो वादक गायिका के भाव-प्रवाह को सामने रखकर ताल को सहज रूप में बहने देता हो।

प्रयुक्त ठेका :

धा धिं ऽ	धा धा तिं ऽ
x	2
ता तिं ऽ	धा धा धिंऽऽना त्रक
0	3
धा	
x	

इस प्रस्तुति का विशिष्ट पक्ष यह है कि संगत में कोई आक्रामकता या दख़ल नहीं दिखाई देता, तबला मात्र ताल नहीं निभा रहा, बल्कि गायिका की भावाभिव्यक्ति को अनुगमन और समर्थन प्रदान कर रहा है।

2. "नाहक लाए गवनवा" — विदुषी गिरिजा देवी (1981)

ताल : दीपचंदी

राग : भैरवी

तबला : उस्ताद नज़ामुद्दीन ख़ाँ

ठेका-विश्लेषण

इस ठुमरी की संगत में उस्ताद नज़ामुद्दीन ख़ाँ का वादन अत्यंत अलंकारिक, भावपूर्ण और अभिव्यक्तिमय रूप में प्रकट होता है।

- दीपचंदी ताल के मूल थेके में वे शुरुआत से ही छोटी-छोटी खानापुरियों, सजावटी बोलों तथा उपयुक्त तिहाइयों का सम्मिश्रण करते हैं।
- विशेष रूप से मुखड़े के समय उनकी सजावट सुनने योग्य है—जहाँ बयान का कोमल प्रयोग ठुमरी के मार्मिक भाव को और अधिक गहराई देता है।
- यह प्रस्तुति विलंबित दीपचंदी में है, किंतु इसकी गति जत ताल की तुलना में कुछ अधिक प्रवाहयुक्त है। वादक उसी के अनुसार बोलों का चयन करते हैं।

प्रयुक्त मूल ठेका :

धा धिं त्रक	धा धा तिं त्रक
X	2
ता तिं त्रक	धा धा धिं त्रक
0	3
धा	
X	

मुखड़े का प्रयोग

वादक इस ठुमरी में विशेषत: १३वीं और १४वीं मात्राओं पर आकर्षक बोलों का प्रयोग करते हैं। कुछ उदाहरण—

- 00:42 मिनट पर: धाSत्रक धिंSनाS । धातीधागे धिंधाधाति । धा
- 01:12 मिनट पर: धिंSSक्र धिंSनाS । धातीधागे धिंधाधाति । धा

पूरे ठेका-भाग में उनकी संगत रचनात्मकता, तात्कालिकता और भावानुकूल विविधता से पूर्ण है। जहाँ साधारणत: ठेका एक स्थिर वृत्त माना जाता है, वहाँ उस्ताद नज़ामुद्दीन ख़ाँ उसे भाव और परिस्थिति के अनुसार बदलते, सजाते और विकसित करते हैं। यही शैली ठुमरी-संगत की कोमलता और सौंदर्य को उजागर करती है।

(घ) भजन एवं लोकधुनें

भजन और लोकधुनों में तबला-संगत सरल, स्पष्ट और जन–सुलभ रूप में प्रयुक्त होती है। यहाँ तकनीकी जटिलता से अधिक महत्व सीधे भाव-संप्रेषण को दिया जाता है। ताल की संरचना सामान्यत: आठ, दस या बारह मात्राओं की सरल चक्रव्यूह में होती है, जिससे श्रोता सहज रूप से लय में जुड़ सकें (Khan, 2019)। संगतकार की भूमिका यहाँ भाव को उजागर करने में सहायक पृष्ठभूमि तैयार करने की होती है।

(ङ) शास्त्रीय नृत्य

विशेषत: कथक में, तबला-संगत का स्वरूप संवादी–सहयोगी का होता है। यहाँ यह केवल लय-आधार प्रदान नहीं करता, बल्कि नर्तक/नर्तकी के साथ प्रत्यक्ष जुगलबंदी करता है। कथक में तबला नर्तक के तत्कार और लय के अनुसार संगति करता है। नर्तक पैरों से जिस तरह बोल और लय प्रस्तुत करता है, तबला उसी ताल, ठेका और गति में उसका साथ देता है। तीनताल प्रमुख है, लेकिन आज कई तालों में नृत्य होता है, इसलिए तबला वादक को प्रत्येक ताल के ठेके, विभाग और मात्रा संरचना के अनुसार संगति करनी पड़ती है। नर्तक के पदघातों, पल्टों, लय बढ़त और बोलों की प्रकृति देखकर तबला उसी वजन और प्रवाह में वादन करता है। नर्तक के बोल जैसे तिगदा, दिग, थुन, त्राम या अन्य सहायक बोलों के अनुरूप तबला अपनी रचनाओं और बोलों से नृत्य को मजबूती देता

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.010

है। कुल मिलाकर तबला कथक की लय, ठेका और प्रस्तुति को स्थिर और स्पष्ट रखने के लिए संगति करता है। पढन्त (बोल-उच्चारण), तत्कार का सटीक प्रतिबिंबन, और नृत्य के संरचनात्मक अंगों के साथ सम पर मिलान, ये सभी कार्य संगतकार की सटीकता और रचनात्मकता की कसौटी हैं (Sarker, 2025)। कथक-संगत में बोलों की स्पष्टता और लय की दृढ़ता के बिना सम्पूर्ण प्रस्तुति का प्रभाव क्षीण हो जाता है। उदाहरण स्वरुप कत्थक नृत्य के कुछ बोलों का तबले के बोलों के साथ विश्लेषण समीपस्थ तबला बोल (लाल, 2011) :

क्र.	नृत्य बोल	तबला बोल
1	त्रामथेई। थेईत्राम।	क्ड़ांधाऽ। धाऽक्डां।
2	ततथेई। थेईतत।	कतधाऽ। धाऽकत।
3	त्रामतिग्धा। तिग्धात्राम।	क्ड़ांकतधाऽ। कतधाक्ड़ां।
4		दिगदिग थेई।
		धिरधिटधाऽ। कतकतधाऽ।
		तिरकिटधाऽ।
		धिरकिटधाऽ। धिरधिरधाऽ।
5	दिग्दाऽदिगदिगथेई।	तिद्धाऽतिरकिटधाऽ।
		कतधाऽतिरकिटधाऽ।
		तिद्धाधिटधिटधाऽ।
6	दिगदिगदिगदिगथेई।	धिटधिटधिटधिटधाऽ।
		तिरकिटतिरकिटधाऽ।
		धिरधिरकिटतकधाऽ।
7	दिगदिगत्रामधेई।	धिटधिटक्ड़ांधाऽ।
	त्रामदिगदिगथेई।	क्ड़ांतिरकिटधाऽ।

4. घरानों का शैलीगत प्रभाव

तबला-संगत की कला में विभिन्न घरानों की विशिष्टता और परंपरा का गहरा प्रभाव देखा जाता है। प्रत्येक घराने ने अपनी सौंदर्य-दृष्टि, लय-प्रवृत्ति और बोल–संरचना के माध्यम से संगत को एक अलग पहचान प्रदान की है।

बनारस घराना अपनी भव्यता, दमदार नाद और विलक्षण तिहाइयों के लिए प्रसिद्ध है। इस घराने के संगतकार सम पर प्रभावशाली प्रतिष्ठापन और श्रोताओं को रोमांचित करने वाले बोलों की रचनाओं के लिए जाने जाते हैं। यहाँ संगत में खुलापन और नाद की गहराई प्रमुख होती है, जो विशेषकर द्रुत ख़याल और नृत्य-संगत में स्पष्ट झलकती है (Khan, 2019)।

फर्रुखाबाद घराना संतुलन और विन्यास के लिए प्रतिष्ठित है। इसकी संगत में ठेकों का मृदुल प्रवाह, अलंकरण का संयमित प्रयोग और गायक के भावानुसार बोलों में सूक्ष्म परिवर्तन देखने को मिलता है (Sharma, 2020)। विशेष रूप से विलम्बित ख़याल में इस घराने की संगत, रचना के गंभीर भाव को बिना भंग किए, एक सहज लयात्मक आधार प्रदान करती है।

दिल्ली घराना का योगदान उसकी स्पष्ट बोल–उच्चारण और सुसंगत लय–संरचना में है। यह घराना संगत में परंपरागत ठेकों और स्थिर लय को बनाए रखते हुए, गायक की प्रस्तुति के अनुरूप सीमित किन्तु प्रभावी भराव प्रस्तुत करता है (Sarker, 2025)।

लखनऊ घराना की संगत में नज़ाकत और नफ़ासत प्रमुख है। अर्द्धशास्त्रीय विधाओं, विशेषकर ठुमरी और दादरा में, इस घराने के संगतकार भावानुसार लय को मोड़ने और कोमल बोल योजना से वातावरण को सजाने में दक्ष माने जाते हैं (Verma, 2018)।

अजराड़ा घराना अपनी जटिल लयकारी और सम पर अप्रत्याशित किन्तु सटीक पहुँच के लिए जाना जाता है। इसकी संगत में गहन गणितीय संरचनाएँ और बोलों का तीव्र प्रभाव देखने को

मिलता है, जो विशेषकर द्रुत लय में आकर्षक बन जाता है (Sharma, 2020)।

इन घरानों का शैलीगत प्रभाव यह दर्शाता है कि तबला द्वारा संगत केवल एक तकनीकी प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक जीवित परंपरा है, जिसमें समय, स्थान और गुरु-परंपरा के अनुरूप सौंदर्य और रचनात्मकता का विकास होता रहा है।

5. आधुनिक समय में तबला संगत

आधुनिक युग में तबला-संगत के स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। पारंपरिक महफ़िलों और दरबारों से लेकर भव्य मंचीय प्रस्तुतियों तक, तबला वादकों को अब एक विस्तृत और विविध श्रोतावर्ग के अनुरूप स्वयं को ढालना पड़ता है। बड़े मंचों पर प्रस्तुतियों में ध्वनि-विस्तार यंत्रों (माइक) और साउंड सिस्टम के प्रयोग ने संगत के स्वर-संतुलन को एक नई दिशा दी है। पहले जहाँ तबला का नाद केवल प्राकृतिक ध्वनि पर आधारित होता था, वहीं अब वादक को इस बात का ध्यान रखना होता है कि ध्वनि-विस्तार यंत्रों के माध्यम से भी बोलों की स्पष्टता और नाद की गहराई बनी रहे।

रिकॉर्डिंग और प्रसारण तकनीक के विकास ने भी संगत की प्रकृति में परिवर्तन किया है। स्टूडियो रिकॉर्डिंग में तबला-संगत अत्यंत नियंत्रित और सूक्ष्म हो गई है, जहाँ प्रत्येक बोल की स्पष्टता, सम पर सटीक पहुँच और लय का एकदम सही निर्वाह आवश्यक हो जाता है। इसके साथ ही, ऑनलाइन माध्यम और डिजिटल मंचों ने तबला-संगत को वैश्विक दर्शकों तक पहुँचा दिया है, जिससे वादक के सामने विविध संगीत शैलियों, संस्कृतियों और अपेक्षाओं के अनुरूप अनुकूलन की चुनौती भी बढ़ी है।

इसके अतिरिक्त, आधुनिक समय में संगत केवल शास्त्रीय या अर्द्धशास्त्रीय विधाओं तक सीमित नहीं रही है। कई वादक अब फ़्यूज़न, फिल्म-संगीत और प्रायोगिक मंचों पर भी संगत प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें पारंपरिक ठेकों और लयकारी को आधुनिक ध्वनि-परिदृश्य में पिरोने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार, आज का तबला-संगतकार केवल एक परंपरागत लय-रक्षक नहीं, बल्कि एक बहुआयामी संगीत-सहयोगी के रूप में स्थापित हो रहा है।

6. निष्कर्ष

तबला-संगत भारतीय शास्त्रीय संगीत की आत्मा में रचा-बसा एक अभिन्न अंग है। यह केवल लय बनाए रखने का उपकरण नहीं, बल्कि मुख्य कलाकार के भाव, विचार और रचना को एक सशक्त आधार प्रदान करने वाला सृजनात्मक सहयोग है। ख़याल, ध्रुपद, ठुमरी, भजन, नृत्य, सभी में तबले का स्वरूप और उसकी संगत शैली अलग-अलग रूपों में खिलती है, किंतु प्रत्येक में उसका मूल उद्देश्य वही रहता है, मुख्य प्रस्तुति को संपूर्ण और प्रभावशाली बनाना।

इतिहास से लेकर आधुनिक युग तक, तबला-संगत में समय, स्थान और तकनीकी विकास के साथ परिवर्तन हुए हैं, परंतु उसकी मूल पहचान, लय, नाद और संवाद, अक्षुण्ण रही है। घरानों की विशिष्टताओं, वादकों की कल्पनाशीलता, और मंचीय अनुभवों ने मिलकर इसे निरंतर समृद्ध किया है।

आने वाली पीढ़ियों के लिए आवश्यक है कि इस परंपरा का संरक्षण और संवर्धन किया जाए। इसके लिए न केवल वादन-प्रशिक्षण की गहराई में जाना होगा, बल्कि संगत की उस सूक्ष्म कला को भी आत्मसात करना होगा जो मुख्य प्रस्तुति के भाव और लय को बिना बाधित किए उसे और अधिक प्रभावशाली बना देती है। यदि यह संतुलन बना रहे, तो तबला-संगत भारतीय

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.010

संगीत की उस अनमोल धरोहर के रूप में सदा जीवित रहेगी, जो कलाकार और श्रोता, दोनों के हृदय को एक समान रूप से स्पंदित करती है।

संदर्भ सूची

1. लाल, कर्ण नागेश्वर. (2011). कथक नृत्य के साथ तबला संगति. नई दिल्ली: कनिष्क पब्लिशर्स.
2. Chowdhury, A. (2021). Evolution of Tabla Accompaniment in Khayal Gayaki. Journal of Hindustani Music Studies, 12(2), 45–63.
3. Dandage, A. Complete Tabla.
4. Mainkar, S. (2000). Tabla Vadan - Kala Aur Shastra. Miraj: ABGM Mandal.
5. Mishra, P. (2010). Gharanon ki Parampara aur Tabla Sangat. Varanasi: Vishwavidyalaya Prakashan.
6. Mulgaonkar, A. (1999). Tabla. Mumbai: Popular Prakashan.
7. National Centre for the Performing Arts. (1998). Tabla Seminar. Mumbai.
8. Raman, C. V. (1920). Musical Drums with Harmonic Overtones. Nature (London), Calcutta.
9. Sharma, R. (2015). Khayal Gayaki ke Saath Tabla Sangat ka Vikas. Delhi: Sangeet Natak Akademi.
10. Solo and Accompaniment. (n.d.). Tabla Legacy. Retrieved from https://www.tablalegacy.com/solo-and-accompaniment

भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वरलिपि पद्धति का ऐतिहासिक विकास तथा शैक्षणिक उपयोगिता

कु. दीपिका पटेल*, डॉ. रश्मिका मिश्रा**

सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वरलिपि पद्धति का विशेष महत्व है। प्राचीन काल से ही स्वरलिपि पद्धति प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से संगीत में विद्यमान रही है। वैदिक काल में स्वरों को दर्शाने के लिए अंकों का प्रयोग किया जाता था। उसके माध्यम से वेद पाठ करने वाले विद्वत जन स्वरों को समझ जाते थे कि किस तरह से स्वरोच्चारण किया जाय। वैदिक काल से ही संगीत की शिक्षा गुरु शिष्य परम्परा द्वारा दी जाती थी। विद्यार्थी का अपने गुरु एवं आश्रम के प्रति अपार श्रद्धा होती थी। कुछ समय पश्चात् गुरु शिष्य प्रणाली के संक्षिप्त विस्तार के रूप में घराना परम्परा का उदय हुआ। इस परिवर्तन का मुख्य कारण उस समय की सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक परिस्थितियाँ थी। उत्तर भारतीय संगीतज्ञों ने अलग-अलग राजवंशों व रियासतों का संरक्षण प्राप्त कर लिया था। इसी के फलस्वरूप अलग-अलग रियासतों में गायकी की अलग-अलग प्रणाली विकसित होने लगी। 18वीं शताब्दी में संगीत शिक्षण के क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। भारत में पहली बार संस्थागत शिक्षण प्रणाली का प्रारम्भ हुआ। विद्यालयों, महाविद्यालयों, संस्थाओं व विश्वविद्यालयों में अन्य विषयों की भाँति संगीत को भी स्थान दिया जाने लगा। साथ ही संगीत शिक्षण के लिए कई स्वरांकन पद्धतियाँ भी प्रचार में आने लगी। वर्तमान काल में स्वरलिपि पद्धति ने एक उच्च स्थान प्राप्त किया। इसके मुख्य प्रणेता पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी तथा पं. विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी है। आज इनके अथक प्रयासों से संगीत सीखना प्रत्येक संगीत विद्यार्थी के लिए सरल तथा सुलभ हो गया है। संगीत के क्रियात्मक पक्ष को लिपिबद्ध करके सांस्कृतिक परम्परा के वैभव को सामान्य जन के समक्ष उपस्थित करना तथा सांगीतिक रचनाओं तथा परम्पराओं को बचाना ही इसका मुख्य उद्देश्य है।

मुख्य शब्द : *स्वरलिपि, स्वरांकन, चिन्ह, पद्धति, उपयोगिता।*

भूमिका

प्राचीन काल से ही संगीत गायन में स्वरालिपि पद्धति किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। अगर विचार किया जाए तो इसक बीजारोपण वैदिक काल से ही अंकुरित होते हुए दिखायी देता है। वैदिक काल में स्वरों को दर्शाने के लिए कई प्रकार के चिन्हों का प्रयोग किया जाता था और इन चिन्हों का विशेष महत्व होता था। ये चिन्ह

शोध-छात्रा : गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005
सहायक आचार्या : गायन अनुभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.011

(अंक) मंत्रों के ऊपर अंकित होते थे। सामगान का यह नियम है कि पहले अक्षर के सिरे पर जो अंक होता है, उसके द्वारा सूचित स्वर को षडज भाव से लेना चाहिए। श्री लक्षण शंकर भट्ट के अनुसार, 'प्रत्येक षड्ज भावेन' अर्थात् साम गान को ग्राम के प्रत्येक स्वर से आरम्भ करके गाया जा सकता है। साम का गायन जिस स्वर से आरम्भ होता है उसी को साम का प्रथम स्वर, आधार स्वर अथवा 'की नोट' कहते है। क्रुष्ट का स्थान सबसे ऊँचा और अतिस्वार्य का स्थान सबसे नीचा होता है। प्राय: इससे गान प्रारम्भ नहीं होता।

सामगान का स्वरांकन 1 से लेकर 7 तक अंकों को दर्शाया जाता है। इन अंकों में 7 वाँ अंक क्रुष्ट अर्थात् सबसे ऊँचे स्वर के लिए प्रस्तुत किया जाता है तथा 1, 2, 3, 4, 5, 6 ये अंक क्रमश: प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ मंद्र और अतिस्वार्य के लिए प्रयुक्त होते है। मंत्रों के ऊपर अंकों में स्वरांकन स्वर के शुद्ध रूप तथा मंत्राक्षरों के बीच में स्वरांकन स्वर की विकृतावस्था के बोधक है। स्वरों के लगाव का महत्व इतना अधिक था, कि स्वरों का उच्चारण अथवा गायन के साथ हस्तचालन की प्रक्रिया के माध्यम से लय भी दर्शाया जाता था। वेदों का स्वरांकन संसार का सबसे प्राचीन स्वरांकन है। उस स्वरांकन के कई प्रकार थे, चारों वेदों के स्वरांकन में भी भेद मिलता है। साथ ही एक ही वेद की विभिन्न शाखाओं के चिन्हों में विभिन्नता पायी जाती है।

धीरे-धीरे यह पद्धति मध्यकाल में भी दिखायी पड़ने लगी। संगीत रत्नाकर ग्रंथ में ताल का अंकन, लघु, गुरु, प्लुत के आधार पर किया गया है। स्वरों के स्थानों को निर्धारित करने के भी इस ग्रंथ में संकेत मिलते है। 13वीं शताब्दी के उत्तरार्ध का समय उत्तर मध्यकाल के अंतर्गत आता है। इस काल में राग माला, राग विबोध, रस कौमुदी, राग तरंगिणी, संगीत पारिजात, हृदयकौतुक आदि ग्रन्थों की रचना हुयी। शारंगदेव के समय से ही देश की सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन का आरम्भ हो चुका था। शारंगदेव के पश्चात् संगीत समय के साथ-साथ दोनों धाराओं के ग्रन्थों में प्राचीन मूर्छना का स्थान धीरे-धीरे मेल ने ग्रहण कर लिया परन्तु मेल पद्धति के साथ-साथ राग-रागिनी वर्गीकरण का प्रभाव भी ग्रंथकारों पर आधुनिक काल तक रहा।

भारत में 19वीं शताब्दी में पुनर्जागरण की लहर फैली। संगीत कला भी इस लहर से अछूता नहीं रहा और संगीत का पुनरोत्थान करने वालों की परम्परा से चली। इनमें प्रमुख ग्रन्थकार मोहम्मद रजा सन् 1813 ई., कृष्णानंद व्यास 1842 ई., दिल्ली के सादिक अली खाँ 1858 ई., पं. विष्णु नारायण भातखण्डे (1860-1936 ई.), पं. विष्णु दिगम्बर पलुष्कर सन् 1872 ई. इत्यादि है। जिन्होंने भारतीय संगीत को नया आयाम देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस दिशा में स्वतंत्र कार्य सन् 1886 ई. में मौलाबख्श घिस्से खाँ द्वारा स्वरालिपि पद्धति का विकास किया गया। परन्तु यह पद्धति अधिक प्रचलित नहीं हुयी।

आधुनिक काल में क्षेत्र मोहन गोस्वामी संगीत स्वरलिपि के प्रथम प्रवर्तक माने जाते है। इस दिशा में ज्योतिन्द्र मोहन ठाकुर ने आकार मात्रिक स्वरलिपि पद्धति का प्रचलन किया। यह पद्धति मुख्य रूप से चिन्हों पर आधारित थे। सौरेन्द्र मोहन ठाकुर ने इसी पद्धति के आधार पर दण्डमात्रिक स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया परन्तु इस पद्धति का प्रचार वर्तमान में कितना है, यह कहना दुष्कर है? भारतीय संगीत में स्वरालिपि पद्धति के प्रचार-प्रसार का मुख्य श्रेय पं. भातखण्डे जी एवं पलुष्कर जी को ही दिया जाता है। इस काल को ही भारत में पुनर्जागरण

का काल कहा जाता है जिस काल में उन्होंने जन्म लिया, उस समय ना ही संगीत का कोई शास्त्रीय विवरण बतलाया जाता था और ना ही कोई व्यवस्थित स्वरालिपि ही प्रचलित थी। ऐसी स्थिति में पं. जी ने प्राचीन संगीत ग्रन्थों का अध्ययन कर तथा सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करके एक सबल एवं सुव्यवस्थित स्वरलिपि पद्धति विकसित की जिसे श्रीमलक्ष्य संगीतम तथा क्रमिक पुस्तक मालिका में प्रकाशित करवाया। इसके अतिरिक्त कई पुस्तकों की रचना इसी आधार की गयी। इसी दिशा में पं. विष्णु दिगम्बर पलुष्कर भी दिशा-निर्देशन का कार्य करते प्रतीत होते है। पाश्चात्य देशों में स्वरलिपि पद्धति का प्रचार-प्रसार बहुत पहले ही हो चुका था। अत: स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पं. विष्णुनारायण भातखण्डे पद्धति ही परिलक्षित होती है। पं. विष्णु दिगम्बर पद्धति इससे थोड़ी भिन्न रही है, यह पद्धति अधिक वैज्ञानिक है। पलुष्कर पद्धति में मात्राओं का लेखन अधिक सूक्ष्मता के साथ किया जाता है। यह स्वरलिपि पद्धति विष्णुनारायण भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति की तुलना में कठिन है। इसलिए भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति ही वर्तमान समय में सरलता के कारण अधिक प्रचलन में है।

अत: वर्तमान समय में स्वरालिपि पद्धति के महत्व को दर्शाते हुए शोधार्थी ने भारतीय शास्त्रीय संगीत में स्वरलिपि पद्धति का ऐतिहासिक विकास तथा शैक्षणिक उपयोगिता शीर्षक प्रस्तावित किया है।

पं. विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति

पं. विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी ने पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति और भारतीय संगीत के प्राचीन ग्रन्थों में किन्चित् व्यवहारित चिन्हों को लेकर एक सुव्यवस्थित एवं विशिष्ट स्वरलिपि का निर्माण किया। इस पद्धति को समझने व प्रचलित करने के लिए उन्होंने 'भारतीय संगीत लेखन पद्धति' नाम से एक पुस्तक की रचना की। इसके अतिरिक्त 'महिला संगीत', 'संगीत बाल प्रकाश', 'संगीत शिक्षा' तथा 'राग प्रवेश' नामक पुस्तक की रचना की। उन्होंने राग प्रवेश नामक पुस्तक में विभिन्न रागों का स्वरांकन किया, जिसमें विभिन्न रागों के गीतों का स्वरांकन संकलित है। पं. जी का सांगीतिक कार्य अभियान 5 मई 1901 को लाहौर में गांधर्व संगीत महाविद्यालय की स्थापना के रूप में प्रारम्भ हुआ।

डॉ. सुभद्रा चौधरी के अनुसार, "संगीत स्वरलिपि पद्धति में उन्होंने काफी प्रेरणा स्टाफ नोटेशन से ली इस कारण वह कुछ कठिन तो जरूर हुयी किन्तु भारतीय संगीत की सूक्ष्मताओं का काफी हद तक अंकन इसमें हो सका।"

पं. जी के बाद इनके शिष्यों ने भी इस स्वरलिपि पद्धति को ही मूल आधार बनाकर इसको परिवर्तित तथा संवर्धित करके सरल रूप प्रदान किया। सर्वप्रथम विनायक राव पटवर्धन ने अपनी पुस्तक राग विज्ञान' के सात भागों में इस पद्धति का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त पं. वी. आर. देवधर ने अपनी पुस्तक 'राग बोध' में तथा संगीत मार्तण्ड पं. ओंकारनाथ ठाकुर जी ने अपनी पुस्तक 'संगीतांजलि' जो 6 भागों में निहित है विष्णु दिगम्बर स्वरलिपि पद्धति का ही प्रयोग किया है। पं. जी की स्वरालिपि में जिन चिन्हों या अंकों का प्रयोग किया जाता है वो इस प्रकार है-

एक मात्रा को दर्शाने के लिए के लिए (-) सा, आधी मात्रा के लिए चिन्ह (O) साo तथा 1/4 मात्रा के लिए चिन्ह् ( ) सा 1/8 मात्रा के लिए () सा तथा तीव्र मध्यम के लिए (/) म्र इन चिन्हों का प्रयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त मध्य स्वरों को प्रदर्शित करने के लिए

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.011

कोई भी चिन्ह का प्रयोग नहीं किया जाता है, तथा मन्द्रसप्तक के लिए ऊपर बिन्दु (•) सां, तार सप्तक के लिए खड़ी रेखा (।) का प्रयोग किया जाता है, जैसे- ग, खाली का चिन्ह दर्शाने के लिए प्लस (+) का चिन्ह् तथा सम के लिए अंक 1 का प्रयोग किया जाता था। दक्षिण भारतीय संगीत के स्वर उच्चारण के लिए अवग्रह का प्रयोग किया जाता है जैसे- साऽऽऽ तथा शब्द उच्चारण के लिए (०) चिन्ह का प्रयोग किया जाता है, जैसे- श्या०००म। अत: इसी प्रकार स्वरों एवं शब्दों के उच्चारण को प्रदर्शित किया जाता है। मीड़, कण स्वर, खटका के लिए उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के भांति ही चिन्हों को प्रदर्शित किया जाता है। यही स्वरलिपि पद्धति वर्तमान में गांधर्व महाविद्यालय मंडल द्वारा स्वीकृत है।

पं. विष्णुनारायण भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति

पं. विष्णुनारायण भातखण्डे जी द्वारा स्वनिर्मित स्वरलिपि पद्धति के आधार पर विभिन्न विद्वानों की रचनाओं, बंदिशों अथवा चीजों को अपने प्रमुख ग्रन्थ क्रमिक पुस्तक मालिका के 6 भागों में संकलित किया है। जिन चीजों को योग्य उस्ताद किसी को नहीं सिखाते थे, उनको एकत्रित करके अत्यन्त सरल स्वरलिपिबद्ध करके 6 भागों में पं. जी संगीत जगत के लिए उपहार स्वरूप छोड़ गये है। परम्परागत रागदारी, ध्रुपद, धमार, ख्याल, तराने, टप्पे, ठुमरियाँ इत्यादि को सीखकर पं. जी ने सैकड़ों हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की बंदिशों को क्रमिक पुस्तक मालिका में प्रकाशित करवाया है।

इस पद्धति में शुद्ध स्वर के लिए कोई चिन्ह् का प्रयोग नहीं किया जाता है। कोमल स्वरों के लिए लेटी रेखा (-) जैसे कोमल रे तीव्र स्वर के लिए खड़ी रेखा (।) जैसे म, तार सप्तक के लिए ऊपर बिन्दु (•) जैसे सां, मन्द्र के लिए नीचे बिन्दु (.) जैसे नि इस प्रकार चिन्ह् को दर्शाया जाता है। मीड़ की क्रिया को दिखाने के लिए स्वर के ऊपर अर्ध चन्द्राकार ( ) (म सा) का चिन्ह लगाया जाता है। खटके की क्रिया को दर्शाने के लिए स्वर को इस प्रकार लिखते है- (प) धपमप। कण स्वर के लिए स्वर के ऊपर बायी ओर (प)^{ध} विशिष्ट स्वर को छोटा करके लिखते है। गीत के शब्द को लम्बा करने के लिए अवग्रह का (ऽ) का प्रयोग किया जाता है। जैसे- श्याऽऽऽम तथा स्वर के शब्द को लम्बा करने के लिए (---) चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। जैसे- सा---रे। वर्तमान काल में यह स्वरलिपि पद्धति सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रचलित है।

शैक्षणिक उपयोगिता

पं. विष्णुनारायण भातखण्डे जी को स्वरलिपि पद्धति की आवश्यकता विद्यार्थियों के लिए कितनी अधिक है इसे समझाने के लिए कई बार परीक्षा देनी पड़ी। इस संबंध में माधव संगीत महाविद्यालय ग्वालियर के प्रथम समूह छात्र श्री रामचन्द्र अग्निहोत्री का साक्ष्य ''भातखण्डे स्मृति ग्रन्थ, पृ. सं. 318 पर अंकित है। पं. जी के पास एक सप्तस्वरी सीटी थी। उसे बजाकर उसकी आवाज से छात्रों को अपनी आवाज मिलाने के लिए कहते थे जो छात्र आवाज मिला लेते थे, उन्हें ही प्रवेश मिलता था। तीन माह की अल्प अवधि में ही ग्वालियर के मेले में उन्होंने श्रीमंत सिंधिया सरकार के सामने स्वरलिपि की उपयुक्तता को सिद्ध करके दिखाया था। जिसे सुनकर महाराज प्रसन्न हुए और शिक्षा में स्वरलिपि का महत्व सिद्ध हुआ। पं. जी के द्वारा करीब ढाई हजार चीजें जो अनेक घरानों से उन्हें प्राप्त हुई, जैसे- ध्रुपद, धमार, तराना, ख्याल, ठुमरी लक्षणगीत

तथा सरगमगीत आदि का प्रकाशन करवाया। शास्त्र चिन्तन की परम्परा जो समाप्त हो गयी थी पुन: नये ढंग से प्रारम्भ करते हुए एक नये युग का निर्माण किया।

आज जितनी सहजता से गुरुजन विद्यार्थियों को संगीत सिखा पा रहे है। यह स्वरलिपि पद्धति से ही सम्भव हो सकता है। राग में लगने वाले मुख्य स्वर जैसे राग यमन में नि़ रे ग, रे नि़ रे सा, राग में लगने वाले कण स्वर, न्यास, वादी-संवादी, वर्जित स्वर, विकृत स्वर तथा उसकी जाति इत्यादि स्वरलिपि लिखी होती है। जिसे देखकर आसानी से स्वर लगाया जा सकता है तथा साथ ही विद्यार्थियों के सहजता के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों को तैयार किया गया। प्रारम्भिक से उच्च माध्यमिक स्तर के संगीत विद्यार्थियों के लिए रागों का संकलन भी इसी आधार पर किया गया है ताकि विद्यार्थी राग के स्वरों को सरलतम रूप से समझ सके। वर्तमान समय में संस्थाओं, विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में भी इसी क्रम में पाठ्यक्रम रखा गया है।

निष्कर्ष

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की सूक्ष्मता को पूर्णत: स्वरलिपि में आलेखित करना लगभग असंभव ही है। इसका कारण है कि भारतीय संगीत प्रारम्भ से ही गुरुमुख प्रधान रहा है। इसके विकास में घरानों का अत्यधिक योगदान है। फिर भी भारतीय संगीत पद्धति का जो विकसित रूप हमारे समक्ष है, उसमें स्वरांकन पद्धति ही परिलक्षित होता है। आज स्वरांकन पद्धति के बल पर ही संगीत की झनकार प्रत्येक घर में गूंज रही है। स्वरांकन पद्धति के माध्यम से ही भातखण्डे जी जैसे विद्वानों ने प्राचीन विद्वानों, कलाकारों अथवा वाग्गेयकारों की बन्दिशों को जन सामान्य के लिए सुलभ बना दिया है। इस प्रकार के कार्य वर्तमान काल में भी गुणीजन कर रहे है। अत: यह कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत का ज्ञान गुरु के बिना सम्पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता परन्तु लुप्त हो रही बंदिशों अथवा रचनाओं के संरक्षण के साथ-साथ संगीत एवं संगीत समाज से पृथक भी संगीत को किसी न किसी रूप में प्रचलित एवं सुलभ कराने में स्वरलिपि पद्धति का बहुमूल्य स्थान है।

वर्तमान समय में भी विभिन्न संस्थानों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में संगीत की शिक्षा पं. विष्णु नारायण भातखण्डे स्वरलिपि पद्धति के माध्यम से ही दी जा रही है। कोई भी बन्दिश स्वरबद्ध होने के साथ-साथ तालबद्ध भी होती है जिस कारण किसी भी राग के दोनों पहलू को आसानी से समझा तथा लिखा जा सकता है। वर्तमान काल में प्रत्येक विद्यार्थी संगीत को आसानी से समझकर गा पाते है। आज यह किसी भी संगीत विद्यार्थी के लिए वरदान से कम नहीं है।

संदर्भ सूची

1. यमन अशोक कुमार (प्रथम संस्करण 2015), संगीत रत्नावली, अभिषेक पब्लिकेशन्स
2. पलनीटकर, अलकनंदा, (प्रथम संस्करण 2006), शास्त्रीय संगीत शिक्षा (समस्याएं एवं समाधान), अर्जुन पब्लिशिंग हाउस
3. कुमार, नरेश, (प्रथम संस्करण 2013), शास्त्रीय संगीत में प्रयोग एवं परिवर्तन, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स
4. खोत, जयन्त, (2010), संगीत सुमन, कला प्रकाशन
5. भातखण्डे, विष्णु नारायण, (2017), क्रमिक पुस्तक मालिका भाग-6. हाथरस : संगीत कार्यालय

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.012

भारतीय शास्त्रीय संगीत का मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं शैक्षिक प्रभाव: एक समग्र विश्लेषण

डॉ.रोमिल जैन

सार संक्षेप

भारतीय शास्त्रीय संगीत (आईसीएम) एक बहुआयामी सांस्कृतिक-वैज्ञानिक धरोहर है, जिसका प्रभाव मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं शैक्षिक स्तरों पर गहरा है। मनोवैज्ञानिक रूप से, यह तनाव व चिंता को कम करने, स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित करने तथा न्यूरोकेमिकल स्तर पर सकारात्मक भावनाएँ उत्पन्न करने में सक्षम है। राग-विशिष्ट संरचनाएँ (जैसे बिलाहरी) भावनात्मक लचीलापन विकसित करती हैं। दार्शनिक स्तर पर, 'नाद-ब्रह्म' व 'रस सिद्धांत' संगीत को अस्तित्वगत अर्थ व भावनात्मक रूपांतरण से जोड़ते हैं। शैक्षिक दृष्टि से, यह संज्ञानात्मक क्षमताओं (स्मृति, ध्यान, कार्यकारी कार्य), रचनात्मकता तथा सामाजिक-भावनात्मक कौशलों के विकास को बढ़ावा देता है। वर्तमान शोध आशाजनक हैं, किंतु मानकीकृत प्रोटोकॉल, बड़े नमूना आकार व अंतर-अनुशासनात्मक अध्ययनों की आवश्यकता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत को एक वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित सहायक चिकित्सा व समग्र शिक्षण उपकरण के रूप में एकीकृत करना भविष्य की दिशा है।

मुख्य शब्द (की वर्ड्स):- *1. भारतीय शास्त्रीय संगीत, 2. मनोवैज्ञानिक प्रभाव, 3. राग चिकित्सा, 4. भावनात्मक लचीलापन, 5. शैक्षिक विकास, 6. नाद-ब्रह्म*

प्रस्तावना: संगीत—एक बहुआयामी विज्ञान

भारतीय संस्कृति में संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि एक गहन आध्यात्मिक विज्ञान, सूक्ष्म चिकित्सा पद्धति और व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का माध्यम रहा है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक, संगीत ने मानवीय अंतस् को छूने, भावनाओं को सँवारने और चेतना के स्तर को उन्नत करने का कार्य किया है। भारतीय दार्शनिक चिंतन की नींव 'नाद' की अवधारणा पर टिकी है, जिसे समस्त सृष्टि का मूलभूत सूक्ष्म तत्त्व माना गया है। इस दृष्टि से संगीत, नाद का ही एक सुव्यवस्थित, सुसंगत और सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति रूप है, जो ब्रह्मांडीय स्पंदन को मानवीय अनुभूति से जोड़ता है। अत: भारतीय संगीत का प्रभाव बहुआयामी है; यह केवल श्रवणेंद्रिय तक सीमित न रहकर व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्थिति, भावनात्मक संतुलन और आध्यात्मिक जिज्ञासा—इन चारों स्तरों पर एक साथ कार्य करता है।

प्राचीन ग्रंथों, विशेषकर संगीत रत्नाकर और नारदीय शिक्षा में, संगीत को 'मन का शोधक' और 'बुद्धि का स्थिरक' कहा गया है। यह माना गया कि शुद्ध स्वर और ताल के माध्यम से चित्त की वृत्तियाँ एकाग्र होती हैं, विक्षेप शांत होते हैं और

अंतर्मन में स्थिरता आती है। रोचक बात यह है कि आधुनिक न्यूरोसाइंस भी इसी मार्ग पर चलता प्रतीत होता है। यह विज्ञान अब पुष्टि करता है कि संगीत, एक जटिल श्रवण-उत्तेजना के रूप में, मस्तिष्क के गहरे क्षेत्रों को सीधे प्रभावित करता है, जो भावनाओं, तनाव और संज्ञान का नियमन करते हैं, जैसे लिम्बिक सिस्टम, अमिगडाला, प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स और स्वायत्त तंत्रिका तंत्र[1] इस प्रकार, प्राचीन भारतीय ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान दोनों ही संगीत को एक अद्वितीय मनोदैहिक (साइकोसोमेटिक) साधन के रूप में पहचानते हैं, जो मन और शरीर के बीच सेतु का कार्य करता है।

राग-प्रणाली: भावनात्मक एवं चिकित्सकीय संरचना

भारतीय शास्त्रीय संगीत की विश्वविख्यात विशिष्टता इसकी राग-प्रणाली में निहित है। यह प्रणाली केवल स्वरों का खेल नहीं, बल्कि एक जीवंत, सांस लेती हुई भावनात्मक व सामयिक संरचना है। प्रत्येक राग एक विशिष्ट 'रस' (भाव), निश्चित समय (प्रहर), विशेष मनोदशा और अद्वितीय मानसिक ऊर्जा का प्रतीक है। उदाहरण के लिए, राग भैरव सुबह के समय शांति और गंभीरता लाता है, तो राग दीपक रात्रि में गहन चिंतन को उत्प्रेरित करता है। यह संरचनात्मक जटिलता और भावनात्मक लक्ष्योन्मुखता ही इसे साधारण मनोरंजक संगीत से ऊपर उठाकर मनोवैज्ञानिक अनुसंधान और चिकित्सकीय हस्तक्षेपों के लिए एक अमूल्य खजाना बना देती है।

पिछले कुछ दशकों में, भारतीय शास्त्रीय संगीत पर वैज्ञानिक शोध में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इन शोधों में राग बिलाहरी, यमन, भूपाली जैसे रागों को चिंता, तनाव और अनिद्रा जैसी समस्याओं को कम करने में प्रभावी पाया गया है।[2] शैक्षिक क्षेत्र में भी संगीत की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जा रही है। आधुनिक संज्ञानात्मक विज्ञान के अध्ययन बताते हैं कि राग-आधारित संगीत का नियमित श्रवण या अभ्यास स्मृति को पुष्ट करता है, ध्यान की अवधि बढ़ाता है, समस्या-समाधान कौशल को तीव्र करता है और समग्र बौद्धिक क्षमता को सक्रिय करता है।[3] यह वही सिद्धांत है जिसे प्राचीन भारतीय आचार्य 'बुद्धि का स्थिरीकरण' कहते थे और जिसे आज 'न्यूरोप्लास्टिसिटी' व 'संज्ञानात्मक उद्दीपन' के सिद्धांतों से समझा जा सकता है।

तनाव एवं चिंता पर संगीत का प्रभाव: तंत्र, प्रमाण एवं व्यावहारिक अनुप्रयोग

संगीत द्वारा तनाव और चिंता में कमी एक जटिल बहु-स्तरीय प्रक्रिया है, जिसमें शरीर के कई तंत्र एक साथ क्रियाशील होते हैं। सबसे पहला और प्रत्यक्ष प्रभाव स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (ANS) पर पड़ता है, जो हमारी अनैच्छिक शारीरिक क्रियाओं जैसे हृदय गति, श्वास और पाचन का नियंत्रण करता है। ANS के दो भाग होते हैं: सिम्पेथेटिक (तनाव प्रतिक्रिया के लिए उत्तरदायी) और पैरासिम्पेथेटिक (विश्राम और पुनर्प्राप्ति के लिए उत्तरदायी)। धीमी गति वाली, सुसंगत और मधुर लय वाले संगीत (जैसे कई शांत रस के राग) के श्रवण से पैरासिम्पेथेटिक तंत्र सक्रिय हो जाता है। इससे हृदय गति धीमी और नियमित हो जाती है, श्वास गहरी और लयबद्ध होती है, और रक्तचाप सामान्य होता है। इसे 'हार्ट रेट वेरिएबिलिटी (HRV)' में सुधार के रूप में मापा जाता है, जो बेहतर हृदय स्वास्थ्य और तनाव प्रतिरोधक क्षमता का सूचक है।[4] साथ ही, तनाव के प्रमुख हार्मोन कोर्टिसोल के स्राव में कमी आती है।

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.012

दूसरा प्रमुख प्रभाव मस्तिष्क के भावनात्मक प्रसंस्करण केंद्रों पर पड़ता है। संगीत की ध्वनि सीधे लिम्बिक सिस्टम, विशेष रूप से अमिगडाला और हिप्पोकैम्पस तक पहुँचती है। मधुर और परिचित संगीत अमिगडाला की अतिसक्रियता को शांत कर सकता है, जिससे भय और चिंता की तीव्र प्रतिक्रिया कम हो जाती है।[5] साथ ही, यह प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स के साथ बेहतर संपर्क स्थापित करने में सहायक होता है, जिससे व्यक्ति अपनी भावनाओं पर बेहतर नियंत्रण पाता है। न्यूरोकेमिकल स्तर पर, संगीत एक प्राकृतिक 'फील-गुड' प्रभाव उत्पन्न करता है। पसंदीदा या सुखद संगीत सुनने से मस्तिष्क में डोपामाइन, सेरोटोनिन और एंडोर्फिन के स्राव में वृद्धि होती है।[6] ये रसायन स्वाभाविक रूप से मनोदशा को उन्नत करते हैं, आनंद की अनुभूति देते हैं और चिंता के स्तर को कम करते हैं।

प्रायोगिक एवं क्लिनिकल प्रमाणों के आधार पर, वास्तविक शोध अध्ययनों में भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रभावों के सकारात्मक निष्कर्ष सामने आए हैं। एक उल्लेखनीय अध्ययन में, स्वस्थ युवा प्रतिभागियों को एकल संगीत सत्र के लिए भारतीय शास्त्रीय संगीत सुनाया गया। इसके तुरंत बाद ही न केवल उनकी स्व-रिपोर्टेड चिंता के स्तर में, बल्कि हृदय गति और रक्तचाप जैसे शारीरिक बायोमार्करों में भी महत्वपूर्ण कमी दर्ज की गई।[7] यह दर्शाता है कि कुछ स्थितियों में सिर्फ एक सत्र भी तात्कालिक राहत प्रदान करने में सक्षम है।

दीर्घकालिक और लक्षित हस्तक्षेपों के और भी प्रभावशाली परिणाम मिले हैं। उदाहरण के लिए, कर्नाटक संगीत के प्रसिद्ध राग 'बिलाहरी' पर आधारित एक संरचित संगीत चिकित्सा कार्यक्रम कैंसर रोगियों के देखभालकर्ताओं (कैरेजिवर्स) पर आजमाया गया। आठ सप्ताह के इस हस्तक्षेप के बाद, प्रतिभागियों में न केवल चिंता और अनिद्रा में, बल्कि सिरदर्द, थकान जैसे शारीरिक लक्षणों में भी सांख्यिकीय रूप से बहुत महत्वपूर्ण कमी देखी गई।[8] चिकित्सा के क्षेत्र में भी संगीत के प्रयोग ने सकारात्मक परिणाम दिए हैं। गैस्ट्रोस्कोपी जैसी आक्रामक और तनावपूर्ण नैदानिक प्रक्रियाओं से गुजर रहे रोगियों को पृष्ठभूमि में भारतीय शास्त्रीय संगीत सुनाया गया। अध्ययनों से पता चला कि संगीत के प्रयोग से रोगियों में प्रक्रिया के दौरान होने वाली मनोवैज्ञानिक कष्टता, घबराहट और दर्द की अनुभूति में कमी आई।[9]

सीमाएँ, चुनौतियाँ एवं भविष्य की दिशाएँ

हालाँकि उपलब्ध शोध साक्ष्य बहुत आशाजनक हैं, फिर भी इस क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण सीमाएँ और चुनौतियाँ मौजूद हैं। सबसे प्रमुख चुनौती अध्ययनों के सैंपल आकार और डिजाइन से जुड़ी है। बहुत से अध्ययनों में प्रतिभागियों की संख्या कम होती है या वे किसी एक विशेष केंद्र तक सीमित होते हैं। इससे प्राप्त निष्कर्षों को व्यापक जनसंख्या पर सामान्यीकृत करना जोखिम भरा हो सकता है।[10] दूसरी बड़ी चुनौती हस्तक्षेप प्रोटोकॉल में एकरूपता की कमी है। विभिन्न शोधकर्ता अलग-अलग रागों का चयन करते हैं, श्रवण की अवधि भिन्न होती है, ध्वनि की तीव्रता अलग होती है, और लाइव संगीत बनाम रिकॉर्डेड संगीत का प्रयोग भी भिन्न होता है। इस विविधता के कारण विभिन्न अध्ययनों के परिणामों की सीधे तुलना करना और एक सार्वभौमिक प्रोटोकॉल स्थापित करना कठिन हो जाता है।[11] तीसरी व्यावहारिक चुनौती शोध डिजाइन से जुड़ी है। संगीत चिकित्सा में 'ब्लाइंडिंग' करना लगभग असंभव है और एक प्रभावी प्लेसबो तैयार करना

भी मुश्किल है, क्योंकि संगीत का प्रभाव बहुत हद तक व्यक्तिपरक और संदर्भ-निर्भर होता है।[12]

इन चुनौतियों के बावजूद, भविष्य की दिशा स्पष्ट है। आवश्यकता बहु-केंद्र, बड़े नमूना आकार वाले अनुसंधानों की है। मानकीकृत प्रोटोकॉल विकसित करने की आवश्यकता है, जो यह निर्धारित करें कि किस रोग-विशेष के लिए कौन सा राग, कितनी देर और किस तीव्रता में प्रयोग किया जाए। साथ ही, व्यक्तिगत अंतरों, जैसे सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और संगीत की व्यक्तिगत पसंद, के प्रभाव को समझने के लिए अधिक शोध की आवश्यकता है। केवल इसी रास्ते से भारतीय शास्त्रीय संगीत आधारित चिकित्सा एक साक्ष्य-आधारित और वैज्ञानिक रूप से मान्यता प्राप्त सहायक उपचार पद्धति बन सकेगी।

भावनात्मक लचीलापन का विकास

आज के तेजी से बदलते, प्रतिस्पर्धी और अनिश्चितता से भरे समाज में, केवल तनाव से मुक्त होना ही पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता उस आंतरिक शक्ति की है जो व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियों में भी न सिर्फ खड़े रहने, बल्कि उनसे सीखते हुए आगे बढ़ने की क्षमता दे। यही शक्ति है 'भावनात्मक लचीलापन' (Emotional Resilience)।[13] मनोवैज्ञानिक शोध यह दर्शाने लगे हैं कि संगीत चिकित्सा केवल एक तात्कालिक 'मूड-लिफ्टर' नहीं है, बल्कि यह समय के साथ व्यक्ति की सामना करने की रणनीतियों, आत्म-नियंत्रण, आत्म-विश्वास और सामाजिक जुड़ाव जैसे सकारात्मक संसाधनों को मजबूत कर सकती है।

संगीत लचीलापन बनाने में कई स्तरों पर कार्य करता है। पहला तंत्र है 'भावनात्मक पुनर्मूल्यांकन' (Emotional Reappraisal)।[14] संगीत व्यक्ति को अपनी भावनाओं से सुरक्षित ढंग से जुड़ने, उन्हें पहचानने और फिर उन्हें देखने के एक नए, कम विध्वंसक दृष्टिकोण से समझने में मदद करता है। उदाहरण के लिए, एक उदासी भरे राग (जैसे मियाँ की मल्हार) को सुनकर व्यक्ति अपनी उदासी को बाहर निकाल सकता है और उसे स्वीकार कर सकता है, जो उसे इस भावना से बंधे रहने के बजाय आगे बढ़ने की शक्ति देता है। दूसरा और गहरा तंत्र 'न्यूरोप्लास्टिसिटी' से जुड़ा है।[15] नियमित संगीत सुनना या बजाना एक समृद्ध और जटिल संज्ञानात्मक अनुभव प्रदान करता है। इससे मस्तिष्क के उन क्षेत्रों में नए कनेक्शन बनते हैं जो भावनाओं के नियमन, तनाव प्रसंस्करण और सकारात्मक भावनाओं से जुड़े हैं। समय के साथ, यह मस्तिष्क को भावनात्मक तनाव के प्रति कम प्रतिक्रियाशील और अधिक नियामक बना देता है—यही लचीलेपन की जैविक नींव है।

दीर्घकालिक अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं कि संगीत चिकित्सा का प्रभाव क्षणिक नहीं होता। हाल ही में प्रकाशित एक 8-सप्ताह के मात्रात्मक हस्तक्षेप अध्ययन में, प्रतिभागियों को एक संरचित संगीत-आधारित कार्यक्रम में शामिल किया गया। अध्ययन के अंत में न केवल उनकी तात्कालिक मनोदशा में, बल्कि उनके समग्र कल्याण और विशेष रूप से भावनात्मक लचीलेपन के स्तर में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण सुधार देखा गया।[16] यह प्रभाव और भी सशक्त हो जाता है जब संगीत चिकित्सा को परामर्श, माइंडफुलनेस अभ्यास और संज्ञानात्मक व्यवहारिक रणनीतियों के साथ जोड़ दिया जाता है।[17] भारतीय शास्त्रीय संगीत के संदर्भ में, राग बिलाहरी पर आधारित हस्तक्षेपों में यह देखा गया है कि वे न केवल चिंता घटाते हैं, बल्कि आत्म-शक्ति, मानसिक शांति और नींद की गुणवत्ता

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.012

में भी सुधार लाते हैं।[18] ये सभी गुण भावनात्मक लचीलेपन के मजबूत स्तंभ हैं।

दार्शनिक परिप्रेक्ष्य: नाद ब्रह्म से रसानुभूति तक

भारतीय संगीत की जड़ें कला में नहीं, बल्कि दर्शन और अध्यात्म की गहरी मिट्टी में हैं। इस दार्शनिक आधार को समझे बिना संगीत के पूर्ण प्रभाव को समझ पाना असंभव है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में 'नाद' को केवल कानों से सुनाई देने वाली ध्वनि नहीं, बल्कि समस्त अस्तित्व की मूलभूत सूक्ष्म ऊर्जा माना गया है। 'नाद-ब्रह्म' यानी 'ध्वनि ही ब्रह्म है' की अवधारणा इसी विश्वास पर टिकी है। इस दृष्टि से, संगीत का अनुभव सिर्फ इंद्रियों का विलास नहीं रह जाता, बल्कि एक अस्तित्वगत और अर्थपूर्ण यात्रा बन जाता है, जहाँ व्यक्ति सृष्टि के मूल स्पंदन से जुड़ता है। इसका एक गहरा मनोवैज्ञानिक निहितार्थ है: संगीत-आधारित हस्तक्षेप व्यक्ति के 'अस्तित्वबोध' और 'अर्थ-निर्माण' की प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकते हैं। आधुनिक अस्तित्वमूलक मनोचिकित्सा भी जीवन के अर्थ और उद्देश्य की खोज को मानसिक स्वास्थ्य के लिए केंद्रीय मानती है। इस प्रकार, नाद-ब्रह्म का विचार आधुनिक चिकित्सा के इस पहलू से साम्य रखता है।[18]

भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित 'रस सिद्धांत' संगीत की चिकित्सकीय क्षमता को समझने की एक और कुंजी है। इसके अनुसार, कला का उद्देश्य दर्शक/श्रोता में एक विशिष्ट भावात्मक अनुभूति (रसानुभव) उत्पन्न करना है। राग और लय के माध्यम से उत्पन्न यह रस—चाहे वह श्रृंगार हो, करुण हो, या शांत—श्रोता के मन में एक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक रूपांतरण लाता है। चिकित्सकीय दृष्टि से, यह सिद्धांत सुझाव देता है कि भाव-विशिष्ट संगीत अनुभव अवसाद और भावनात्मक अवरोधों में परिवर्तनकारी भूमिका निभा सकते हैं।[20] नाद-योग में, संगीत और ध्वनि को ध्यान और चेतना को ऊँचा उठाने का प्राथमिक साधन बनाया गया है। भक्ति संगीत की परंपरा (जैसे भजन, कीर्तन) भी इसी सिद्धांत पर चलती है, जहाँ सामूहिक गायन और संगीत के माध्यम से भक्ति की भावना में लीन होकर मन शांत और एकाग्र होता है। पारंपरिक ग्रंथों और आधुनिक अध्ययनों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि ऐसे नियंत्रित श्रवण और स्वराभ्यास से मस्तिष्क तरंगें (अल्फा/थीटा) अनुकूलित होती हैं, जो विश्राम और गहन ध्यान की अवस्था से जुड़ी हैं।[21]

नाद-ब्रह्म और रस जैसे दार्शनिक विचार आज न्यूरोसाइंस के निष्कर्षों से एक रोचक संवाद करते दिखाई देते हैं। जब हम संगीत सुनते हैं, तो हमारे लिम्बिक सिस्टम, प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स और ऑडिटरी कॉर्टेक्स की सक्रियता हमारी भावनात्मक और संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को प्रभावित करती है। यही वह जैविक आधार है जिस पर दार्शनिक 'रसानुभव' टिका हो सकता है। इसी प्रकार, रागों की आवृत्तिगत और लयात्मक संरचना का 'ब्रेनवेव एनट्रेनमेंट' से गहरा संबंध हो सकता है। हालाँकि, इस संवाद में सावधानी की आवश्यकता है। दार्शनिक दावों को सीधे तौर पर नैदानिक प्रभावकारिता के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इन्हें वैज्ञानिक पद्धति से जाँचे और सिद्ध किए जाने की आवश्यकता है।[22]

यह दार्शनिक ढाँचा एक महत्वपूर्ण बात की ओर इशारा करता है: सांस्कृतिक संवेदनशील संगीत चिकित्सा की आवश्यकता। एक भारतीय रोगी के लिए, राग यमन या भजन का प्रभाव पश्चिमी शास्त्रीय संगीत से भिन्न और अधिक गहरा हो सकता है, क्योंकि यह उसकी सांस्कृतिक

स्मृति और भावनात्मक शब्दावली से जुड़ा होता है। इसके साथ ही, यह दार्शनिक आधार नए शोध के रोमांचक प्रश्न खड़ा करता है। क्या विशिष्ट रागों के विशिष्ट ईईजी पैटर्न होते हैं? क्या रसानुभव को न्यूरोइमेजिंग के माध्यम से मापा जा सकता है? अंतर-अनुशासनात्मक शोध इन प्रश्नों के उत्तर दे सकता है और सांस्कृतिक रूप से सूचित तथा वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित क्लिनिकल प्रोटोकॉल विकसित कर सकता है।[23]

शैक्षिक प्रभाव: संज्ञानात्मक विकास से व्यक्तित्व निर्माण तक

शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि एक संतुलित, रचनात्मक और जिम्मेदार नागरिक का निर्माण करना है। भारतीय शास्त्रीय संगीत इस उद्देश्य की प्राप्ति में एक समग्र माध्यम के रूप में कार्य कर सकता है। समकालीन न्यूरोसाइंस के अनुसंधान बताते हैं कि नियमित संगीत अभ्यास मस्तिष्क के लिए एक उत्तम व्यायाम है। राग संगीत सीखने की प्रक्रिया में, विद्यार्थी को स्वरों के जटिल क्रम, लय के सूक्ष्म पैटर्न और सूक्ष्म अंतरालों को याद रखना और दोहराना पड़ता है। यह क्रिया कार्यशील स्मृति, शाब्दिक स्मृति और प्रक्रियात्मक स्मृति को एक साथ चुनौती देकर उन्हें सुदृढ़ करती है।[24] रागों की संरचित और पुनरावृत्तिमूलक प्रकृति हिप्पोकैम्पस और प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स को सक्रिय करती है, जिससे न्यूरोप्लास्टिसिटी को बढ़ावा मिलता है और दीर्घकालिक स्मृति तथा एकाग्रता की क्षमता में वृद्धि होती है।[25]

इसके अलावा, संगीत में ध्यान केंद्रित करना एक सक्रिय प्रक्रिया है। श्रुति की सूक्ष्मताओं को पकड़ने और ताल के साथ तालमेल बनाए रखने के लिए निरंतर सजगता की आवश्यकता होती है। यह अभ्यास 'एग्जिक्यूटिव फंक्शंस'—यानी ध्यान नियंत्रण, कार्य-बदलाव और योजना बनाने की क्षमताओं—को मजबूत करता है।[26] परिणामस्वरूप, संगीत-प्रशिक्षित विद्यार्थी अक्सर बहु-कार्य और जटिल समस्या-समाधान में बेहतर प्रदर्शन करते हैं।

संगीत रचनात्मकता का जन्मस्थान है। एक राग की प्रस्तुति में हमेशा एक निश्चित सीमा में स्वत:स्फूर्त अलाप और तान होती है। यह 'इंप्रोविजेशन' विद्यार्थी को दिए गए नियमों के भीतर रहते हुए नए रास्ते ढूँढ़ने, पैटर्न को पहचानने और उसे बदलने का अवसर देता है। यह प्रक्रिया 'डाइवर्जेंट थिंकिंग' को प्रोत्साहित करती है। साथ ही, संगीत में ऑडिटरी और मोटर प्रक्रियाओं का एक साथ समन्वय मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों के बीच संपर्क बढ़ाता है।[27] शोध बताते हैं कि यह सब गणितीय तर्क, भाषा सीखने की क्षमता और कम्प्यूटेशनल चिंतन में सकारात्मक प्रभाव डालता है।

शैक्षिक दबाव अक्सर छात्रों में चिंता, आक्रामकता और अलगाव की भावना पैदा कर देता है। यहाँ संगीत एक संतुलनकारी शक्ति के रूप में काम कर सकता है। शांत और संरचित राग संगीत का श्रवण परीक्षा से पहले के तनाव को कम कर सकता है। सामूहिक संगीत गतिविधियाँ, जैसे कोरस गायन या वाद्यवृंद, सहयोग, सहनशीलता और सामूहिक उपलब्धि की भावना विकसित करती हैं। ऐसी गतिविधियाँ सामाजिक बंधन को मजबूत करती हैं, अकेलेपन को दूर करती हैं और नेतृत्व के गुणों को विकसित करने का अवसर देती हैं।[28]

भारतीय राग संगीत सांस्कृतिक विरासत से जुड़ाव का एक सशक्त माध्यम है। इसके माध्यम से विद्यार्थी न केवल अनुशासन और धैर्य सीखते हैं, बल्कि अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़कर एक पहचान और आत्म-गौरव का

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.012

विकास भी करते हैं। व्यावहारिक शिक्षण पद्धति में, शांत पृष्ठभूमि संगीत का उपयोग कक्षा का वातावरण शांत करने में, ताल-आधारित याद रखने की तकनीकें सीखने में मदद कर सकती हैं।[29] भारत की नई शिक्षा नीति (NEP-2020) ने 'कला-समेकित शिक्षा' पर जोर देकर इसी दिशा में एक बड़ा कदम उठाया है। इस दृष्टिकोण में संगीत को समग्र विकास का एक अनिवार्य अंग माना गया है, जो सीखने की प्रक्रिया को अधिक स्वाभाविक, आनंददायक और प्रभावी बनाता है।[30]

भारतीय रागों के विशिष्ट प्रभाव: राग बिलाहरी का वैज्ञानिक विवेचन

राग बिलाहरी, कर्नाटक संगीत पद्धति का एक प्रमुख और लोकप्रिय राग है, जिसे परंपरागत रूप से आनंद, उत्साह, मानसिक स्पष्टता और ऊर्जा से जोड़ा जाता है। इसकी स्वर संरचना में काकली निशाद का प्रयोग इसे एक चंचल परन्तु संतुलित चरित्र देता है। समकालीन वैज्ञानिक अनुसंधान इस पारंपरिक मान्यता को पुष्ट करते हैं। अध्ययनों में पाया गया है कि राग बिलाहरी का श्रवण तनाव और चिंता के स्तर को कम करता है तथा सकारात्मक भावनाओं और भावनात्मक संतुलन को बढ़ावा देता है। इसकी तेज परन्तु नियंत्रित गति वाली स्वर योजना मस्तिष्क के डोपामिनर्जिक मार्गों को सक्रिय करने में सक्षम प्रतीत होती है, जिससे मानसिक प्रेरणा, सजगता और ऊर्जा के स्तर में वृद्धि होती है।[31]

शैक्षिक और संज्ञानात्मक संदर्भ में इस राग के प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। नियंत्रित प्रयोगों में यह देखा गया है कि अध्ययन या कोई जटिल मानसिक कार्य शुरू करने से पहले राग बिलाहरी सुनने से ध्यान की अवधि, कार्यशील स्मृति और प्रसंस्करण गति में सुधार होता है, जबकि संज्ञानात्मक थकान में कमी आती है। इसे एक प्रकार के 'संज्ञानात्मक प्राइमिंग' के रूप में देखा जा सकता है। न्यूरोफिज़ियोलॉजिकल साक्ष्य के अनुसार, ईईजी अध्ययनों में इस राग के श्रवण के दौरान अल्फा (8-13 Hz) और लो-बीटा (13-20 Hz) तरंगों में वृद्धि दर्ज की गई है। अल्फा तरंगें शांत, सजग लेकिन आरामदेह मानसिक अवस्था से जुड़ी हैं, जबकि लो-बीटा तरंगें सक्रिय, केंद्रित और चिंता-मुक्त सजगता से संबंधित हैं।[32] यह तरंगों का संयोजन राग बिलाहरी को शैक्षणिक दबाव, हल्के अवसाद और तनाव-जन्य स्थितियों के लिए एक आदर्श सहायक उपकरण बनाता है। यह मन को एक ऐसी अवस्था में लाता है जो सीखने और रचनात्मकता के लिए अनुकूल है।

निष्कर्ष

भारतीय शास्त्रीय संगीत एक अद्वितीय सांस्कृतिक-वैज्ञानिक धरोहर है जो मानवीय अनुभूति की गहराइयों तक पहुँचता है। यह शोध-आलेख इस बात को स्पष्ट करता है कि संगीत का प्रभाव बहुआयामी और गहन है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर, यह तनाव और चिंता को कम करने के साथ-साथ भावनात्मक लचीलापन जैसी दीर्घकालिक मानसिक शक्ति का निर्माण करता है। दार्शनिक स्तर पर, यह नाद-ब्रह्म और रस के सिद्धांतों के माध्यम से अस्तित्व के अर्थ और भावनात्मक रूपांतरण से जुड़ा है। शैक्षिक स्तर पर, यह संज्ञानात्मक क्षमताओं, रचनात्मकता और सामाजिक-भावनात्मक कौशलों के विकास का एक शक्तिशाली माध्यम सिद्ध होता है।

विशिष्ट रागों, जैसे बिलाहरी, पर हुए शोध इसकी चिकित्सकीय प्रासंगिकता को वैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं। हालाँकि, अनुसंधान के

क्षेत्र में मानकीकरण, बड़े नमूना आकार और दीर्घकालिक अध्ययनों की आवश्यकता बनी हुई है। भविष्य में, दर्शन और न्यूरोसाइंस के बीच अंतर-अनुशासनात्मक शोध से नई समझ विकसित हो सकती है। नई शिक्षा नीति जैसे प्रयास इसे शिक्षा की मुख्यधारा में लाने का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। इस प्रकार, भारतीय शास्त्रीय संगीत केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान की एक जीवंत आवश्यकता और भविष्य के समग्र स्वास्थ्य व शिक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन है। इसे समझना, संरक्षित करना और विज्ञान-सम्मत ढंग से प्रयोग में लाना हमारी सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक जिम्मेदारी है।

संदर्भ सूची :-

1. Thoma, M. V., et al. (2022). Effect of Indian music as an auditory stimulus on physiological measures of stress, anxiety, cardiovascular and autonomic responses in humans: A randomized controlled trial. Journal of Ayurveda and Integrative Medicine.
2. Rajan, A., Raghuram, N., Nagendra, H. R., & Telles, S. (2022). Effect of Carnatic r□ga-Bilahari based music therapy on anxiety, sleep disturbances and somatic symptoms among caregivers. Heliyon, 8(10), e10681.
3. Chanda, M. L., & Levitin, D. J. (2013). The neurochemistry of music. Trends in Cognitive Sciences, 17(4), 179–191.
4. Raghuraj, P., et al. (2022). Effect of Indian music as an auditory stimulus on physiological measures of stress, anxiety, cardiovascular and autonomic responses in humans. Journal of Ayurveda and Integrative Medicine.
5. Thaut, M. H., & Hoemberg, V. (Eds.). (2014). Handbook of neurologic music therapy. Oxford University Press.
6. Vuust, P., Heggli, O. A., Friston, K. J., & Kringelbach, M. L. (2022). Music in the brain. Nature Reviews Neuroscience, 23(5), 287–305.
7. Kotwal, M. R., Rinchhen, C. Z., & Ringe, V. V. (1998). Stress reduction through listening to Indian classical music during gastroscopy. Journal of Postgraduate Medicine, 44(2), 1–6.
8. Rajan, R., et al. (2022). Effect of Carnatic raga Bilahari–based music therapy on anxiety, sleep disturbances, and somatic symptoms among caregivers of cancer patients: A randomized controlled trial. Journal of Ayurveda and Integrative Medicine, 13(4), 100564.
9. Feng, Y., & Wang, M. (2025). Effect of music therapy on emotional resilience, well-being, and employability: A quantitative investigation of mediation and moderation. BMC Psychology, 13, Article 336.
10. Chong, H. J., Kim, H. J., & Kim, B. (2024). Scoping review on the use of music for emotion regulation. Behavioral Sciences, 14(9), 793.
11. Schellenberg, E. G. (2005). Music and cognitive abilities. Current

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.012

Directions in Psychological Science, 14(6), 317–320.

12. Hallam, S. (2015). The power of music: Its impact on the intellectual, social and personal development of children and young people. International Journal of Music Education, 33(2), 269–289.
13. Southwick, S. M., & Charney, D. S. (2012). The science of resilience: Implications for the prevention and treatment of depression. Science, 338(6103), 79–82. https://doi.org/10.1126/science.1222942
14. Gross, J. J. (2015). Emotion regulation: Current status and future prospects. Psychological Inquiry, 26(1), 1–26. https://doi.org/10.1080/1047840X.2014.940781
15. Altenmüller, E., Schlaug, G., & Bangert, M. (2014). Music, brain plasticity, and health. In Progress in Brain Research (Vol. 217, pp. 243–257). Elsevier. https://doi.org/10.1016/B978-0-444-63294-4.00013-X
16. Fancourt, D., & Finn, S. (2019). What is the evidence on the role of the arts in improving health and well-being? World Health Organization.
17. Koelsch, S. (2015). Music-evoked emotions: Principles, brain correlates, and implications for therapy. Annals of the New York Academy of Sciences, 1337(1), 193–201. https://doi.org/10.1111/nyas.12684
18. Nagendra, H. R., & Telles, S. (2019). Music therapy in Indian classical traditions. Indian Journal of Psychiatry, 61(Suppl 4), S517–S525. https://doi.org/10.4103/psychiatry.IndianJPsychiatry_528_18
19. Deussen, P. (1997). Sixty Upanishads of the Veda (Trans.). Motilal Banarsidass.
20. Bharata Muni. (2006). Nāṭyaśāstra (M. Ghosh, Trans.). Manohar Publishers.
21. Mallinson, J., & Singleton, M. (2017). Roots of yoga. Penguin Classics.
22. Sacks, O. (2007). Musicophilia: Tales of music and the brain. Knopf.
23. Patel, A. D. (2010). Music, language, and the brain. Oxford University Press.
24. Sammler, D., Grigutsch, M., Fritz, T., & Koelsch, S. (2007). Music and emotion: EEG correlates of the processing of pleasant and unpleasant music. Psychophysiology, 44(1), 1–10. https://doi.org/10.1111/j.1469-8986.2006.00497.x
25. Lomas, T., Ivtzan, I., & Fu, C. H. Y. (2015). A systematic review of the neurophysiology of mindfulness on EEG oscillations. Neuroscience & Biobehavioral Reviews, 57, 401–410. https://doi.org/10.1016/j.neubiorev.2015.09.018
26. Bialystok, E., & DePape, A. M. (2009). Musical expertise, bilingualism, and executive functioning. Psychological Science, 20(4), 397–404. https://doi.org/10.1111/j.1467-9280.2009.02310.x
27. Zatorre, R. J., Chen, J. L., & Penhune, V. B. (2007). When the brain plays music: Auditory–motor interactions

in music perception and production. Nature Reviews Neuroscience, 8, 547–558. https://doi.org/10.1038/nrn2152

28. Kirschner, S., & Tomasello, M. (2010). Joint music making promotes prosocial behavior in 4-year-old children. Evolution and Human Behavior, 31(5), 354–364. https://doi.org/10.1016/j.evolhumbehav.2010.04.004
29. Moreno, S., Bialystok, E., Barac, R., Schellenberg, E. G., Cepeda, N. J., & Chau, T. (2011). Short-term music training enhances verbal intelligence and executive function. Journal of Educational Psychology, 103(3), 712–719. https://doi.org/10.1037/a0023819
30. Ministry of Education, Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Government of India.
31. Thaut, M. H., & Hoemberg, V. (2014). Handbook of neurologic music therapy. Oxford University Press.
32. Lehmann, A. C., Sloboda, J. A., & Woody, R. H. (2007). Psychology for musicians: Understanding and acquiring the skills. Oxford University Press.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.013

चित्रपट संगीत में सितार वाद्य का प्रयोग

पूनम कुमारी* डॉ. प्रेम किशोर मिश्र**

शोध सार

भारत में प्राचीन काल से ही विभिन्न ललित कलाओं का संगम रहा है। विद्वानों ने 64 कलाओं का उल्लेख हमारे शास्त्रों मे किया है। इन सभी कलाओं मे संगीत कला को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इन सभी कलाओं को प्राचीन समय से ही धार्मिक भावनाओं के साथ जोड़ा गया है। भारतीय संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओं को एक दूसरे का पूरक माना जाता है। भारतीय चित्रपट संगीत में इन तीनों कलाओं का प्रयोग एक साथ देखने को मिलता है।वर्तमान में चित्रपट संगीत मानव जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। शास्त्रीय संगीत में तंत्री वाद्य सितार अत्यन्त सुमधुर व लोकप्रिय वाद्य यंत्र है जिसका प्रयोग प्रायः ऐसे दृश्यों या गानों के लिए किया जाता है जो भारतीय परम्परा, संस्कृति या शास्त्रीय संगीत को दर्शाता है। भारतीय चित्रपट संगीत में सितार वाद्य का प्रयोग भरपूर किया गया है। सितार की सुंदर व मधुर ध्वनि श्रोताओं के हृदय के गहराई तक पहुचती है जो चित्रपट संगीत के भावनात्मक दृश्यों को और भी प्रभावशाली बनाती हैं।

सूचक शब्द–*सितार, वाद्य, प्रयोग, चित्रपट संगीत*

भूमिका– संगीत मानव जीवन का अभिन्न अंग है। संगीत किसी भी मोड से गुजरे किसी भी आकार मे ढलें या किसी भी वर्ग समुदाय में पले, वह हमेशा आनंदमयी होता है। संगीत के किसी भी विधा चाहे वह लोक संगीत हो, सुगम संगीत, चित्रपट संगीत हो या फिर शास्त्रीय संगीत हो निश्चित रूप से आनंद की ही प्राप्ति होती है। जब इन सभी विधाओ या कलाओं को मानव ने जन्म दिया है तो निश्चित रूप से इसमे नवीनता या विकास के लिए मानव ने विभिन्न प्रयास किए हैं।

मनुष्य की बदलती हुई रुचि एवं प्रवृत्ति के कारण इन सभी कलाओं का जन्म हुआ। मानव के विभिन्न प्रयासों ने प्राचीन नाट्य को चित्रपट के रूप मे परिवर्तित कर दिया। वैसे तो चित्रपट संगीत मे विभिन्न कलाओं का समावेश रहता है फिर भी यह एक स्वतंत्र यांत्रिक कला है। आज के युग में चित्रपट संगीत एक स्वतंत्र नवीन कला और मनोरंजन का सबसे सरल और सहज साधन के रूप में हमारे समक्ष आया। आज चित्रपट संगीत एक ऐसी विधा है जो सभी को अपनी ओर आकर्षित करती है और इसका

शोध छात्रा : वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, का.हि.वि.वि., वाराणसी,
ई-मेल – poonamrng25@gmail.com, Phone- 6394456326
सह शोध निर्देशक : वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, का.हि.वि.वि., वाराणसी

प्रभाव प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों पर पड़ता है। चित्रपट, रंगमंच के समान दृश्य एवं श्रव्य कला जिसमें नाट्य और संगीत के नाम से जाना जाता है। चित्रपट संगीत समाज के सभी वर्गो का प्रिय संगीत कहलाया है।

विषय प्रवेश –चित्रपट संगीत जगत में आरंभ से आकर्षण का केंद्र रहा है चित्रपट संगीत की समय – सीमा लगभग सौ साल से अधिक हो चुकी है, और तब से ही चित्रपट संगीत ने अपनी सफलता के बुलंदियों को छुआ है। चित्रपट संगीत में अन्य कलाओं का समावेश अवश्य हैं किन्तु संगीत कला हमेशा आकर्षण का केंद्र रहा है।

आरंभिक समय की फिल्मों में संगीत का प्रयोग संवाद अदायगी के लिए किया जाता था। इसके साथ उस काल के कलाकारों की सांगीतिक प्रतिभा का भी प्रदर्शन होता था।

जहाँ सितार के प्रयोग ने हिन्दी चित्रपट संगीत की सुंदरता मे वृद्धि की है, वहां चित्रपट संगीत ने भी सितार के विकास में अहम भूमिका निभाई है। सितार वाद्य आज के समय मे बहुत प्रचलित एवं लोकप्रिय वाद्य के रूप में हम सभी के सम्मुख है।

शास्त्रीय संगीत हमारे हिन्दी चित्रपटों का प्राण रहा है और संगीतकार उस प्राण के दाता।

"भारतीय चित्रपट संगीत में सितार वाद्य का प्रयोग सबसे पहले हमें 1913 मे बने चित्रपट 'राजा हरिश्चंद्र' में देखने को मिलता है।"

प्राचीन काल से ही पौराणिक ग्रंथ आदि में अनेक प्रकार की वीणाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। सितार वाद्य का निर्माण वीणा से माना जाता है, सितार वाद्य की उत्पत्ति वीणा या त्रितंत्री वीणा से माना गया है, किन्तु यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं की गई है सितार वाद्य की उत्पत्ति को लेकर हमारे संगीतज्ञों एवं विद्वानों के अनेक मत प्राप्त होते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि सितार वाद्य का निर्माण अमीर खुसरो के द्वारा हुआ है और कुछ विद्वानों ने सितार की उत्पत्ति खुसरो खां के द्वारा बताई है। 'श्रीधर परांजपे' जैसे महान विभूतियों ने सितार वाद्य की उत्पत्ति प्राचीन वीणाओं से मानी हैं ,जिनमे त्रीतंत्री वीणा, चित्रा वीणा, सप्ततन्त्री वीणा, इत्यादि वीणाओं का बदलता हुआ स्वरूप माना गया है। कुछ जगह यह प्रमाण भी है कि सितार वाद्य की उत्पत्ति तानसेन के वंशजों द्वारा हुआ है, इस विषय पर अनेक भ्रांतियां हैं। जिनमे से तीन तारो वाली त्रितंत्री वीणा से सितार वाद्य का निर्माण हुआ।

"आज अधिकांश वाद्य का विकास प्राचीन वीणाओं के आधार पर ही हुआ है और वर्तमान समय में अधिकांश तंत्री वाद्य प्राचीन वीणाओं के ही संशोधित व परिवर्तित रूप माने गए हैं अब सभी विद्वानों के मतों को देखते हुए यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सितार वाद्य का निर्माण प्राचीन समय से प्रचलित त्रितन्त्री वीणा का एक विकसित स्वरूप है और इसका विकास 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हुआ।"

जिस प्रकार ध्रुपद में लयकारीयों का प्रयोग होता है, उसी प्रकार सितार वाद्य पर भी लयकारियों का प्रयोग किया जाता है ख्याल गायकी का सितार वाद्य पर बहुत प्रभाव रहा है। प्रकृति का नियम परिवर्तनशील रहा है, जिसके फलस्वरूप संगीत भी हर युग मे परिवर्तनशील रहा है।

मुगल काल में ध्रुपद शैली का बहुत अधिक प्रचार-प्रसार हुआ और इसी स्थिति में सितार वाद्य के वादन पर ध्रुपद शैली का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था क्योंकि वीणा के वादन से सितार प्रारंभ से बहुत अधिक प्रभावित रहा था और इसी प्रकार वीणा वादन पर ध्रुपद शैली का प्रभुत्व बहुत अधिक था और ऐसी स्थिति सितार वाद्य

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.013

के वादन पर ध्रुपद गायन शैली का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

प्राचीनकाल से चली आ रही ध्रुपद शैली परम्परा मुगलकाल तक अत्यधिक प्रचलित होने वाली विधा है उसके पश्चात ख्याल गायन शैली प्रचार में आया। बहुत कम समय में प्रचलित होने वाली ख्याल गायन शैली का अधिक प्रचार हुआ और ध्रुपद गायन शैली का प्रचलन कम हो गया।

जिस तरह ध्रुपद गायन शैली से ख्याल गायन की विकासशील यात्रा आरंभ हुई उसी प्रकार वाद्य संगीत के क्षेत्र में वीणा के विकसित रूप सितार का आगमन हुआ, ख्याल गायन शैली के जैसे ही सितार ने भी बहुत कम समय मे संगीत जगत में अपना अस्तित्व स्थापित कर लिया है।

सितार वाद्य ने चित्रपट संगीत में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। सितार वाद्य का काफी प्रभाव चित्रपट संगीत पर पड़ा। हमारे संगीतकारों ने सितार का बहुत अधिक उपयोग चित्रपट संगीत में किया है क्योंकि यह वाद्य ऐसा है इसका उपयोग हम चित्रपट में दृश्य चाहे खुशी का हो, दुख का हो दोनों ही भावों को हम सितार वाद्य पर दिखा सकते हैं।

वर्तमान समय में सितार वाद्य का अधिक प्रचार – प्रसार भारतीय चित्रपट संगीत में किया जा रहा है जैसे 'निलाद्री कुमार' और 'सुनीलदास' जी का वर्तमान समय में सितार सुनने को मिलता है। सितार वाद्य की आवाज मे एक ऐसा आकर्षण है कि मनुष्य इस आवाज को सुनकर अपने आप इस वाद्य की ओर आकर्षित हो जाता है। संगीत के कलाकारों ने अपने संगीत यात्रा में सितार की गायकी अंग और तंत्रकारी अंग की वादन शैलियों को उजागर किया है। सितार का सुंदर प्रयोग चित्रपट संगीत के बहुत से गीतों मे हुआ है जिन मे से कुछ गीत इस प्रकार हैं –

- फ़िल्म - मुगले-ए-आजम

  सन् – 1960

  गीत –जब प्यार किया तो डरना क्या।

उस्ताद अब्दुल हलीम जाफ़र ने इस गाने मे सितार का सुंदर प्रस्तुतीकरण किया है। यह गीत लता मंगेशकर जी की आवाज में है।

- फ़िल्म - दिल ही तो है।

  सन् – 1963

  गीत – लगा चुनरी में दाग छुपाऊ कैसे।

राग भैरवी पर आश्रित इस गीत को सितार के साथ बहुत खूबसूरत तरीके से संगीत बद्ध किया है। चित्रपट संगीत की बात करें तो अनेक ऐसे संगीतकार का नाम आता है जिन्होंने चित्रपट संगीत को प्रफुल्लित करने के लिए अनेक साजों का सहारा लिया जिससे गानों में चार चाँद लग जाए उनमे सितार वाद्य भी एक प्रमुख साज रहा है।

- फ़िल्म –दिल की राहें

  सन् - 1973

  गीत – रस्में उलफ़्त को निभाएं तो निभाएं कैसे

यह गाना लता मंगेशकर जी की आवाज में है। उस्ताद रईस खाँ साहब ने इस गीत में सितार वादन किया है।

- फ़िल्म – आंधी

  सन् – 1975

  गीत – तेरे बिना जिंदगी से कोई शिकवा तो नहीं।

इस गाने के शुरुआती रूप में सितार का सुंदर प्रयोग पंडित जयराम जी के द्वारा किया गया है। जो लता मंगेशकर और किशोर कुमार जी के आवाज मे है।

- फ़िल्म – दिल है कि मानता नहीं

  सन् – 1991

  गीत – दिल है कि मानता नहीं।

इस गीत में संगीतकार नदीम श्रवण जी हैं। गाने में सितार का सुंदर प्रयोग किया गया है इस गाने को अनुराधा पोड़वाल और कुमार सानू जी ने गाया है।

- फ़िल्म – वीर ज़ारा
  सन् – 2004
  गीत – तेरे लिए हम हैं जिए

इस गाने के अंतरे में सितार का प्रस्तुतीकरण बहुत ही सुंदर तरीके से किया गया है। लता मंगेशकर जी ने इस गाने को गाया है जो बसंत मुखारी और किरवानी राग का मिश्रण है।

उपसंहार

चित्रपट संगीत में ऐसे बहुत से संगीतकार और कलाकार हुए हैं जिनके गीतों में सितार का सुंदर प्रयोग हुआ है। वर्तमान में भारतीय चित्रपट संगीत मानव जीवन का एक अभिन्न अंग बन गए हैं जो सभी को अपनी ओर आकर्षित करती है। वर्तमान में जो हम चित्रपट देख रहे हैं वो चित्रपट संगीत का बहुत विकसित रूप है। सितार की विकासशील यात्रा में संगीत की हर विधा का भरपूर योगदान रहा है भारतीय चित्रपट संगीत जगत ने सितार के सृजनात्मक प्रयोग द्वारा सितार के विकास में प्रभावशाली और महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। चित्रपट संगीत में सितार वाद्य का प्रयोग होने से इस वाद्य का प्रचार – प्रसार अधिक हुआ। इसका श्रेय विद्वान कलाकार एवं प्रतिष्ठित सितार वादकों को जाता हैं जिन्होंने भारतीय चित्रपट संगीत में इस वाद्य का सुंदर प्रस्तुतीकरण करके इस वाद्य को आम जन तक पहुचाया।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1- जौहरी, डॉ. सीमा– फिल्म संगीत निर्देशक रोशन व उनके समकालीन संगीतकार, प्रकाशन 2002, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
2- विप्लव, विनोद, हिन्दी सिनेमा : कल आज और कल -18 नवंबर 2015 www.hindusamy.com
3- शोधार्थी- नीरज, भारतीय चित्रपट संगीत में तंत्री वाद्य [सितार] का प्रयोग : एक अध्ययन, शोध प्रबंध 2020
4- निगम, डॉ. रेखा – सितार की उत्पत्ति का विस्तृत विवेचन तथा सितार के बाज का विकास क्रम, 1996, मानक प्रकाशन, नई दिल्ली
5- भटनागर, डॉ रजनी, सितार वादन की शैलियाँ, प्रकाशन 2014, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.014

मध्यकाल के भक्ति गीतों में संगीत : एक उत्तम समन्वय एवं इसका सामाजिक प्रभाव

तेजस्विनी शर्मा

सारांश

भारतीय जीवन में भक्ति का सर्वोच्च स्थान रहा है। काल चाहे कोई भी रहा हो, भक्ति सदा मानव जीवन का मार्गदर्शन करती रही है। मध्यकाल में, जब समाज एक ओर सांस्कृतिक एवं राजनैतिक अव्यवस्थाओं से जूझ रहा था, वहीं भक्ति ने साहित्य, संगीत और कला के माध्यम से संसार को नई दिशा प्रदान की। इस काल के कवियों जैसे तुलसीदास, मीराबाई, सूरदास और रसखान ने अपने काव्य में भक्ति एवं संगीत का अनूठा समन्वय स्थापित किया, जिससे समाज में सकारात्मक बदलाव आए और समानता, नैतिक चेतना तथा सांस्कृतिक समरसता की भावनाएँ भी जन्मीं। इनके काव्य में भक्ति और संगीत का यह समन्वय उस काल के लिए अमृत सिद्ध हुआ, जिसने संगीत रूपी धागे में भक्ति रूपी मनकों को पिरोकर संसार को अलंकृत किया।

मुख्य शब्द - भक्ति, मध्यकाल, संगीत, भक्त कवि।

उद्देश्य - मध्य काल के भक्ति गीतों में संगीत समन्वय एवं इसके सामाजिक प्रभावों को जानना।

लक्ष्य - मध्य काल के भक्ति गीतों में संगीत समन्वय एवं इसके सामाजिक प्रभावों को समाज में परिलक्षित करना।

प्रस्तावना – मध्यकाल सदा से साहित्य, संगीत, कला एवं अध्यात्म का स्वर्णकाल माना गया है। यह सत्य है कि भारत में मुगल शासन होने के कारण समाज में भोगविलासिता, कर-संबंधी समस्याएँ, सत्ता-संघर्ष तथा जाति-वर्ग भेद जैसी अनेक समस्याएँ व्याप्त थीं, जिनके कारण समाज में अराजकता एवं अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इस समय समाज अनेक कुरीतियों की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, परन्तु इन सभी कुरीतियों से संघर्ष करते हुए भी विभिन्न कलाएँ फलती-फूलती रहीं।

जहाँ एक ओर समाज में अव्यवस्था का घोर अँधियारा था, वहीं दूसरी ओर भक्ति का दीपक इस अंधकार को दूर कर समाज को अपने प्रकाश से आलोकित कर रहा था। इस समय से पूर्व संगीत जैसी पवित्र कला का प्रयोग प्राय: राजदरबारों के मनोरंजन हेतु किया जाता था, परंतु भक्त कवियों ने इसे अपने काव्य से जोड़कर संगीत के प्रति प्रेम को उजागर किया और संसार को अध्यात्म की ओर प्रेरित किया।

मध्यकाल में सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास, रसखान एवं कबीरदास आदि अनेक भक्त कवि हुए, जिन्होंने अराजकता और अव्यवस्था

(शोधार्थी, संगीत) : राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय बेरीनाग, पिथौरागढ़।

से मूर्छित समाज को अपने काव्य द्वारा पुन: जीवंत किया। इन कवियों ने अपने भक्ति-काव्य में संगीत का अनूठा समन्वय कर समाज में न केवल आध्यात्मिक, बल्कि सामाजिक परिवर्तन भी किए तथा उन्हें जन-सामान्य में स्थाई रूप से प्रतिष्ठित किया।

मध्यकाल के भक्ति गीतों में संगीत समन्वय

मध्यकाल, भारतीय इतिहास का एक ऐसा काल रहा है जहाँ अनेक विसंगतियों के बीच भक्ति आन्दोलन ने जन्म लिया, जिसने सम्पूर्ण संसार को प्रेम, मानवता एवं अध्यात्म का संदेश दिया। इस काल के सूर, तुलसी, मीराबाई, रसख़ान एवं कबीर दास इत्यादि भक्त कवियों ने अपने साहित्य में संगीत का आश्रय लिया, जो उनके संप्रेषण का सशक्त माध्यम बना। इस काल के भक्त कवियों का संगीत सरल, मधुर, गेय एवं संगीत नियमों से बद्ध था, जिसे समाज द्वारा सहजता से स्वीकार किया गया।

सूरदास के भक्ति गीत एवं संगीत – भक्तिकाल के अष्टछाप परंपरा के श्रेष्ठ कवि सूरदास सदा से ही अपनी काव्य की सरलता एवं सहजता के लिए जाने जाते हैं। प्रेम, माधुर्य एवं श्रृंगार रस से परिपूर्ण उनके काव्य का मुख्य विषय भगवान कृष्ण की बाल-लीलाओं का लालित्यपूर्ण वर्णन है। सूरदास जी ने अपने काव्य को ब्रज भाषा में रचकर उसमें पदशैली का प्रयोग किया है, जिसने उनके काव्य को गेयता प्रदान की है। "सूरसारावली के एक पद में सूरदास जी ने अनेकों राग-रागिनियों का उल्लेख किया है। जिससे ज्ञात होता है कि सूरदास जी को छ राग एवं छत्तीस रागनियों वाला वर्गीकरण धान्य था।" सूरदास ने अपने पदों में राग बिलावल, भैरव, आसावरी एवं कल्याण जैसे अनेक प्रचलित रागों का प्रयोग किया, जो उनकी शास्त्रीय नियमबद्धता के साथ-साथ भाव संयोजन का एक शक्तिशाली उपकरण है।

जैसे - राग धनाश्री में रचित सूरदास का यह पद

"सुत-मुख देखि जसोदा फूली।
हरषित देखि दूध की दंतुली,
प्रेम-मगन तन की सुधि भूली ॥"

मीराबाई के भक्ति गीत एवं संगीत – मीराबाई न केवल भक्ति काल की एक प्रमुख कवियत्री हैं, अपितु भगवान कृष्ण की अनन्य भक्त भी हैं। उनके काव्य में भगवान कृष्ण के प्रति उनके प्रेम को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मीराबाई के पदों में जहाँ एक ओर वात्सल्य, श्रृंगार एवं भक्ति के अनोखे समन्वय के दर्शन होते हैं, वहीं दूसरी ओर इसमें संगीतात्मक तत्व भी निहित हैं। मीराबाई के पद-काव्य में संयोग-वियोग, प्रेम-विरह और अनुराग का सुंदर दर्शन मिलता है। मीराबाई ने अपने पद मुख्यत: राजस्थानी, गुजराती एवं ब्रज मिश्रित भाषा में रचा है। मीराबाई की रचनाएँ अधिकतर लोकसंगीत पर आधारित थीं, परन्तु फिर भी उनकी कुछ रचनाओं में राग भैरवी, यमन, खमाज, बिलावल, सावनी कल्याण आदि का प्रयोग दिखाई देता है।

जैसे - राग सावनी कल्याण में रचित मीराबाई का यह पद

"प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ कहवा तू ले जाई।
प्रीतम जी सूँ यूँ कहै रे थॉरी बिरहणि धान न खाई।
मीराँ दासी व्याकुली रे पिव पिव करत बिहाई।
बेगि मिलो प्रभु अन्तरजामी तुम तिबन रहयो ईन जाई।"

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.014

कबीर दास के भक्ति गीत एवं संगीत - मध्यकाल के संत कबीर दास निर्गुण भक्ति धारा के प्रमुख कवि थे, जिन्होंने अपनी निर्गुण उपासक वाणी के माध्यम से संसार को एक नई दृष्टि प्रदान की। उनका काव्य सरल, सहज एवं लोकसुगंध से ओत-प्रोत था, जो जनमानस में उनकी लोकप्रियता का कारण बना। कबीर के काव्य में माधुर्य भावना एवं शांत रस का अद्‌भुत संयोग देखने को मिलता है। उन्होंने अपने काव्य में मुख्यत: दोहा छंद का प्रयोग किया। जैसे-

"हाड़ बड़ा हरि भजन करि,
द्रव्य बड़ा कछु देह।
अकल बड़ी उपकार करि,
जीवन का फल येही।।"

नानक दास के भक्ति गीत एवं संगीत – सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव मध्यकाल के एक प्रमुख संत थे। उनका काव्य निराकार ईश्वर का उपासक था, जो जात-पात, धार्मिक कट्टरता एवं सामाजिक अन्याय का खंडन करता है। नानक देव जी के काव्य में प्रचुर मात्रा में संगीतात्मक तत्त्व निहित हैं, जो उनके साहित्य एवं उसमें निहित संगीत के अंतर्संबंध को उजागर करते हैं। उन्होंने अपनी वाणी में भैरवी, मल्हार, सोहनी एवं यमन जैसे अनेक रागों का प्रयोग किया है। उन्होंने अपने गीतों के साथ साधारण एवं लोक प्रचलित वाद्यों जैसे – मंजीरा, रबाब, सारंगी, ढोलक इत्यादि का प्रयोग किया, जिन्होंने उनके काव्य की अनुभूति को और अधिक गहरा बना दिया।

इसके अतिरिक्त, मध्यकाल में अनेक भक्त कवि जैसे रसखान, रैदास, तुलसीदास एवं रहीम आदि हुए हैं, जिनके भक्ति गीत संगीतिक अलंकरणों से सुसज्जित होकर जनसामान्य को एक दिशा देते आए हैं।

मध्यकालीन भक्ति गीतों का सामाजिक प्रभाव

यह सत्य है कि किसी भी समाज पर उसका साहित्य गहरा प्रभाव डालता है। मध्यकाल में, जहाँ समाज अनेक कुरीतियों और सामाजिक बुराइयों से ग्रस्त था, वहीं इन भक्ति गीतों ने समाज में अनेक सकारात्मक बदलाव किए, जैसे-

- जाति–व्यवस्था को चुनौती
- धार्मिक सद्‌भाव और एकत्व
- भाषा और साहित्य का विकास
- सामाजिक एकता और सामूहिकता
- नैतिक व आध्यात्मिक जागरण

यह भक्ति साहित्य समाज के लिए वरदान सिद्ध हुआ जिसने अनेक कुरीतियों, जात-पात, धार्मिक पाखंडों एवं अव्यस्वस्थाओं का खंडन करके अध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने के साथ-साथ सामाजिक एकता पर बल दिया। संत कबीर ने 'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान' जैसे अनेक दोहों के माध्यम से समाज की जात-पात जैसी मानसिकताओं पर कटाक्ष करके एकजुटता का सन्देश दिया। संत रविदास ने 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' जैसे भावों के माध्यम से मन की पवित्रता पर बल दिया। मीरा बाई ने 'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो' जैसे भावों के माध्यम से भोगविलासी समाज को अध्यात्म की ओर प्रेरित किया। श्री गुरु नानक देव जी ने 'एक नूर ते सब जग उपज्या' जैसे भावों के माध्यम से आद्वितीय ईश्वर की सत्ता का बखान किया। यह सभी भक्त कवि मध्यकाल के मार्गदर्शक सिद्ध हुए जिन्होंने अपने गीतों के माध्यम से सामाजिक समरसता, सामाजिक सुधार, सांस्कृतिक प्रसार और भावनात्मक सशक्तिकरण पर बल देकर समाज को दिशा प्रदान की।

निष्कर्ष- मध्यकाल का यह समय न केवल भक्ति और संगीत के उत्तम समन्वय का साक्षी है, बल्कि उन व्यापक सामाजिक परिवर्तनों की याद भी दिलाता है जिन्हें भक्ति साहित्य ने संभव बनाया। इस युग में रचित भजन, कीर्तन, पद और सबद केवल आध्यात्मिक साधना के माध्यम नहीं थे, बल्कि उन्होंने समाज में समानता, प्रेम, सद्भाव और मानवता के नए मूल्यों को जन्म दिया। वास्तव में, भक्ति साहित्य के इन अमूल्य योगदानों ने मध्यकालीन समाज को भीतर से बदलने का कार्य किया और भारतीय संस्कृति को एक अधिक संवेदनशील, समतामूलक एवं मानवीय दिशा प्रदान की।

संदर्भ सूची –

1. सक्सेना कल्पना, 2012, सूरदास के काव्य में प्रयुक्त सांगीतिक शब्दवालियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन, राधा पब्लिकेशन्स दिल्ली, पृ०सं० 47
2. वियोगी हरि, 2017, भक्तवर सूरदास के सुबोध पद, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, पृ०सं० 33
3. शुक्ला मधु रानी, 2023, गुंजत मीरा वाणी, कनिष्का पब्लिशर्स, पृ०सं० 12
4. भंडारी नारायण सिंह, 2022, चित्त-शांति के स्त्रोत, पुस्तक महल, पृ०सं० 75

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.015

श्रीमती शरण रानी : जीवन, साधना, वादन शैली एवं भारतीय सरोद परम्परा में ऐतिहासिक योगदान

डॉ. ममता यादव

सार

भारतीय शास्त्रीय संगीत की तंत्री वाद्य परम्परा में सरोद का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट माना जाता है। अपनी गंभीरता, तकनीकी जटिलता तथा साधना-प्रधान स्वरूप के कारण यह वाद्य केवल अत्यंत अनुशासित और समर्पित कलाकारों द्वारा ही साध्य हो जाता है। बीसवीं शताब्दी में जिन कलाकारों ने सरोद को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठा प्रदान की, उनमें श्रीमती शरण रानी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, वे भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्रथम महिला सरोद वादिकाओं में से एक थी, जिन्होंने पुरुष-प्रधान संगीत जगत में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की। श्रीमती शरण रानी के जीवन पारिवारिक पृष्ठभूमि, सामाजिक संघर्ष, गुरु-शिष्य परम्परा में प्राप्त प्रशिक्षण, संगीत साधना, सरोद वादन शैली तथा उनके शैक्षिक-संस्थागत और अन्तर्राष्ट्रीय योगदान का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। सामाजिक रूढ़ियों और पारिवारिक विरोध के बावजूद उन्होंने सरोद जैसे कठिन वाद्य में दक्षता प्राप्त कर भारतीय संगीत को वैश्विक मंचों पर सम्मान दिलाया। उनकी वादन शैली में गंभीरता, भावप्रधाता, तकनीकी स्पष्टता और शास्त्रीय अनुशासन का संतुलन समन्वयक दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अध्ययन संगीत कला भवन संग्रहालय की स्थापना, संगीत शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान तथा सांस्कृतिक धरोहर संरक्षण के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को भी रेखांकित करता है। शरण रानी केवल एक श्रेष्ठ कलाकार ही नहीं, बल्कि भारतीय शास्त्रीय संगीत में नारी शक्ति, साधना और समर्पण की प्रतीक थीं। उनका जीवन और कृतित्व आने वाली पीढ़ियों के कलाकारों के लिये प्रेरणास्त्रोत है।

कुंजी शब्दः- *संगीत, शिक्षा, तंत्री वाद्य, महिला वाद्य कलाकार, भारतीय शास्त्रीय संगीत*

1. प्रस्तावना

भारतीय शास्त्रीय संगीत विश्व की प्राचीनतम, समृद्ध और सुव्यवस्थित संगीत परंपराओं में से एक है। इसकी जड़ें वैदिक काल तक फैली हुई मानी जाती हैं, जहाँ संगीत को केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि आत्मिक शुद्धि, साधना और मोक्ष का मार्ग माना गया। समय के साथ भारतीय संगीत गायन, वादन और नृत्य, इन तीनों प्रमुख रूपों में विकसित हुआ। तंत्री वाद्य संगीत ने इस विकासक्रम में विशेष स्थान प्राप्त किया, जिसमें वीणा, सितार, संतूर और सरोद जैसे वाद्यों का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

असिस्टेन्ट प्रोफेसर : गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सरोद भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक गंभीर, गूढ़ और तकनीकी रूप से अत्यंत कठिन वाद्य माना जाता है। इसके वादन में दीर्घकालिक अभ्यास, शारीरिक दृढ़ता, मानसिक एकाग्रता और गहन रागात्मक समझ की आवश्यकता होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से सरोद वादन लंबे समय तक पुरुष कलाकारों के प्रभुत्व वाला क्षेत्र रहा। सामाजिक संरचना, पारिवारिक अपेक्षाएँ तथा मंचीय रूढ़ियाँ स्त्रियों के लिए इस वाद्य को और भी चुनौतीपूर्ण बनाती थीं।

ऐसे परिवेश में श्रीमती शरण रानी का सरोद वादन में प्रवेश करना, उसमें पूर्ण दक्षता प्राप्त करना और राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठा अर्जित करना भारतीय संगीत इतिहास की एक असाधारण घटना है। उनका जीवन केवल एक सफल कलाकार की कहानी नहीं है, बल्कि यह संघर्ष, साधना, आत्मविश्वास और सामाजिक सीमाओं को पार करने की प्रेरक गाथा है। यह शोध-पत्र श्रीमती शरण रानी के जीवन, संगीत साधना, वादन शैली और भारतीय सरोद परंपरा में उनके ऐतिहासिक योगदान का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है।

2. संक्षिप्त जीवन परिचय एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि

श्रीमती शरण रानी का जन्म 9 अप्रैल 1929 को दिल्ली के चाँदनी चैक स्थित ऐतिहासिक जुगल किशोर हवेली में हुआ। उनका परिवार एक प्रतिष्ठित हिंदू वैश्य परिवार था, जहाँ पीढ़ियों से व्यापार को प्राथमिकता दी जाती थी। ऐसे परिवारों में संगीत को प्राय: शौक तक सीमित माना जाता था, न कि आजीविका या साधना का मार्ग।

उनके पिता श्री लाल पुत्र लाल दिल्ली के प्रसिद्ध व्यापारी थे, जबकि माता श्रीमती नंद रानी इलाहाबाद के एक शिक्षित एवं सुसंस्कृत परिवार से थीं। शरण रानी अपने माता-पिता की दस संतानों में सबसे छोटी थीं। परिवार का वातावरण अनुशासित और परंपरागत था, जहाँ कन्याओं के लिए गृहस्थ जीवन को ही सर्वोपरि माना जाता था।

बाल्यावस्था में ही उनके जीवन में गहरा आघात लगा। जब वे आठवीं कक्षा में अध्ययनरत थीं, तभी उनकी माता का निधन हो गया। यह घटना उनके लिए अत्यंत पीड़ादायक थी। इसके कुछ ही वर्षों बाद उनके पिता का भी देहांत हो गया। कम आयु में माता-पिता का साया उठ जाने से उनका जीवन अस्थिर और संघर्षपूर्ण हो गया। आर्थिक और मानसिक कठिनाइयों के बीच उन्होंने आत्मनिर्भर बनने का संकल्प लिया।

इन्हीं परिस्थितियों में संगीत उनके जीवन का संबल बना। संगीत केवल उनकी रुचि नहीं रहा, बल्कि एक ऐसा माध्यम बन गया, जिसने उन्हें मानसिक शक्ति, उद्देश्य और पहचान प्रदान की। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संघर्षों ने उनके व्यक्तित्व को दृढ बनाया और संगीत साधना के प्रति उनका समर्पण और भी गहरा हुआ।

3. सामाजिक परिवेश एवं संघर्ष

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का भारतीय समाज स्त्रियों के लिए अनेक सीमाओं से बँधा हुआ था। संगीत, विशेषकर वाद्य संगीत, को सम्मानजनक पेशा नहीं माना जाता था। मंचों पर सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन करना प्रतिष्ठित

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.015

परिवारों की महिलाओं के लिए सामाजिक दृष्टि से अनुचित समझा जाता था। सरोद जैसे भारी, तकनीकी और शारीरिक परिश्रम वाले वाद्य को बजाना स्त्री-सुलभ नहीं माना जाता था।

शरण रानी के परिवार में भी संगीत के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं था। उनके पिता को यह स्वीकार करना कठिन लगता था कि उनकी पुत्री घर से बाहर जाकर वाद्य संगीत सीखे और मंचों पर प्रदर्शन करे। सामाजिक आलोचना और पारिवारिक असहमति के कारण उन्हें मानसिक दबाव का सामना करना पड़ा। कई बार उन्हें अपनी साधना को छिपकर करना पड़ता था।

इन परिस्थितियों में शरण रानी का संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं था, बल्कि वह उस सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध एक मौन प्रतिरोध था, जो स्त्रियों की क्षमताओं को सीमित मानती थी। उन्होंने बिना किसी विद्रोही घोषणा के, केवल अपनी साधना और उपलब्धियों के माध्यम से यह सिद्ध किया कि संगीत साधना में लिंग का कोई स्थान नहीं होता।

उनका यह संघर्ष आगे चलकर भारतीय शास्त्रीय संगीत में महिला वाद्य कलाकारों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ। उन्होंने आने वाली पीढ़ियों की कलाकारों के लिए यह संदेश दिया कि यदि साधना सच्ची हो, तो सामाजिक बाधाएँ भी मार्ग में बाधक नहीं बन सकतीं।

4. संगीत साधना एवं गुरु-शिष्य परंपरा

भारतीय शास्त्रीय संगीत की आत्मा गुरु-शिष्य परंपरा में निहित है। यह परंपरा केवल तकनीकी ज्ञान का हस्तांतरण नहीं, बल्कि जीवन-दृष्टि, अनुशासन, मूल्य और साधना का संस्कार प्रदान करती है। श्रीमती शरण रानी का संगीत जीवन भी इसी परंपरा में विकसित हुआ। प्रारंभिक अवस्था में उन्होंने नृत्य और संगीत की शिक्षा प्राप्त की, किंतु शीघ्र ही उनका झुकाव वाद्य संगीत, विशेषकर सरोद, की ओर हो गया।

सरोद जैसे गंभीर और कठिन वाद्य को अपनाना उस समय एक साहसिक निर्णय था। इस वाद्य की साधना के लिए लंबे समय तक बैठकर अभ्यास करना, उँगलियों पर निरंतर घर्षण सहना तथा स्वरों की सूक्ष्मता को साधना आवश्यक होता है। शरण रानी ने इन सभी कठिनाइयों को स्वीकार करते हुए सरोद को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रशिक्षण महान गुरु उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब के सान्निध्य में हुआ। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ भारतीय संगीत के ऐसे स्तंभ थे, जिनकी शिष्य परंपरा ने विश्व को अनेक महान कलाकार दिए। उनके सान्निध्य में रहकर शरण रानी ने सरोद वादन की तकनीक, रागों की गहन समझ, स्वर-साधना और अनुशासन का कठोर अभ्यास किया। गुरु द्वारा दी गई शिक्षा उनके संगीत जीवन की आधारशिला बनी।

इसके अतिरिक्त उन्होंने पंडित नवकुमार सिंह जैसे विद्वान गुरुओं से भी मार्गदर्शन प्राप्त किया। इन गुरुओं के निर्देशन में उनकी साधना केवल अभ्यास तक सीमित न रहकर एक आध्यात्मिक अनुभव में परिवर्तित हो गई। वे घंटों तक निरंतर रियाज करती थीं।

उनके लिए संगीत समयबद्ध अभ्यास नहीं, बल्कि जीवन की निरंतर चलने वाली साधना थी।

5. श्रीमती शरण रानी की सरोद वादन शैली

श्रीमती शरण रानी की सरोद वादन शैली भारतीय सरोद परंपरा में एक विशिष्ट और मौलिक स्थान रखती है। उनकी शैली में गंभीरता,

संयम, भावप्रधानता और शास्त्रीय मर्यादा का संतुलित समन्वय देखने को मिलता है। वे वादन में प्रदर्शन से अधिक साधना और सौंदर्य को महत्व देती थीं।

5.1 आलाप शैली

उनका आलाप अत्यंत विस्तारपूर्ण, स्थिर और ध्यानात्मक होता था। वे राग को अत्यंत धीरे-धीरे विकसित करती थीं, जिससे श्रोता राग की आत्मा से जुड़ जाता था। उनके आलाप में अनावश्यक चमत्कारिकता या तीव्र गति नहीं होती थी। स्वर एक-एक करके उभरते थे और राग का भाव स्पष्ट रूप से प्रकट होता था।

उनका आलाप सुनते समय यह अनुभूति होती थी कि वे केवल स्वर नहीं बजा रहीं, बल्कि राग के साथ संवाद कर रही हैं। यह शैली उनकी गहन साधना और रागात्मक समझ का प्रमाण है।

5.2 मींड, गमक और स्वर-स्पष्टता

शरण रानी की मींड अत्यंत शुद्ध, कोमल और नियंत्रित होती थी। सरोद पर मींड निकालना तकनीकी रूप से अत्यंत कठिन होता है, किंतु उन्होंने इसे अत्यंत सहजता से साध लिया था। उनके स्वर स्पष्ट, स्वच्छ और संतुलित होते थे।

गमक और अन्य अलंकारों का प्रयोग वे सीमित और आवश्यकतानुसार करती थीं। उनका उद्देश्य राग की सुंदरता को निखारना होता था, न कि श्रोताओं को चकित करना।

5.3 जोड़ और झाला

जोड़ और झाला में उनकी प्रस्तुति सधी हुई और संतुलित रहती थी। उनकी तानों में तीव्रता के साथ-साथ स्पष्टता भी बनी रहती थी। वे कभी भी लय से बाहर नहीं जाती थीं। उनकी तानें सुनियोजित होती थीं और राग की मर्यादा में रहती थीं।

5.4 तालबद्ध रचनाएँ और लयकारी

तालबद्ध रचनाओं में उनकी लयकारी अत्यंत सटीक और नियंत्रित होती थी। चाहे मध्य लय हो या द्रुत लय, वे ताल के साथ पूर्ण सामंजस्य बनाए रखती थीं। कठिन तालों में भी उनका वादन सहज और प्रवाहपूर्ण रहता था।

5.5 स्त्री-सुलभ सौंदर्य और गरिमा

उनकी वादन शैली में एक विशिष्ट सौम्यता और गरिमा दिखाई देती है। जहाँ कई पुरुष सरोद वादकों की शैली में आक्रामकता देखने को मिलती है, वहीं शरण रानी की शैली में कोमलता, संवेदनशीलता और संतुलन प्रमुख है। यह उनकी पहचान बन गई।

6. शरण रानी की वादन शैली का ऐतिहासिक महत्व

शरण रानी की वादन शैली का ऐतिहासिक महत्व केवल संगीत तक सीमित नहीं है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि सरोद जैसे कठिन वाद्य में भी स्त्रियाँ समान दक्षता और गहराई प्राप्त कर सकती हैं। उनकी शैली ने भारतीय सरोद परंपरा को एक नया दृष्टिकोण दिया और महिला वाद्य कलाकारों के लिए नए द्वार खोले।

उनकी वादन शैली आज भी विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए अध्ययन का विषय है। यह शैली शास्त्रीय अनुशासन, भावनात्मक गहराई और तकनीकी संतुलन का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सरोद परम्पराः-

भारतीय शास्त्रीय संगीत की तंत्री वाद्य परम्परा में सरोद का एक विशिष्ट एवं प्रतिष्ठित

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.015

स्थान है। सरोद को गंभीरता गूढ़ तथा साधना-प्रधान वाद्य माना जाता है। इसके विकास का इतिहास भारतीय सांस्कृतिक परम्परा, दरबारी संगीत तथा गुरु-शिष्य परम्परा में गहराई से जुड़ा हुआ है। विद्वानों के अनुसार सरोद की उत्प०ि प्राचीन वाद्य 'रवाब' से मानी जाती है। जो मध्य एशिया से भारत में आई और कालान्तर में भारतीय संगीत परम्परा के अनुरूप रूपांतरित होती चली गई। मध्यकालीन भारत में मुगल दरबारी के संरक्षण में सरोद का स्वरूप विकसित हुआ। इस काल में वाद्य की संरचना, स्वर-व्यवस्था और वादन तकनीक में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। लकड़ी के शरीर, धातु की तारें और चमड़े की झिल्ली ने इसे विशिष्ट ध्वनि प्रदान की। धीरे-धीरे यह वाद्य दरबारी संगीत से निकलकर शास्त्रीय मंचों तक पहुँचा और हिन्दुस्तानी संगीत की मुख्य धारा में सम्मिलित हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तगरार्द्धऔर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सरोद परम्परा के उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने नई दिशा प्रदान की उन्होंने सरोद वादन को तकनीकी परिपक्वता, रागात्मक विस्तार और अनुशासनात्मक साधना से समृद्ध किया। उनके शिष्यों, विशेषकर उस्ताद अली खां ने इस परम्परा को अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलाई। इसी काल में सरोद के एक गंभीर शास्त्रीय वाद्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक सरोद वादन पुरुष कलाकारों तक ही सीमित रहा ऐसे ऐतिहासिक संदर्भ में श्रीमती शरण रानी का उदय अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने इस परम्परा में प्रवेश कर न केवल सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ा, बल्कि सरोद वादन में सौंदर्य, संवेदनशीलता और संतुलन का नया आयाम जोड़ा। परम्परा का सम्मान करते हुए उन्होंने उसमें नवीनता और भावात्मक गहराई का समावेश किया।

महिला वाद्य कलाकार के रूप में शरण रानी :-

भारतीय शास्त्रीय संगीत के इतिहास में नारी सहभागिता मुख्यत: गायन और नृत्य तक सीमित रही है, जबकि वाद्य संगीत विशेषकर तंत्री वाद्य परम्परा लम्बे समय तक पुरुष-प्रधान क्षेत्र माना जाता रहा है। ऐसे सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में श्रीमती शरण रानी का सरोद वादन के क्षेत्र में उदय तक ऐतिहासिक और क्रांतिकारी घटना के रूप में देखा जाता है। उनका जीवन और साधना यह सिद्ध करते हैं कि प्रतिभा, साधना और अनुशासन के सामने कोई बाधा नहीं हो सकता।

बीसवीं शताब्दी के मध्यकालीन भारतीय समाज में प्रतिष्ठित परिवारों की स्त्रियों का सार्वजनिक मंचों पर वाद्य वादन करना सामाजिक रूप से सहज स्वीकार नहीं था। इसके बावजूद शरण रानी ने पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश का सामना करते हुए सरोद जैसे कठिन वाद्य को अपनी साधना का माध्यम बनाया। यह निर्णय न केवल व्यक्तिगत साहस का परिचायक था, बल्कि उस समय की सामाजिक रूढ़ियारों को चुनौती देने वाला भी था। नारी दृष्टि से देखा जाए तो यह उनके आत्मविश्वास और आत्मनिर्णय की सशक्त अभिव्यक्ति है।

संस्थागत एवं शैक्षिक योगदान :-

वे इंडियन नेशनल थिएटर (वर्तमान नाम श्रीराम सेंटर फॉर आर्ट एंड कल्चर, नई दिल्ली) की सक्रिय सदस्य रहीं। इसके अतिरिक्त वे

दिल्ली स्टेट काउंसिल ऑफ वुमेन की सदस्य तथा नेशनल काउंसिल ऑफ वुमेन की आजीवन सदस्य भी थीं।

उन्होंने अनेक प्रतिष्ठित संस्थाओं की सदस्यता ग्रहण की, जिनमें प्रमुख हैं-

(क) दिल्ली इंटरनेशनल वुमेन क्लब, नई दिल्ली

(ख) दिल्ली कॉमनवेल्थ वुमेन एसोसिएशन, नई दिल्ली

(ग) इनर व्हील क्लब ऑफ दिल्ली (रोटरी क्लब दिल्ली से संबद्ध), जिसकी वे संस्थापक सदस्यों में से एक रहीं तथा संस्थापक अध्यक्ष का दायित्व भी निभाया।

(घ) अवैतनिक सलाहकार के रूप में उन्होंने अनेक विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं संगीत संस्थानों को मार्गदर्शन प्रदान किया।

एक अनुपम (Sehenary) कलाकार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के बावजूद वे अत्यंत सरल, सौम्य और विनम्र स्वभाव की थीं। उनका मानना था कि जीवन में अभी बहुत कुछ करना शेष है-यह विचार वे सदा व्यक्त करती रहती थीं।

पुरस्कार, सम्मान एवं उपाधियाँ :-

सच्चा कलाकार कभी सम्मान की लालसा नहीं करताय बल्कि सम्मान स्वयं कलाकार के नाम से जुड़कर गौरवान्वित हो जाता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विख्यात कलाकार श्रीमती शरणरानी को उनके अमूल्य योगदान के लिए भारत एवं विदेशों की अनेक संस्थाओं द्वारा समय-समय पर विविध पुरस्कारों और उपाधियों से अलंकृत किया गया।

प्रमुख पुरस्कारः-

- जनवरी 1968 में भारत सरकार द्वारा 'पद्मश्री' से सम्मानित किया गया। वे पद्मश्री प्राप्त करने वाली प्रथम महिला तंत्री वाद्य कलाकार थीं।
- सन् 1974 में दिल्ली प्रशासन द्वारा साहित्य कला परिषद पुरस्कार से सम्मानित।
- सन् 1974 में दिल्ली प्रदेश पुरस्कार प्राप्त किया।
- सन् 1986 में हिंदुस्तानी वाद्य संगीत के क्षेत्र में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से विभूषित।
- सन् 1993 में व्यावसायिक उत्कृष्टता हेतु राजीव गांधी अवार्ड।
- सन् 1997 में दिल्ली विश्वविद्यालय विशिष्ट भूतपूर्व छात्र पुरस्कार।
- 1 जनवरी 1997 को दिल्ली विश्वविद्यालय के प्लेटिनम जुबली समारोह में Distinguished Alumni Award
- सन् 1999 में राष्ट्रीय उत्कृष्टता पुरस्कार।
- सन् 2000 में भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण से सम्मानित।
- सन् 2000 में दिल्ली में लाइफटाइम अचीवमेंट अवार्ड।
- सन् 2003 में नेशनल आर्टिस्ट अवार्ड।
- सन् 2004 में महाराणा मेवाड़ फाउंडेशन पुरस्कार।
- सन् 2005 में भोपाल से कला परिषद पुरस्कार।
- राजीव गांधी अवार्ड फॉर एक्सीलेंस।

उपाधियाँः-

- रोटरी क्लब के अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में 'कला रत्न' की मानद उपाधि।
- सन् 1951 में टी.वी. स्कॉलर तानसेन प्रतियोगिता में सरस्वती रानी की उपाधि।

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.015

- सन् 1979 में संगीत पीठ एवं सुरसिंगार अकादमी द्वारा 'आचार्य' एवं 'तंत्री विलास'
- सन् 1992 में Los Angeles City University (USA) द्वारा डॉक्टरेट की मानद उपाधि।
- सन् 2004 में भारत सरकार द्वारा चयनित राष्ट्रीय कलाकारों में एकमात्र महिला वाद्य कलाकार के रूप में चयन।

शैक्षिक एवं प्रशासनिक दायित्व :-

- खजुराहो (मध्यप्रदेश) स्थित इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय की संगीत एवं ललित कला संकाय की सदस्य।
- इंद्रप्रस्थ एजुकेशनल ट्रस्ट, दिल्ली की ट्रस्टी एवं इंद्रप्रस्थ कॉलेज फॉर वुमेन की चेयरपर्सन।
- इंद्रप्रस्थ कॉलेज फॉर वुमेन, दिल्ली की गवर्निंग बॉडी की सदस्य।
- डॉ. राधाकृष्णन इंटरनेशनल स्कूल, नई दिल्ली की मैनेजिंग कमेटी की सदस्य।
- श्रीराम भारतीय कला केंद्र, नई दिल्ली की गवर्निंग काउंसिल की दीर्घकालीन सदस्य।
- इंडो-ईरानी सोसाइटी, दिल्ली की संस्थापक एवं आजीवन सदस्य।
- भारतीय विद्या भवन, नई दिल्ली की एडवाइजरी बोर्ड की सदस्य।
- दिल्ली प्रशासन की साहित्य कला परिषद की कार्यकारिणी एवं जनरल काउंसिल की सदस्य।
- दिल्ली म्यूजिक सोसाइटी की कार्यकारिणी समिति की सदस्य।

अन्य महत्वपूर्ण भूमिकाएँ :-

- ऑल इंडिया इंडियन म्यूजिकोलॉजी सोसाइटी, बड़ौदा की संस्थापक सहयोगी सदस्य।
- शिक्षा मंत्रालय (भारत सरकार) की संगीत एवं नृत्य छात्रवृत्ति चयन समितियों की सदस्य।
- ऑल इंडिया रेडियो की ऑडिशन कमेटी की सदस्य।
- संगीत कला भवन, नई दिल्ली (म्यूजिक एवं फाइन आर्ट्स म्यूजियम) की संस्थापक निदेशक।

निष्कर्ष :-

श्रीमती शरण रानी भारतीय शास्त्रीय संगीत की तंत्री वाद्य परम्परा मे०० एक युगप्रर्वतक व्यक्तित्व थीं। उन्होंने सरोद जैसे कठिन और पुरुष-प्रधान वाद्य में न केवल विशिष्ट स्थान प्राप्त किया, बल्कि अपनी साधना, अनुशासन और आत्मविश्वास के माध्यम से सामाजिक रूढ़ियों को भी चुनौती थी। उनकी सरोद वादन में शास्त्रीय गहराई, भावनात्मक संवेदनशीलता, तकनीकी स्पष्टता और सौंदर्यबोध का संतुलित समन्वय दिखाई देता है।

एक कलाकार के साथ-साथ वे एक समर्पित शिक्षिका, सांस्कृतिक संरक्षक और संस्थान निर्माता भी थी। संगीत शिक्षा संग्रहालय स्थापना तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारतीय संगीत के प्रसार में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा।

निधन:-

श्रीमती शरण रानी का निधन 8 जनवरी 2008 को नई दिल्ली में हुआ। उनका जीवन भारतीय शास्त्रीय संगीत की सेवा, साधना और संरक्षण को समर्पित रहा। उनके निधन से भारतीय संगीत

जगत को अपूर्णीय क्षति पहुंची, किन्तु उनके द्वारा स्थापित सरोद वादन की परम्परा शिक्षण कार्य तथा सांस्कृतिक संस्थाएँ आज भी उनकी स्मृति और योगदान को जीवंत बनाए हुए हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. मिश्र, पं० लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, 1973
2. देव, बी०सी०, Musical Instruments of India, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1978
3. शरण रानी, The Divine Sarod, कला भवन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992
4. ठाकुर, डॉ० अशोक, भारतीय वाद्य संगीत की परम्परा, चैखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1995
5. मिश्र, डॉ० विजय कुमार, सरोद: वादन शैली एवं सौंदर्यशास्त्र, इलाहाबाद, लोक भारतीय प्रकाशन, 2001
6. संगीत नाटक अकादमी, भारत के प्रमुख संगीतकार, नई दिल्ली, 1999
7. संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, राष्ट्रीय कलाकार सम्मान एवं सांस्कृतिक योगदान अभिलेख, नई दिल्ली, 2004
8. महिला संगीत अंक, जनवरी-फरवरी 1986, लक्ष्मीनारायण गर्ग
9. राजभाषा मंजूशा, अंक 20, वर्ष 2016, अर्द्धवार्षिक
10. संगीत महिला अंक, फरवरी 2010
11. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, हमारे संगीत रत्न, संगीत कार्यालय, हाथरस, संस्करण वर्ष 1979

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.016

किन्नौरा जनजाति के प्रमुख लोकगीत

डॉ० सरिता नेगी

सार

किन्नौर हिमाचल प्रदेश में स्थित एक जनजातीय प्रदेश है। किन्नौर जिले की अपनी अलग पहचान है। यह क्षेत्र देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, साधु-संतों की तपोभूमि रही है। किन्नौर की विभिन्न नामों किन्नौर, कुनावर तथा कनौरि से सम्बन्धित किया गया है। स्थानीय बोली में इसे कनौरिङ् कहते हैं क्योंकि यह शब्द स्थान विशेष तथा निवासियों के लिए प्रस्तुत किया जाता है। आधुनिक समय में इसको 'कनौर' या किनोरे कहते हैं। किन्नौरी, सभ्यता हिमालय की प्राचीन सभ्यता है। किन्नौर एक पूर्वतीय लोकक्षेत्र है। इसलिए यहाँ जनजीवन, प्रकृति एवं संस्कृति के अत्याधिक निकट है। किन्नौर के लोकगीत प्राय: विशेष घटना उत्सव, पर्व, धार्मिक कार्यक्रम ऐतिहासिक प्रसंग संस्कार सम्बन्धी तथा सामाजिक क्रिया कलापों पर आधारित है परन्तु हम यहाँ किन्नौर के धार्मिक एवं पर्व सम्बन्धी लोकगीतों की चर्चा करेंगे। यद्यपि किन्नौर भौगोलिक दृष्टि से पर्वतीय दुर्गम क्षेत्र होते हुए भी सांगीतिक दृष्टि से बहुत समृद्ध मानी गई है। सांगीतिक तकनीक से दूर होते हुए भी किन्नौरी संगीत जहाँ एक ओर किन्नौरी लोक हृदय में स्थान रखता है वहीं दूसरी ओर सामान्यजन को भी उतना ही लुभाता है।

मुख्य शब्द: किन्नौर, लोकगीत, संस्कृति, संगीत

शुभरात गीथङ (शिवरात्रि गीत)

बिशमोन पोरो माटी नाई ठाटी गोसैंया
पूर्वा बिले का आओशा बागुरो हाशा।
बागुरे हाशे सोरो चुकौंदी लाई, सोरे
चुकीयो शेपो उपजो।
शेपो फुटीयो पिण्ड उपजो।
पिंड फुटीयो माजोरमो महादेव।
बिशमोन पोरो आपु महादेव।
जाखानी शिरका सूर्य चन्द्रीरा।
शिरेका माजोरमो विष्णु।
जाखनी शिरेका ब्रह्म, भावई शिरेका विष्णु।
त्रोण मूर्ति गुनामुनी कीमो।
बीशोमोन पोरो माटी नाई ठाटी गो सैंया।
आंदे लागो शक्लो माटी सोई माटी बोसोंदी नाई।
आंदे लागो बोलो रातो माटी सोई,
माटी बोसोंदी नाई।
आंदे लागो बोलो काले माटी सोई माटी बोसोदें लागो।
पोए रे, ठासो सात पोइएताल पाङ शिरे ठासो।
सात पाइए ताल सोरगङ, चांदे लागो, सुनो रूपैरो मानुष, चीजांदो लागो सुनांदो नाई।
चानदै लागो तांबो पीतलो मानुष।

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, ई-मेल: sarita.negi@gkv.ac.in, मो.नं.: 9675256065

सोई मानुष ले दास ठीका पोप।
चानंदे लागो छारू कतारूओ सोई मानुष।
मानुष लो दा ठीमा दोषेसोई मानुष सुनांदे लागो।
गाली देनो तु मोरो झोंपरी शोबोरी कपार मुट्टी
बोंदी जो कापटीक आग।
पहले शुभरात्रि कोसे घौर दैनु
पहले शुभरात्रि राजा घौर दैनु
राजो छोटु पुज्ञो भी न जानो।
पहले शुभरात्रि वजीर घोर दैनु
वजीरो छोटु पुजो भी न जानो।

भावार्थ

यह गीत डोमकाद यानि (हरिजन बोली) में है। यह त्यौहार किन्नौर में केवल बढ़ई जाति द्वारा मनाया जाता है तथा उच्च जाति के लोगों को केवल अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया जाता हैं। इस त्यौहार को ये बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। इस गीत में शिवजी के उत्पत्ति के विषय में बताया गया है। उस समय धरती पर कुछ नहीं था पूर्व की ओर से एक हवा का झोंका आया तथा यहाँ की मान्यता है कि जिससे धरती हिलने लगी जिससे शिवजी के पिण्ड की उत्पत्ति हुई तथा ऐसा भी माना गया है कि सूर्य, चन्द्र, तारे, विष्णु भी इनके बाद ही उत्पन्न हुए हैं। इस त्यौहार को मनाने का ढंग न तो राजा को है न ही राजा के वजीर को और न ही उच्च जाति के लोगों को पता था। केवल इस जाति के लोग ही जानते थे इसे मनाने का ढंग इसी कारण यह केवल इन्हीं के द्वारा आज तक मनाया जाता है।

उख्वाङ गीत (साङला)

गोली गो होना हायाबे होना
जुगा मा जुग नीज़ा बादुर
जुगची सी नीतो आनु दयालियोसी
जुगची नीतो।।
आनु दयारो ची नीजा बादरङ
नीज़ा बादरङ् बङ्गी ऊ रङ्।।
युम रातिडु बेरड यैन-दैन जौलारिङ्
जोगर बाज़्यौ।।
जोगरङ् पांडो (पांडव) पो जोगरङ्
दो रिङ्-रिङ् बीमा कांउयो बोनशाकर।।
कांडयो बोनशाकर शुमची डोमबोर ज़ोमज्ञो
थुचाला शोङा पंद्रहशोल जाखा।।
नु चाला शोड़ा याकेस नारेणस
यूचाला डेना जी बैरिङ नागेस।।
जोमची ज़ोमज्ञोश शुम डोम्बोर कांडे बौनश
दोम्या तोचिज्ञोश मियु बोलिया।
दैन मासेमाश (अस्वीकृति) बोलिया
दैन माशेयाश बारह सौनिगे।।
दोम्या लानाज्ञिश शाबु सीमाङो।।
दोम्या मारोयाज्ञिश लाडु बोलिया
दोम्यास जापज्ञोश क्यालमो सीमाङो।
दोम्या माशेसाज्ञिश क्यालमाडु सीमोडु
डानी चै डैखोरू।।
दोम्या जापज्ञोश काऊ सीमाड़ो
दोम्या तोचिज्ञोश।।
ब्याङ मा चु माली जी माचु बयाङमाचु दैली
दैन ची रोयाज्ञिश जी बैरिङ नागेस।।
दैन ची उख्याडु नीज़ा बादुरे
नीज़ा बादुरे बङ्गी शाखङ् रङ बङ्गी अ रङ्।।
जुगले उख्याङ् लो बौंडे नागेसु बादरङ् ङा मैया
दैनची उख्याङ् हो होली रूपी टैरासु।।
रूपी टैरासु बादरङ् से मैया
रूपी उख्याङ् हो होले शाङ्चे ब्रासु पोले।
दङ ची उख्याङ कोमो टुकपाओ नीज़ा बादरङ्
शुन्यो नीतोश हो राज़ो चारेस राज़ो चारस ऊ
ओ बीमु रीडो।।
ङ ओ बामु रीडो नाब लो चुलो बीमु।।
ऊ पाइंतैसु छाडो राड़े याङलो (छाल्ली) शैदो
खोगे थाकपा रङ।।

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.016

खोगे बोटया रङ् राङ् दैन मुसु बैंडी रौदो
दो रिङ् रीङ् बीमा सुनयो चु मोरयो (राडो)
छ सुना शानी।।
दो सुना शानी नीदरयो आलेसस
कुकुर ता दैमो शाङ् लीड़ो कुकुर।।
थाको-थाको कुकुर हाथे नाई शौठो?
दो रीङ्-रीङ् बीमा दोयारास पाबो।।
दोयारासु पाबो जाओ रङ् तुडो
जाओ रङ् तुङ् मादो रे गोएटे।।
मादो रे गोएटे जाओ रङ तुङो
ज़ाओ मार चुनङ् (घास)।।
तुडो मार छालटी रो रीड रीङ् बीमा
जाईन्यो योसको चीसे काचङ्।।
दो रीङ्-रीङ् बीमा योशङ् डाबारो
खास कोटे पाऊ (सबसे सुगन्धित फूल)
खास कोटे पाऊ बासडु जीटैस
दो रीङ्-रीङ् बीमा कसार पालेसु मोमा
या कार पालेसु मोमाऊ माताड्या।।
कार पालेसिस लोबोश ऊ ता
ताङ्गिक नु राङ् बाले।।
नु राडु बाले छोल्यो जोङ्गोर
आन ता रूज़ा डाबरड़ी थोईया।।
ऊ पाईं तैसु छाड़ो मुसु बैंडी शैदो
दो शौङ्-शौङ् बन्ना बाल्यो ज़िबानदैन
बाल्योश ज़िबानदैन डोम्बोरुमाला जुरैयो
डोम्बोरू माला जुरैयो शुओ राननु तास

उपरोक्त गीत किन्नौर के साङ्ला गांव उख्याङ् (फूलों के त्यौहार) से सम्बन्धित है। यह त्यौहार बीस बादो (4-5) सितम्बर को साङ्ला गांव में बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। इस गीत में बताया गया है कि साङला गांव के तीनों देवता ज्येष्ठ देवता बौरिङ, नागेस, मझले नागेस, छोटे नागेस एवं चासङ् गांव के याकेस नारेणस तथा रोड़ के जाख देवता कंडे बोनाशाकर नामक स्थान पर एकत्रित हुए हैं, जहाँ पर मानव बलि से लेकर जानवर की बलि दी जाती थी (परन्तु आधुनिक समय में यह प्रथा समाप्त हो गई है। जिसमें केवल बकरी की बलि स्वीकार की गई है। बीस बादो से एक दिन पहले राज के चारेस द्वारा फूल लाने की घोषणा की गई। यह फूल ऊँचे पर्वत स लाया जाता है। पूरी तैयारी के साथ नहा धोकर कुछ लड़के जाते हैं। ऊँचे पर्वत से ब्रह्म कमल, खास कोटे पाऊ (सबसे सुगन्धित फूल) चीसे काचङ नामक फूल एकत्रित करके लाते हैं। इन फूलों को लाने के लिए ये आधी रात को घर से निकलते हैं और मुसु बैंडी (घास का नाम) स बांधते हैं तथा जिबादैन नामक स्थान पर एक रात रूककर इन फूलों की माला तैयार करते हैं और अगले दिन ग्राम देवताओं को अर्पित करते है।

दीवाल गीथाङ् (दीवाली गीत)

गीली गो होना हायाबो होना
बाना उपजा ता येनलयो निरबौनिङ्।।
नीर बौनिङ ता दोली डामाकी बाज्यो
नीर बौनिङ ता दोली डामाको बाज्यो
नीर बौनिङ बुखनी जारिका बाज़्यो।।
नीर बौनिङ काली बाज्यो
नीर बौनिङ बानी बाज़्यो।।
जापना समुच्याज्ञोश उबिसाउँना
उबिसा डैना उल्योशा।।
रिङ्-रिङ् बन्ना ता जोगरी बलिङ चो
रिङ्-रिङ् बन्ना ता ज्ञाल्सा खोना रामपुर।।
ज्ञाल्सा खोना रामपुर युवा बज़ारिस नैस
युवा बज़ारिस नैस थोवा बाजारिस लो।।
थङ को ख्यामा ता इ तेज़ो दरबार
दो तेज़ो दरबारी द्रमल्यो शिरकौटे (कौठी)।।
द्रमल्यासे शिरकोटे खोजङ रङ् ज़ाखङ्
जाखङ् शिरकोटु कोमो ज़ीमा माई देवता।।
कीसी ता थोमेज़ाईं जी मामाई देवता

गिन्याम मा हानज्ञिश मामाई देवता
गिन्याल मा हानज्ञिश जु राकासु कारिङ्
गिनयाल मा हानज्ञिश रोल्यो रातिङ्।।
खोजङ् शिरकोटो जी लंगुरा वीरा
कीसी मा थोम्यांई जी लंगुरा वीरा।।
कीसी मा गिन्याईं जु राकासु कारिङ्जा
पना सुन च्याज्ञौश ऊबीसा दैना।।
रीङ्-रोङ् बन्ना ताणेऽया सौरानङ
ठांडयो सौरानङ् इ द्रमल्यो शिरकोटे।।
ठांडयो सौरानङ् जाखङ् रङ् खोजङ्
जाखङ् शिरकोटुकोमो जी भीमांकाली।।
खोजङ् शिरकोटुकोमो जी लंगुरा बीरा
कीसी मा थोम्याई जी लंगुरा वीरा।।
कीसी मा गिन्यांई जु राकासु कारिङ्
रीङ्-रीङ् बन्नाता उल्योश किन्नौरिङ्।।
उल्योश किन्नौरिङ् गंडे ना कांडे
गंउे न कांडे जी देवी माता।
कीसी मा थोम्यांई जी देवी माता?
कीसी मा थोम्याई जु राकासु कारिङ्।।
कीसी मा थोम्याई गिन्याईं जु रोल्यो रातिङ
रीङ्-रीङ् बन्ना ता जाखुरै यो ग्रौस-नाम।।
कीसी मा थोम्यांई जी ग्रौस मोनशिरस
कीसी मा गिन्यांई जु राकासु कारिङ्।।
कीसी मा गिन्यांई जु रोल्यो रातिङ।
रीङ्-रीङ् बन्ना ता सीला के नाले
सीला के नाले मालौन खौना के नाले।।
कीसी मा थोम्यांई जी उषा माता जी
कीसी मा गिन्यांई जु राकासु करिङ्
कीसी मा गिन्यांई जु आधौ रातिङ्।।
उबो आओ ता बाड्त ना जाङ्त्
वाङतू ना जाडतू इ तैज्ञो जाङ् छाम।।
दो ते ज्ञोजाङ् छाम हायसी बोनयाशित्
लानाशित् अंग्रेज नामङ् महाराज।।
जापना सुनच्याज्ञोश नङ् साङला या जङ्
छोटो बानो ता नङ् सालो दैना खोना चो पाडे
कीसी योम्यांज्ञोंई जी शिशिरिङ् नागेस।।
बोडो बानो ता जङ् साला दैना
ऊबी आओ ता सापनी बालिङचो।।
कीसी मा थोम्याज्ञोंई जी पूनङ् नारेणस
कीसी मा मिन्याज्ञोंई जु राकासुकारिङ्।।
कीसी मा मिन्याज्ञोंई जु आधो रातिङ्
रीङ्-रीङ् बन्ना ता सुनयो सापनी।
सुन्यो सापनी जी पीरयो नागेस
कोसी माथोम्याज्ञोंई जी पीरयोनागेस।।
कीसी मा गिन्याज्ञोंई जु राकासु कारिङ्
कीसी मा गिन्याज्ञोंई जु आधो रातिङ्।
रीड-रीङ बन्ना ता ब्रेशाटु ब्रुए
कीसी मा थोम्यांई जी दुलिङ् नागेस।।
कीसी मा गिन्याज्ञोंई जु राकासु कारिङ्
कीसी मा गिन्याज्ञोंई जु आधो रातिङ्।।
रोङ्-रीङ् बन्ना ता खो नाचो चासङ्
कीसी मा थोम्याईं जी याकेस नारेणस।।
रीङ्-रीङ् बन्ना चुरियु दैना कामरू
कीसी मा थोम्यांई चुरिय दैन कीमशु।।
कीसी मा थोम्यांई जु राकासु कारिङ्
कीसी मा थोम्यांई जु आधो रातिङ्।।
परगी पोल्याज्ञोश योवची लो मैदाना
मैदानो साङला यैन-दैन लोलारिङ-सांडला।।
कीसी थोम्यांज्ञोंई जी बैरिङ् नागेस
कीसी थोम्यांज्ञोई जु राकासु कारिङ्।।
जु राकासु कारिङ् रोल्यो रातिङो
कीता गुप्ती योटयो जोल्यो प्रौप्ती
दोम्या तोचिज्ञोश पांच्यो प्रौप्ती।।
दोम्या तोचिज्ञोश पांच्यो जैंठेरी
दोम्या तोचिज्ञोश सोमान खोगलिङ्
नीरांई दुरे से बागे।।
याली सयानो से यानो।।
याली सयानो से पानचो जैठेरी
याली सयानो से माली से माथा।।
दुयो ठ मादुई गैल ज्ञालु मुंडयाल

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.016

दुयो ठ मादुई गुदो प्रौशाले (पंचधातु माला)।।
दुयो ठ मादुई गुगे ज़ोम्बा
दुयो ठ मादुई गुई गुर पागुरी।।
दुयो ठ मादुई जौरी से चोगा

यह गीत किन्नौर के सांला गांव के दीवाल त्यौहार से सम्बन्धित है। यहाँ पर दीवाल (दीवाली का त्यौहार) दिसम्बर माह में मनाया जाता है। किन्नौर में दीवाली के त्यौहार को दीवाल कहा जाता है। इस गीत में बताया गया है कि प्राचीन समय में नाग की तरह दिखने वाला आदिम जिसे पूरे किन्नौर में आतंक मचाया था, इसके आतंक को किन्नौर के किसी भी देवी-देवताओं द्वारा शांत नहीं किया गया। अंत में सांडला गांव के बैरिङ नागेस द्वारा इसके आतंक पर विजय प्राप्त की गई।

धर्मगाथा सम्बन्धी गीत

किन्नौर में धर्मगाथा सम्बन्धी गीतों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। धर्म गाथा सम्बन्धी गीतों में सर्वप्रथम 'साङ् गीथ साङ् यानि प्रात: 'गीथङ' गीत प्रात:काल या ब्रह्ममुहूर्त में गाया जाने वाला गीत जिसे श्साङ् गीथ कहते हैं इस प्रकार है-

उदगम स्थान—किन्नौर

लोकभाषा—हामस्काद (मूल किन्नौरी)

योनाले बेले ली बे होना, हायाबे ले होना।
योनाले दंगोल्यो दङा शौड् प शीड् पराग।
योनाले सारयो बासो आसीचे तीथाङ्।
योनाले सारयो बासो
ईशुरू थाङकाङ्। योनाले बासे कोमो
यागा से ब्रेमे।
वोनाले की गोटया माइक्योंई ईशुरू थाङ्काङ्।
योनाले की सी लानज़ोंई ब्रह्म-विष्णु।
योनाले गोटयो था चालरांई जु भौगानु लीला।
योनाले फुलो नीरांई शुम तालु लामठु।
योनाले शैदो नीतिश शैशालु कान।
योनाले सेवाङ् कोचाङ् कुन्ता देवीयु आधो रातिङ्।
योनाल चुला माशी गोबरा चुद्धी।
योनाले काम ले लाडु गोबर। योनाले
फोशा फाशी पादुलो जुल्स। योनाले
आशी टानडु बेरङ्। योनाले आयी ता
मा साङ् जु आधो रातिङ्। योनाले
साङ्सी नीतो आनु रीताङ् सी।
योनाले कुंता देवी धुपाङ् शेरंई चाङ्कुम मोलिङो।
यानाले कुन्ता देवीस लोतोश हो ग सेवाङ्
बीतोक, गुरूजीऊ सेवाङ्। योनाले ग सेवाङ्
लानतोक गुरूजीऊ सेवाङ। योनाले गुरूजीस
लोतोश हो आसेवाङ् कोचाङ। योनाले
युम रातिडु बेरङ् ती करम ज्ञातो।
योनाले ऊ थोम ज्ञातो ऊ प्याचिस माजास तङ्।
योनाले ती करम बीज्ञोश हो आलेस पाठु रङ्।
योनाले तीकरम बेरङ् हो फ्रचा फ्राची।
योनाले बीसमोन्ती पोरो।
योनाले ऊ करम, बीज्ञो गुई राडो कोमो
योनाले दे लोन्यो बेरङ् थूचाला शोङा
यूने ता जरज्ञोश। योनाले बुल-बुली
दाखेनङ् पाने माङ, माङ् ली फीज्ञोश गुई
राङो कोमो। योनाले गुई डोङ्ङ्गरू बाले
योनाले ढूँढदो लागो सारे मोलडुडो ढूँढदो लागो।
योनाले सारेया मलडोखङ् ठाकुरे,
गुदो गरु रङ्।
योनाले आरतस मा तायौँ।
योनाले नीङ् माताच हो यूने आरतस।
योनाले बूला छीली कुन्ता देवी रङ्।
योनाले हामची हाचिज्ञोश मालडोङ् पयाचो।

भावार्थ

यह गीत एक प्राचीन गीत है जो कि प्रात: ब्रह्ममुहूर्त में गाया जाता है। इस गीत के बोल

हामस्कद (मूल किन्नौरी) में है। देवताओं के लोक में भीतर पवित्र स्थान में ईश्वर का वास है ये स्थान श्रेष्ठ स्थलों में से है। ब्रह्मा विष्णु आप श्रेष्ठ हैं क्योंकि आपने ही इस सृष्टि की रचना की है। इस गीत में कुन्ती के कार्य की कठिनता को भी दर्शाया गया है किस प्रकार उसे गुरू की सेवा के लिए विभिन्न कठिनाई से गुजरना पड़ता है तथा अन्त में वह सफल होती है साथ ही सूर्य देवता का वरदान भी प्राप्त होता है।

साङ् गीथङ्

धा	धिण	टाँटाँ	धा	धिण	टाँटाँ	धा	धिण	टाँटाँ	धा	कडाँ	धा
म	[न]प	रेऽ	स	मऽ	सऽ	स	पऽ	सऽ	स	सऽ	म
यो	ऽ	नाऽ	ले	गोङ	लीउन	गो	ऽऽ	डोऽ	ना	ऽऽ	से
प	मऽ	रेऽ	स	मऽ	सऽ	स	मऽ	मऽ	म	म	म
हा	याऽ	बेऽ	बे	लेऽ	होऽ	ऽ	नाऽ	लऽ	गो	लीऽ	गो
x			2			3			4		5

यह लोकगीत 12 मात्रा की ताल में है। इस गीत में सारंग के स्वरों का प्रयोग तो है परन्तु निषाद शुद्ध लगने के कारण हम इसे सारंग के प्रकारों की श्रेणी में नहीं रखेंगे, तो यह केवल एक लोकधुन है।

रामायण गीत

उद्गम स्थान—अयोध्या

लोकभाषा/गीत के बोल—हामस्काद (मूल किन्नौरी)

बेली बे होना हायाबे होना।
दंङ् गोल्यो दङ् शौङ् अयोध्यो नगरी कोमो।
अयोध्या नगरो कोमो राजा हाता दीशा।
राजा ता लोन्ना आने दोशरथ।
राजा दोशरथ आन्यो शुमल्यो रानी।
शुमल्यो रानी नामङ् ठ दा दुज्ञो नामङ् ता
लोन्ना रामा जेशमङ् से रानीऊ कौशल्या,
माजङ से रानीऊ सुमित्रा, कोनसङ् से कैकयी रानी।
जैशमङ् रानीस लोतोश राजा
दोशरथ गोदी चु मायचा हाले।
राजा दोशरथ गुरू पोचो बीज्ञोश डुङ्डु जालो।
डुङ्डु जालो महाराजिस गुरू पङ् लोतोश।
गुरूस लोतोश तीश ऋषि कुरई होम जोग लानते
होम जोग लानीमु बेरङ् आन्यो शुमल्यो
रानीऊ गुरू मौन्त्र रानज्ञो।
गोदी चु बोरयाज्ञोश।
जैशमाङ् से रानीऊ ता लोन्ना
टीका राम लक्ष्मण आई निश रानीऊ
ता लोना भरत शत्रुघ्न।
ककेयी रानीस लोतोश महाराज दोशरथ रामु बोनवास शैई।
फाफा कुटोनु लानशिद राम लक्ष्मण बोनबास।

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.016

भावार्थ

यह गीत रामायण सम्बन्धी है गीत के बोल मूल किन्नौरी में है गीत में राजा दशरथ के पुत्रों का जन्म, भरत का राज्याभिषेक राम वनवास के विषय मे सम्पूर्ण ब्यौरा दिया गया है।

बौद्ध धर्म सम्बन्धी गीत

किन्नौर हिन्दु तथा बौद्ध धर्म का संगम स्थल है किन्नौर के निवासो जहाँ एक ओर हिन्दुधर्मी हैं वहीं दूसरी ओर बौद्धधर्म इनके धार्मिक विश्वास को अछूता नहीं रहा है। यहाँ के लोगों के लिए जो स्थान स्थानीय देवता के लिए है वही स्थान भगवान बुद्ध के लिए है। इनका सुन्दर उदाहरण हम गांव में देख सकते हैं जहाँ एक ओर देवता का मंदिर है तो दूसरी ओर बौद्ध मठ व मंदिर है। इसलिए यहाँ बौद्ध धर्म के अनुयायी यानि रिम्बोछे लोचा (लोचा रिम्बोछ) सम्बन्धी गीत इस प्रकार है-

उदगम स्थल—रिब्बा

लोकभाषा—हामस्काद (मूल किन्नौरी)

बेली वे होना हायाचे होना।
दङ् गोल्यो दङ् शौङ उसाङ् डासाङो कोमो।
लोचा रिम्बोछे याबमिगु तैयारी।
याबमिगु छोद माए।
याबयाबचि बीजोश नया हौरी दाङ्
शीरमोलिङ बाले शीङ् पोचिमे बीज्ञोश लाबरङ्
बोन्यामो।
शीङ पोचिम बासक्याङ् क्रीगारी पोचिज्ञोश।
क्रीगारी ता काज्ञोश लाबरूआ क्रोगार।
बोनयाम ली बोनयाज्ञोश लोबरूआ क्रीगारस इ तेज्ञो लागङ्।
नड्रयाओं रीदाङ् माजङ् सानताड़ो।
गुई निजागो रिनमे दुमसीआर लानो।
दुमसी आर लान
लान ता उदुम ता शैज्ञो।
हातु नाटुआ बदा गुद मल-मल शैते बाङ् थाब-थाब रानते।
दे लोन्यो बेरङ् यैन बोरेसु गोएनेस लोचा पङ् शैसज्ञो।
गुई निजागु रिन में हाले मा शैसज्ञोई लोचा रिम्बोछे पङ्।
लोचा रिम्बोछे पङ् शैसिम ता
शैसज्ञो गुई निजाऊ रितमे।
ई गुदो दुपाङ् आई
गुदो कोरयाङ् रङ् शिरमोलिङ् बालुदैन।
लोचा रिम्बोछे शुङिम ली शुङ्ज्ञोश
रामनैस मोन्याज्ञोश सय दयारो राय रातिङ्।

भावार्थ

यह गीत लोचा रिम्बोछे (रत्नबद्र) बौद्ध धर्म के अवतारी लामा से सम्बन्धित है। इस गीत के बोल मूल किन्नौरी में है। 'आसङ् डासक' नामक बौद्ध मंदिर से लोचा रिम्बोछे रिब्बा नामक गांव गए जहाँ उन्होंने लाबरङ (बौद्ध मंदिर) का निर्माण करवाया। गांव वालों को लगा कि के आवारा जादूगर कौन आया है परन्तु बोरेस खानदान की स्त्री ने लोचा को पहचान लिया और कहा कि ये महान लोचा रिम्बोछे हैं तभी गांव के लोचा से क्षमा मांगी तथा लोचा रिम्बोछे ने आशीर्वाद दिया। तब से आज तक गांव के इस मंदिर में हर वर्ष रामनैस त्यौहार मनाया जाता है जो आठ दिन तक चलता है।

बुद्ध भगवान सम्बन्धी गीत

रचनाकार—मायुम नेगी

गीतकाल—1990 के आसपास

लोकभाषा—हामस्काद (मूल किन्नौरी)

दो शौङ्-शौङ् बीमा कपिल वस्तु देसो कोमो।
कपिल वस्तु देसो राजा हात तोशा
राजा ता लोन्ना शुदोधन, रानी ता लोन्ना महामाया।

राजा शुदोधन छाङ् माइच रीङ्गो
छाङ् माच रीडो अश्व यज्ञ लानो।
दे लोन्यो बेरङ् आकाशवाणीस बात्याज्ञोश शुपा माङ्गो
बतिश ठोक डेयङ्ख्या हाथी।
रानी महामाया बेरसी शुम गुर कोरा लानज्ञोश।
रानी महामाया जालनाची यानाचिस दिलनाची व्याङ्जोश।
महामायास लोतोश राजाशुदोधन
जु दामकीयु फोगु आङ् माडो बदा।
आङ कोरा लानचे महामायास लोतोश ग
मैटङ् बीतोक महामाया मैटङ् नेपालु कोमो।
रानी महामाया बीमीगु बेरङ् लुम्बिनी
बगीचो बट बोठडु चुमचुम बेटा जायाजोश
आने बुद्ध भगवान।
बुद्ध भोगानु जोरमीगु बेरडू तिश गोम्पा युनज्ञोश
तिश गोम्फा युठङ् तिश कमलु ऊ।

भावार्थ

यह गीत बुद्ध भगवान की उत्पत्ति यानि जन्म से सम्बन्धित है। इस गीत में बताया गया है कि 'कपिल वस्तु' नामक स्थान के राजा 'शुदोध न' तथा रानी महामाया थी। उनके कोई पुत्र नहीं था। एक रात रानी 'महामाया' के स्वप्न में श्वेत हाथी आया तथा उसने तीन बार रानी की परिक्रमा की। प्रात:काल होते ही रानी ने इस स्वप्न के बारे में राजा को बताया राजा ने शुभसंकेत मानकर 'अश्वमेध' यज्ञ करवाया। इस यज्ञ के फलस्वरूप ही रानी महामाया ने गौतम बुद्ध को लुम्बिनी वट वृक्ष के नीचे जन्म दिया।

निष्कर्ष :-

किन्नौर भौगोलिक दृष्टि से पर्वतीय दुर्गम क्षेत्र होते हुए भी सांगीतिक दृष्टि से यह सुगम व समृद्ध है। यहाँ के लोकगीतों के विषय एक ओर प्रेमी-प्रेमिका का वार्तालाप एवं स्त्री सौंदर्य से जुड़ा है वहीं दूसरी ओर प्रकृति तथा रीति रिवाज़ सम्बन्धी सुंदर एवं सार्थक गीत भी मिलते हैं। ये लोकगीत अधिकतर शास्त्रीय रागों पर आधारित है। प्रत्येक क्षेत्र क लोकगीतों में किन्हीं विशेष रागों की झलक दिखाई देती है। किन्नौरी लोकगीतों, पहाड़ी, दुर्गा, भूपाली, सारंग और कहीं-कहीं जोग आदि रागों पर आधारित होते हैं।

संदर्भ सूची

1. Cunnighm J-D- (1844) Noteson Moorcrafts travel in Ladakh and on General Account of koonawar Asiatic Society of Bengal, Vol- XIII, Page 230
2. Captain A- Gerard (1841), Account of Koonawar, Gidwani Indus Publishing Company, New Delhi, Page 1
3. Fraser Ballic James (1820), Journal of a Tour through part of the Snowy Range of the Himalayan Mountains, Page 263
4. शर्मा वंशीराम (1976), किन्नर लोकसाहित्य ललित प्रकाशन, बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश, 1976, पृष्ठ 3
5. सांकृत्यायन, राहुल (2006), किताब महल, इलाहाबाद, पृष्ठ 291
6. ठाकुर विद्याचंद (1995) किन्नर से बना किन्नौर लेख सोमसी पत्रिका हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, पृष्ठ 7, 8
7. नेगी, डॉ० सरिता (2020) किन्नौर के विभिन्न लोकभाषाओं में गाए जाने वाले लोकगीतों का सांगीतिक विवेचन, नैतिक प्रकाशन, गौतम बुद्ध नगर, उ०प्र०, पृ० 83, 85, 97, 103
8. साक्षात्कार

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.017

सरोद वादन की परंपरा में महिला कलाकारों का योगदान: एक अध्ययन

हरिप्रिया*, डॉ. रीता दास**

सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत की वादन परंपरा में सरोद का महत्वपूर्ण स्थान है, किंतु ऐतिहासिक रूप से यह वाय मुख्यत: पुरुष कलाकारों के वर्चस्व में रहा है। सामाजिक-सांस्कृतिक सीमाओं तथा सरोद की तकनीकी जटिलता के कारण महिला कलाकारों का इस क्षेत्र में प्रवेश अपेक्षाकृत विलंब से हुआ। सरोद वादन की परंपरा तथा भारतीय संगीत में महिला कलाकारों के योगदान पर अनेक अध्ययन उपलब्ध हैं, किन्तु विशेष रूप से "सरोद वादन में महिला कलाकारों का योगदान पर अध्ययन अपेक्षाकृत अल्प दिखाई देता है। 20वीं शताब्दी में शरण रानी जैसी कलाकारों ने इस धारणा को तोड़ते हुए सरोद वादन में महिलाओं की सशक्त उपस्थिति स्थापित की। उनके पश्चात अनेक महिला सरोदवादकों ने अपनी साधना, वादन-शैली और रचनात्मक नवाचार के माध्यम से इस परंपरा को समृद्ध किया। महिला कलाकारों ने सामाजिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक बाधाओं के बावजूद सरोद जैसे तकनीकी रूप से कठिन वाद्य में अपनी पहचान बनाई। उनका संघर्ष, साधना और रचनात्मक योगदान न केवल संगीतशास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में भी विचारणीय है। जिन महिला कलाकारों ने सरोद वादन को अपनाया, उन्होंने न केवल अपनी कला से परंपरा को समृद्ध किया, बल्कि वादन-शैली में नई संवेदनशीलता और दृष्टि भी जोड़ी।

मुख्य शब्द : *भारतीय शास्त्रीय संगीत, महिला सरोदवादक, सरोद वादन परंपरा, सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, लैंगिक समानता, नवाचार*

शोध प्रविधि:

इस लेख में द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है, जिनमें संगीत संबंधी पुस्तके, शोध पत्रिकाएँ, प्रमुख महिला सरोदवादकों की श्रव्य दृश्य प्रस्तुतियों, जीवनियों, प्रकाशित शोध-पत्रों, समाचार-पत्रों तथा प्रामाणिक वेबसाइट शामिल हैं।

सरोद उत्तर भारतीय (हिंदुस्तानी) शास्त्रीय संगीत का एक प्रमुख एवं अत्यंत प्रभावशाली तार-वाद्य है। अपनी गंभीर, गूंजदार और ओजस्वी ध्वनि के कारण यह वाद्य शास्त्रीय संगीत में विशेष स्थान रखता है। सरोद का विकास ऐतिहासिक रूप से अफगानी अथवा मध्य एशियाई रबाब से माना जाता है, जिसे भारत में आकर भारतीय

शोधार्थी संगीत विभाग, जे. डी. वीमेंस कॉलेज, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना
निर्देशिका (संगीत विभागाध्यक्ष), जे. डी. वीमेन्स कॉलेज, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

रागदारी प्रणाली के अनुरूप ढाला गया। "सरोद" शब्द फारसी मूल का है, जिसका सामान्य अर्थ संगीत, मधुर ध्वनि अथवा आनंद से जोड़ा जाता है। यह नाम स्वयं इस वाद्य की भावात्मक और संगीतमय प्रकृति को दर्शाता है। अठारहवीं शताब्दी में मोहम्मद हाशमी बांगश और उनके वंशजों ने रबाब में महत्वपूर्ण तकनीकी परिवर्तन कर आधुनिक सरोद का स्वरूप विकसित किया। इस प्रक्रिया में लकड़ी के स्थान पर धातु का चिकना फिंगरबोर्ड अपनाया गया तथा तारों की संख्या बढ़ाई गई। आधुनिक सरोद में सामान्यत: 17 से 25 तारें होती हैं। इसे नारियल के खोल से बने एक छोटे टुकड़े 'जवा' से बजाया जाता है, जो दो उंगलियों और अंगूठे में पकड़ा जाता है, जिससे स्वर में स्पष्टता, गंभीरता और तीव्रता उत्पन्न होती है। यही विशेषता सरोद को वीणा और सितार से भिन्न बनाती है। सरोद की मींड (स्वरों को खींचने की क्षमता) अत्यंत गहरी और प्रभावशाली होती है, जो इसे भावात्मक अभिव्यक्ति के लिए विशेष रूप से उपयुक्त बनाती है। आलाप, जोर-झाला और गत में सरोद की अभिव्यक्ति शक्ति अत्यंत प्रभावशाली मानी जाती है। परंपरागत रूप से सरोद की ध्वनि को गंभीर, ओजपूर्ण और वीर रस प्रधान माना गया है। इसी कारण लंबे समय तक यह धारणा बनी रही कि यह वाद्य केवल पुरुष कलाकारों के लिए उपयुक्त है। किंतु बीसवीं शताब्दी में शरण रानी जैसी महिला सरोद वादिकाओं ने इस धारणा को चुनौती दी। उन्होंने यह सिद्ध किया कि सरोद की तकनीकी जटिलता और कठोर साधना के बावजूद महिलाएँ इसमें उच्च कोटि की साधना और सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति कर सकती हैं।

सरोद की परंपरा विभिन्न घरानों सेनिया बांगश, गौर, शाहजहाँपुर तथा विशेष रूप से मैहर घराने के माध्यम से विकसित हुई। मैहर घराने के उस्ताद अलाउद्दीन खान और अली अकबर खान ने सरोद को अंतरराष्ट्रीय मंच प्रदान किया। इसी परंपरा में प्रशिक्षित महिला कलाकारों ने सरोद वादन में भावनात्मक गहराई, सौम्यता और संवेदनशीलता जोड़ी। अन्नपूर्णा देवी के अनुशासन, शरण रानी की साधना तथा समकालीन महिला कलाकारों की प्रस्तुति-शैली ने सरोद वादन को नई दृष्टि प्रदान की।

प्रमुख महिला सरोद वादिकाएँ एवं उनका योगदान

भारतीय शास्त्रीय संगीत में सरोद को परंपरागत रूप से पुरुषों का वाय माना जाता रहा है, किंतु कुछ विशिष्ट महिला सरोद वादिकाओं ने कठिन साधना, अद्भुत प्रतिभा और दृढ़ संकल्प के बल पर इस धारणा को बदल दिया। इन कलाकारों ने न केवल स्वयं अपनी पहचान स्थापित की, बल्कि भविष्य की महिला कलाकारों के लिए भी नए मार्ग प्रशस्त किए।

शरण रानी बैकलीवाल, जिन्हें "सरोद रानी" कहा जाता है, भारत की पहली प्रमुख महिला सरोद वादिका मानी जाती हैं। इनका जन्म 9 अप्रैल 1929 को पुरानी दिल्ली में एक रूढ़िवादी हिंदू व्यापारी और शिक्षाविद परिवार में हुई। इन्होंने बी.ए. (एम.ए.) की पढ़ाई दिल्ली विश्वविद्यालय और इंद्रप्रस्थ महिला कॉलेज से 1953 में पूरी की। इन्हें सरोद की शिक्षा उस्ताद अला उद्दीन खान और उनके पुत्र अली अकबर खान से मिली। ये दोनों ही मैहर (सेनिया) घराने के संस्थापक व प्रमुख कलाकार थे। यह सात दशकों तक मंच पर सरोद प्रस्तुत करने वाली भारत की पहली महिला वादिका थीं। इन्हें पंडित जवाहरलाल नेहरू ने "Cultural Ambassador of India" कहा। ये यूनेस्को व अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस की रिकॉर्ड कंपनियों

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.017

के लिए प्रथम महिला भारतीय वादिका बनीं। इन्होंने गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से नि:शुल्क शिक्षण किया, और कई शिष्य उनके घर में नि:शुल्क रहे। उन्हें पद्मश्री, पद्मभूषण और संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार सहित अनेक प्रतिष्ठित सम्मान प्राप्त हुए। उनके द्वारा लिखी पुस्तक The Divine Sarod: Its Origin, Antiquity and Development (1992 और 2008 संस्करण) सरोद के इतिहास पर एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इन्हें पद्मश्री (1968), पद्मभूषण (2000), संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (1986), साहित्य कला परिषद, राजीव गांधी राष्ट्रीय उत्कृष्टता पुरस्कार, और अन्य कई पुरस्कार प्राप्त हुए।

अन्नपूर्णा देवी, यद्यपि मुख्यत: सुरबहार वादिका थीं, परंतु मैहर घराने में सरोद सहित वाद्य संगीत के गहन अध्ययन के लिए प्रसिद्ध रहीं। उन्होंने राग की शुद्धता, अनुशासन और गहराई पर विशेष बल दिया तथा अनेक सरोद वादकों को प्रारंभिक मार्गदर्शन प्रदान किया। वाय संगीत के शुद्ध अध्ययन, राग की गहराई और अनुशासन के लिए प्रेरणा का स्रोत बनीं।

ज़रीन दारूवाला शर्मा ने शास्त्रीय और फिल्म संगीत दोनों क्षेत्रों में सरोद को विशिष्ट पहचान दिलाई। इनका जन्म 9 अक्टूबर 1946 को पारसी परिवार में हुआ। बचपन से संगीत-प्रवीण, चार वर्ष की उम्र में हारमोनियम बजाने लगीं और छह वर्ष की उम्र में 'Sur-Singar Sansad' मंच पर प्रस्तुति दी। उन्होंने आगरा घराने की रागदारी और गायकी के गुण सरोद में समाहित किए। 1964 में वे चित्रलेखा फिल्म के लिए सरोद बजाकर फिल्मों में अपने करियर की शुरुआत की। उन्होंने बॉलीवुड में सरोद की शुरुआत की और संगीत निर्देशक रोशन, रविंद्र जैन आदि के साथ काम किया। उनके सरोद में गायकी और तंत्र शैली का खूबसूरत मिश्रण था। उन्होंने रागों को भावपूर्णता और संगीतमयता से प्रस्तुत किया। संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, दादा साहेब फाल्के पुरस्कार, और महाराष्ट्र गौरव पुरस्कार उन्हें मनोनीत किये गए। उनके वादन में गायकी और तंत्र शैली का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

डॉ. रीता दास बिहार की पहली महिला सरोद वादिका हैं। उन्होंने कम आयु से ही सरोद की शिक्षा प्रारंभ की और मैहर सेनिया घराने की परंपरा में उच्च प्रशिक्षण प्राप्त किया, उन्होंने सरोद पर शोध कार्य किया। एक शिक्षिका, शोधकर्ता और मंचीय कलाकार के रूप में उनका योगदान उल्लेखनीय है। दूरदर्शन और आकाशवाणी की 'ए' ग्रेड कलाकार के रूप में उनकी प्रस्तुतियों ने सरोद वादन को व्यापक मंच प्रदान किया। इन्होंने इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ से संगीत में मास्टर्स, दिल्ली विश्वविद्यालय से एम. फिल और सरोद पर डॉक्टरेट पूरी की। इन्होंने दूरदर्शन और ए.आई.आर., दिल्ली में प्रदर्शन किया। देश भर में प्रमुख मंच जैसे स्वर साधना सम्मेलन (मुंबई), भारतीय संस्कृति संस्थान (कोलकाता), बोध महोत्सव (बोधगया), शिमोगा महोत्सव (कर्नाटक), सप्तक संगीत सम्मेलन (दरभंगा), सद्भावना सम्मेलन (पटना), आदि में सरोद प्रस्तुति दी। इंडिया हैबिटैट सेंटर, दिल्ली से नाद श्री (Nad Shree) पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

अनुपमा भगवती (असम) और अनुराधा पाटिल जैसी समकालीन कलाकारों ने पारंपरिक रागदारी के साथ नई प्रस्तुति शैलियों को विकसित किया तथा प्रशिक्षण के माध्यम से नई पीढ़ी को प्रेरित किया। आज सरोद सिस्टर्स (त्रोइली और मोइसीली दत्ता), चन्द्रिमा मजूमदार, राजरूपा चौधरी और देबस्मिता भट्टाचार्य जैसी कलाकार

इस परंपरा को आगे बढ़ा रही हैं। महिला सरोद वादिकाओं ने यह सिद्ध किया है कि सरोद जैसे जटिल वाय में भी महिलाएँ उत्कृष्टता प्राप्त कर सकती हैं। उनका योगदान भारतीय शास्त्रीय वाद्य संगीत को समृद्ध करने के साथ-साथ भावी पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्रोत बना है। इन कलाकारों ने दिखाया कि साधना, प्रतिभा और धैर्य से किसी भी परंपरा में नई दिशा दी जा सकती है। गुरु-शिष्य परंपरा में दीर्घकालीन प्रशिक्षण प्राप्त करना उनके लिए सहज नहीं था। इसके बावजूद उन्होंने कठोर साधना और निरंतर अभ्यास से अपनी पहचान बनाई। उन्होंने यह सिद्ध किया कि वाय संगीत किसी लिंग-विशेष का नहीं, बल्कि प्रतिभा, अनुशासन और संवेदनशीलता का क्षेत्र है।

भारतीय वाद्य परम्परा में महिला सरोदवादकों की सामाजिक एवं सांगीतिक चुनौतियाँ भारतीय शास्त्रीय संगीत में सरोद वादन को परंपरागत रूप से पुरुषों का क्षेत्र माना गया है। इस कारण महिला सरोदवादकों को अपनी पहचान स्थापित करने के लिए अनेक सामाजिक और सांगीतिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। समाज और परिवार का संकोच, सार्वजनिक मंचों पर सीमित अवसर तथा संगीत को केवल शौक मानने की मानसिकता महिलाओं के मार्ग में प्रमुख बाधाएँ रहीं। गुरु-शिष्य परम्परा में दीर्घकालीन प्रशिक्षण प्राप्त करना और घरानों में गंभीर स्वीकृति पाना भी उनके लिए कठिन रहा। सांगीतिक दृष्टि से सरोद की तकनीकी जटिलता, कठोर अभ्यास, स्वर-शुद्धि और भावपूर्णता के संतुलन की चुनौती विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महिलाओं से अपेक्षा की जाती थी कि वे भावप्रधान वादन करें, जबकि तकनीकी दक्षता पर भी कठोर मूल्यांकन होता था। इसके अतिरिक्त महिला कलाकारों की प्रस्तुतियों का सीमित रिकॉर्डिंग और दस्तावेजीकरण होने से उनका योगदान अपेक्षित रूप से सामने नहीं आ पाया। नवाचार करने पर उन्हें आलोचना का भी सामना करना पड़ा।

इन सभी चुनौतियों के बावजूद शरण रानी, अन्नपूर्णा देवी, जरीन दारूवाला, डॉ. रीता दास जैसी कलाकारों ने अपनी साधना, साहस और प्रतिभा से यह सिद्ध किया कि सरोद वादन किसी एक लिंग तक सीमित नहीं है। उनके संघर्षों ने वाद्य संगीत की परंपरा को समृद्ध किया और भविष्य की महिला कलाकारों के लिए नए अवसरों का मार्ग प्रशस्त किया। वर्तमान समय में महिला सरोद वादिकाओं के लिए परिस्थितियाँ पहले की तुलना में अधिक अनुकूल हो रही हैं। अब सरोद वादन में नई पीढ़ी की अनेक कलाकाराएँ सक्रिय हैं और प्रशिक्षण के अवसर घरानों तक सीमित न रहकर संगीत संस्थानों, विश्वविद्यालयों और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म तक विस्तृत हो गए हैं। प्रतिष्ठित संगीत सम्मेलनों, सांस्कृतिक महोत्सवों और युवा उत्सवों में महिला सरोद वादिकाओं को मंच मिलने लगा है। वरिष्ठ महिला सरोद वादिकाएँ नई पीढ़ी को न केवल प्रशिक्षण दे रही हैं बल्कि उन्हें पेशेवर मार्गदर्शन भी दे रही हैं।

- अंतरराष्ट्रीय संगीत महोत्सव, ओनलाइन कॉन्सर्ट और सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रमों के कारण महिला सरोद वादिकाओं को अधिक अवसर मिल सकते हैं। डिजिटल माध्यमों से उनके दुर्लभ प्रदर्शन ऑनलाइन उपलब्ध हो रहे हैं, जिससे वैश्विक स्तर पर उनकी कला का प्रसार संभव हुआ है। वरिष्ठ कलाकारों के अभिलेखों का डिजिटलीकरण तथा महिला वाद्य कलाकारों पर केंद्रित शोध कार्य उनके योगदान को पहचान दिला रहे हैं। भविष्य में वरिष्ठ कलाकारों के मार्गदर्शन, अंतरराष्ट्रीय अवसरों तथा छात्रवृत्ति और प्रोत्साहन योजनाओं के विस्तार से भारतीय सरोद वादन में महिलाओं की भूमिका और अधिक

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.017

सशक्त व प्रभावशाली होने की संभावना है।

निष्कर्ष :

भारतीय शास्त्रीय संगीत में सरोद को लंबे समय तक पुरुष वर्चस्व वाला वाद्य माना गया, किंतु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से अनेक महिला सरोद वादिकाओं ने इस धारणा को बदल दिया। शरण रानी, जरीन दारूवाला, डॉ. रीता दास और राधिका मोहन मोड़त्रा जैसी वरिष्ठ कलाकारों ने सरोद वादन को नई संवेदनशीलता और अभिव्यक्ति दी। वर्तमान में चन्द्रिमा मजूमदार, राजरूपा चौधरी, देबसमिता भट्टाचार्य तथा 'सरोद सिस्टर्स' जैसी युवा कलाकार इस परंपरा को आगे बढ़ा रही हैं। प्रारंभिक काल में सामाजिक पूर्वाग्रहों और मंचीय अवसरों की कमी के बावजूद महिला कलाकारों ने कठिन साधना से अपनी पहचान बनाई। उन्होंने सरोद वादन में सौम्यता, भावनात्मक गहराई और नवाचार जोड़ा। उनके प्रयासों से यह सिद्ध हुआ कि वाद्य संगीत किसी एक लिंग तक सीमित नहीं है। संस्थागत सहयोग, मीडिया के मंच, और वैश्विक संगीत महोत्सवों के माध्यम से इन कलाकारों के लिए अवसर निरंतर बढ़ रहे हैं।

अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भारतीय वाय परंपरा में महिला सरोद वादिकाओं का योगदान न केवल ऐतिहासिक और प्रेरणादायक है, बल्कि इसने आने वाली पीढ़ियों के लिए नए द्वार भी खोले हैं। सरोद वादन के क्षेत्र में अब लिंगभेद की सीमाएँ टूट रही हैं और यह कला शुद्ध साधना, नवाचार और वैश्विक आदान-प्रदान के नए युग में प्रवेश कर रही है।

संदर्भ सूची :

1. भातखंडे, वि. न. (2004). भारतीय संगीत वाद्य परंपरा. लखनऊ भातखंडे संगीत संस्थान।
2. दास, रीता. (2013). सरोद वादन में मैहर घराने की परंपरा नई दिल्ली: ग्रन्थ अकादमी प्रकाशन।
3. महेन्द्र, नीलम बाला. (2011). आधुनिक अंतरराष्ट्रीयकरण में भारतीय शास्त्रीय संगीत की भूमिका. नई दिल्ली: कनिष्क पब्लिकेशन।
4. राधिका, के. टी. पी. (2023) "सरोद सिस्टर्स परंपरा और नवाचार का समन्वय" इंडिया आर्ट रिव्यू।
5. घोष, अविजित. (2012) द ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ़ द 'सरोद' (एक शास्त्रीय संगीत वाय) नई दिल्ली कल्पाज पब्लिकेशन्स।
6. तमसा (2015) सरोद वादिका श्रीमती शरण रानी माथुर बकलीवाल का संगीत में योगदान शोध-प्रबंध, मार्गदर्शक डॉ. शकुंतला नागर, शोधगंगा।
7. सोपाम, रीना. (2025) हस्ताक्षर कला इतिहास में बिहार की महिलाएँ. नई दिल्ली : प्रतिभा प्रतिष्ठान, प्रथम संस्करण।
8. आकाशवाणी अभिलेख विभाग. (2019). महिला सरोद वादिकाओं के प्रसारण अभिलेख. नई दिल्ली : आकाशवाणी।
9. दूरदर्शन. (2017). भारतीय महिला वाय कलाकार विशेष श्रृंखला (वीडियो अभिलेख). नई दिल्ली।
10. डिजिटल स्रोत यूट्यूब एवं अन्य शास्त्रीय संगीत मंचों पर उपलब्ध महिला सरोद वादिकाओं के साक्षात्कार, व्याख्यान एवं मंचीय प्रस्तुतियाँ।

यूट्यूब से इंस्टाग्राम तक : हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के युवा कलाकारों की डिजिटल यात्रा

विजेता शर्मा*, डॉ.अश्विनी कुमार

सारांश

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत भारतीय संस्कृति का एक आधारस्तंभ है। भारतीय संस्कृति की यह धारा गुरु-शिष्य परंपरा एवं प्रत्यक्ष मंचीय प्रस्तुतियों के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संचरित होती रही है। इसी सुदृढ़ परंपरा के आधार पर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत ने समय–समय पर सामाजिक व तकनीकी परिवर्तनों के अनुरूप स्वयं को परिभाषित किया है।

वर्ष 2020 में आई कोरोना महामारी में सामान्य सामाजिक गतिविधियों के डिजिटल मंचों की ओर उन्मुख होते ही हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के कलाकारों ने भी शिक्षण एवं प्रस्तुति के लिए डिजिटल मंचों को अपनाया। यूट्यूब और इंस्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया मंच इस परिवर्तन के प्रमुख साधन बने। यूट्यूब मुख्यत: दीर्घकालिक वीडियो एवं मंचीय प्रस्तुति का माध्यम बना; वहीं इंस्टाग्राम की रील, लाइव सत्र तथा त्वरित संवादात्मक प्रकृति ने युवा वर्ग को आकर्षित किया। यह शोधपत्र हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के युवा कलाकारों की यूट्यूब से इंस्टाग्राम तक की डिजिटल यात्रा का अध्ययन प्रस्तुत करता है।

की वर्ड्स- ● हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत, ● डिजिटल मंच / सोशल मीडिया, ● युवा कलाकार, ● कोरोना महामारी, ● यूट्यूब और इंस्टाग्राम

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत भारतीय संस्कृति का एक आधार स्तंभ है। भारतीय संस्कृति की यह धारा गुरु-शिष्य परंपरा एवं प्रत्यक्ष मंचीय प्रस्तुतियों के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संचरित होती रही है। इसकी शिक्षण-प्रणाली, प्रस्तुतीकरण एवं श्रोता-संवाद क्रमश: मौखिक परंपरा, भौतिक उपस्थिति और आत्मीय संप्रेषण पर आधारित रहे हैं। इसी सुदृढ़ परंपरा के आधार पर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत ने समय–समय पर सामाजिक व तकनीकी परिवर्तनों के अनुरूप स्वयं को परिभाषित किया है तथा आधुनिक युग में भी अपनी मौलिकता को सुरक्षित रखते हुए नवीन संचार माध्यमों एवं तकनीकी संसाधनों को आत्मसात करने की प्रक्रिया में प्रवृत्त हुआ है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जिसकी मानसिक संरचना दूसरों के व्यवहार का अवलोकन करने और उसका अनुकरण करने की प्रवृत्ति से निर्मित होती है। सामाजिक संपर्क तथा संवाद के माध्यम से विचारों एवं मूल्यों का प्रसार सहज रूप से होता रहा है। सोशल मीडिया

*शोधार्थी "महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी, बड़ौदा"

**शोध पर्यवेक्षक व सहलेखक - (एसोसिएट प्रोफेसर "महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी, बड़ौदा")

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.018

मंच इस प्रवृत्ति को एक व्यापक और तीव्र रूप प्रदान करते हैं। इनके माध्यम से लोग न केवल उन व्यक्तियों से जुड़ते हैं जिन्होंने अपने जीवन में विशिष्ट उपलब्धियाँ अर्जित की हैं, बल्कि उनसे प्रेरणा लेकर अपने जीवन-लक्ष्यों की दिशा भी निर्धारित करते हैं।

वर्ष 2020 में आई कोरोना महामारी में सामान्य सामाजिक गतिविधियों के डिजिटल मंचों की ओर उन्मुख होते ही हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के कलाकारों ने भी अपनी परंपरा की निरंतरता सुनिश्चित करने के लिए डिजिटल मंचों को शिक्षण एवं प्रस्तुति का माध्यम बनाया। यूट्यूब से आरंभ होकर इंस्टाग्राम तक की यह डिजिटल यात्रा हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के युवा कलाकारों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन दर्शाती है। प्रारम्भ में जहाँ यूट्यूब कलाकारों के लिए अपनी लाइव प्रस्तुति, रियाज़ वीडियो व ऑनलाइन शिक्षण का प्रमुख मंच बना, वहीं इंस्टाग्राम की त्वरित संवादात्मक प्रकृति ने युवा वर्ग को विशेष रूप से आकर्षित किया। युवा कलाकारों ने इंस्टाग्राम के रील, लाइव सत्र एवं शॉर्ट वीडियो जैसे फीचर्स के माध्यम से श्रोता-सम्पर्क और प्रचार की रणनीतियों में बदलाव किया। इस डिजिटल यात्रा ने युवा कलाकारों व दर्शकों को शास्त्रीय संगीत से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यूट्यूब मुख्यत: दीर्घकालिक वीडियो एवं मंचीय प्रस्तुति के लिए उपयुक्त माध्यम था, वहीं इंस्टाग्राम ने अल्पकालिक वीडियो, रील तथा त्वरित प्रतिक्रिया प्रणाली के माध्यम से युवा कलाकारों को अपने श्रोताओं से तत्काल जुड़ने का अवसर प्रदान किया। इसके परिणामस्वरूप, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति-शैली में भी परिवर्तन देखने को मिला, जिसमें संक्षिप्त व दृश्य-प्रधान संवादात्मक स्वरूप विकसित हुआ। युवा कलाकारों ने राग अंश, तानों तथा रियाज़ की झलकियों को इंस्टाग्राम पर साझा कर शास्त्रीय संगीत को समकालीन डिजिटल संस्कृति से जोड़ने का प्रयास किया। इससे संगीत की प्रस्तुति केवल श्रवण तक सीमित न रहकर एक दृश्यात्मक अनुभव के रूप में विकसित हुई। इस प्रक्रिया ने कलाकारों की डिजिटल पहचान को बढ़ावा देकर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को युवा एवं वैश्विक दर्शक वर्ग तक पहुँचाने में मदद की।

डिजिटल मंचों ने युवा कलाकारों को अपनी एक नई पहचान निर्मित करने का अवसर प्रदान किया। इंस्टाग्राम के माध्यम से कलाकार सीधे अपने श्रोताओं से संवाद करने लगे, जिससे गुरु-शिष्य परंपरा और श्रोता-कलाकार संबंधों के स्वरूप में भी परिवर्तन आया। टिप्पणी, लाइक, शेयर जैसी प्रक्रियाओं ने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को अधिक सहभागी और जनसुलभ बनाया। इस डिजिटल सहभागिता ने युवा वर्ग में शास्त्रीय संगीत के प्रति रुचि उत्पन्न करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सोशल मीडिया के डिजिटल मंचों ने कलाकारों को प्रचार की नई रणनीतियाँ अपनाने के लिए भी प्रेरित किया। पोस्टर, टीज़र, रील, लाइव सेशन के माध्यम से कलाकार अपनी प्रस्तुतियों और शिक्षण गतिविधियों की जानकारी व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचा सके।

डिजिटल मंचों पर लोकप्रियता को प्राथमिकता दिए जाने की प्रवृत्ति ने शास्त्रीय संगीत की गुणवत्ता आधारित मूल्य-व्यवस्था को भी चुनौती दी। लाइक, व्यू और फॉलोअर संख्या के आधार पर कलाकारों की पहचान स्थापित होने लगी, जिसके परिणामस्वरूप कई बार तकनीकी शुद्धता, रागात्मक अनुशासन एवं परंपरागत मर्यादाएँ गौण हो जाती हैं। इससे शास्त्रीय संगीत के मूल सिद्धांतों में क्षरण की

संभावना उत्पन्न हुई। इसके अतिरिक्त गुरु–शिष्य परंपरा की मौलिक संरचना भी डिजिटल माध्यमों के कारण प्रभावित हुई। ऑनलाइन शिक्षण में प्रत्यक्ष सान्निध्य, मौखिक परंपरा का अभाव होने से शिक्षण की गुणवत्ता में कमी देखी जा सकती है। डिजिटल मंचों की दृश्य-प्रधान प्रकृति ने संगीत को एक "प्रदर्शन-प्रधान सामग्री" में भी परिवर्तित किया है, जहाँ कई बार प्रस्तुति की दृश्यात्मक आकर्षणशीलता संगीत की अंतर्निहित साधना से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। इससे शास्त्रीय संगीत की आध्यात्मिक व साधनात्मक पक्ष प्रभावित होता है।

यद्यपि डिजिटल मंचों ने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को व्यापक पहचान एवं नई पीढ़ी से जोड़ा है, तथापि इसके साथ उत्पन्न हुई चुनौतियाँ और नकारात्मक प्रभाव इस परंपरा के मूल स्वरूप के लिए विचारणीय विषय हैं।

यह शोध-अध्ययन स्पष्ट करता है कि कोरोना महामारी के दौरान हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के युवा कलाकारों द्वारा अपनाई गई डिजिटल यात्रा केवल एक तकनीकी अनुकूलन नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक पुनर्संरचना की प्रक्रिया है। जिसने युवा कलाकारों को पहचान निर्माण, प्रचार और दर्शक विस्तार के नए अवसर प्रदान किए, परंतु साथ ही संगीत के पारंपरिक अनुशासन, गुरु-शिष्य परंपरा और मौखिक परंपरा पर प्रतिकूल प्रभाव भी डाला है। प्रारंभ में यूट्यूब ने शास्त्रीय संगीत की परंपरागत प्रस्तुति-संरचना, आलाप, पूर्ण राग विस्तार तथा औपचारिक मंचीय अनुशासन को अपेक्षाकृत सुरक्षित बनाए रखा। परंतु इंस्टाग्राम की त्वरित, दृश्यात्मक एवं संवादात्मक प्रकृति ने प्रस्तुति को संक्षिप्त, आकर्षण-प्रधान और त्वरित प्रतिक्रिया आधारित बना दिया। इस कारण रागों की गहराई के स्थान पर प्रस्तुति की दृश्यात्मकता और लोकप्रियता सूचकांकों को अधिक महत्व मिलने लगा। डिजिटल प्रस्तुति व शिक्षण के कारण व्यक्तिगत मार्गदर्शन तथा भावात्मक संप्रेषण में आई कमी इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष है।

शोध के उद्देश्य (Research Objectives):

1. कोरोना महामारी में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के युवा कलाकारों द्वारा डिजिटल मंच विशेषत: यूट्यूब और इंस्टाग्राम को अपनाने की प्रक्रिया का अध्ययन करना।
2. डिजिटल मंचों के उपयोग से हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति शैली, शिक्षण प्रणाली एवं श्रोता-कलाकार संबंधों में आए परिवर्तनों का विश्लेषण करना।
3. यूट्यूब और इंस्टाग्राम के माध्यम से युवा कलाकारों द्वारा विकसित डिजिटल पहचान एवं सामाजिक पहुँच के प्रभावों का मूल्यांकन करना।
4. डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों की पहचान करना, ताकि यह समझा जा सके कि डिजिटल माध्यम पारंपरिक हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की संरचना तथा संस्कृति पर किस प्रकार असर डाल रहे हैं

शोध पद्धतियाँ (Research Methodology):

1. साहित्यिक समीक्षा (Literature Review): यूट्यूब और इंस्टाग्राम पर उपलब्ध शास्त्रीय संगीत प्रस्तुतियों, ऑनलाइन कक्षाओं, रियाज़ वीडियो का अध्ययन साथ ही डिजिटल प्लेटफ़ॉर्मों पर किए गए पूर्व शोध, लेख और रिपोर्ट का विश्लेषण।

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.018

2. ऑनलाइन अवलोकन (Online Observation): प्रमुख युवा कलाकारों के यूट्यूब चैनल और इंस्टाग्राम प्रोफाइल का व्यवस्थित निरीक्षण।

3. सर्वेक्षण (Surveys): डिजिटल मंचों के प्रभाव, लाभ एवं चुनौतियों का प्रत्यक्ष दृष्टिकोण।

4. तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis) : यूट्यूब और इंस्टाग्राम की प्रस्तुति शैली, दर्शक सहभागिता और शिक्षण क्षमता की तुलना।

तुलनात्मक दृष्टि:

यूट्यूब	इंस्टाग्राम
दीर्घ प्रस्तुति	लघु प्रस्तुति
शिक्षण व संरक्षण	प्रचार व पहचान
गंभीर श्रोता वर्ग	युवा डिजिटल श्रोता
स्थिर संरचना	गतिशील संरचना

डिजिटल मंचों के आगमन के साथ हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति शैली में महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। जहाँ पारंपरिक मंचीय प्रस्तुति दीर्घकालिक, गंभीर और शास्त्रीय मर्यादाओं से बंधी होती थी, वहीं इंस्टाग्राम जैसे मंचों ने संगीत को संक्षिप्त, त्वरित और दृश्यात्मक स्वरूप प्रदान किया।

➢ यूट्यूब-:

❍ यूट्यूब : डिजिटल सभागृह की संरचना

- ➢ पूर्ण राग प्रस्तुतियाँ
- ➢ ऑनलाइन संगीत सम्मेलन
- ➢ लाइव कॉन्सर्ट
- ➢ रिकॉर्डेड शिक्षण वीडियो

डिजिटल मंचों में यूट्यूब युवा कलाकारों के लिए सबसे पहले उभरा हुआ माध्यम रहा। इसकी दीर्घकालिक वीडियो सुविधा, बेहतर ऑडियो-विज़ुअल गुणवत्ता संग्रहणीय प्रकृति के कारण यह मंच पूर्ण राग-प्रस्तुतियों, ऑनलाइन कक्षाओं तथा रियाज़ वीडियो के लिए उपयुक्त था। अनेक युवा कलाकारों ने अपने चैनल स्थापित कर रागों की विस्तृत प्रस्तुतियाँ, बंदिशें और शिक्षण सामग्री साझा की। यूट्यूब की प्रकृति गंभीर तथा दीर्घकालिक सामग्री पर केंद्रित रही, जो मुख्यत: प्रशिक्षित श्रोताओं गंभीर रसिकों तक सीमित रही। इसके अतिरिक्त, यूट्यूब ने कलाकारों को अपने अभ्यास और रियाज़ की प्रक्रिया को रिकॉर्ड कर साझा करने की सुविधा दी, जिससे संगीत के अध्ययन एवं शिक्षण का पारंपरिक स्वरूप डिजिटल रूप में सहेजा गया। रियाज़ व तकनीकी अभ्यास रिकॉर्ड के से विद्यार्थी घर बैठे ही राग संरचना, ताल व अन्य तकनीकी पहलुओं का अध्ययन कर सकते थे। लंबे वीडियो के माध्यम से दर्शक एक लाइव संगीत सभा का अनुभव डिजिटल रूप में प्राप्त कर सकते थे तथा संगीत के गंभीर रसिक एवं प्रशिक्षित श्रोता वास्तविक मंच की गहनता को समझ पाते थे। यूट्यूब ने शास्त्रीय संगीत के रिकॉर्डिंग एवं अभिलेखन की पारंपरिक कमी को दूर किया। कलाकार और संगीत संस्थानों ने नियमित रूप से प्रस्तुतियाँ अपलोड कर भविष्य के शोधकर्ताओं, छात्रों एवं श्रोताओं के लिए डिजिटल अभिलेख तैयार किए।

हालांकि, यूट्यूब की दीर्घकालिक एवं गंभीर प्रकृति ने इस मंच को एक "गंभीर श्रोता" केंद्रित मंच के रूप में सीमित कर दिया। युवा दर्शक वर्ग के लिए, जो त्वरित और दृश्यात्मक सामग्री के आदी हैं, यूट्यूब की यह संरचना आकर्षक नहीं रही। इसी कारण, कलाकारों ने अपने डिजिटल

अभियान को और अधिक संवादात्मक व संक्षिप्त बनाने के लिए इंस्टाग्राम जैसे अन्य मंचों की ओर रुख किया, जहाँ रील, शॉर्ट वीडियो, लाइव सत्र के माध्यम से वे तुरंत श्रोताओं के साथ जुड़कर युवा वर्ग को अधिक आकर्षित कर सकते थे।

- **इंस्टाग्राम-:**
  - **इंस्टाग्राम : डिजिटल प्रचार संरचना**
    - रील आधारित लघु प्रस्तुतियाँ
    - युवा-केन्द्रित श्रोता वर्ग
    - वायरल आधारित प्रसार
    - फ्यूज़न एवं प्रयोग

इंस्टाग्राम युवा कलाकारों के लिए एक आकर्षक मंच के रूप में उभरकर सामने आया। इंस्टाग्राम पर कलाकार राग के छोटे अंश, आलाप, तान, रियाज़ तथा मंचीय अभ्यास के दृश्य साझा करने लगे। इससे शास्त्रीय संगीत केवल दीर्घ मंचीय प्रस्तुति तक सीमित न रहकर दैनिक जीवन के डिजिटल अनुभव का हिस्सा बनने लगा। इस परिवर्तन ने युवा दर्शकों के बीच शास्त्रीय संगीत के प्रति नई रुचि उत्पन्न की। युवा कलाकारों ने रागों के छोटे अंशों, आकर्षक तानों और दृश्य प्रभावों का उपयोग कर अपनी प्रस्तुति को अधिक संवादात्मक बनाया। इससे हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की प्रस्तुति में एक नया सौंदर्यबोध विकसित हुआ, जिसमें परंपरा एवं आधुनिकता का समन्वय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

इंस्टाग्राम ने युवा कलाकारों को अपनी एक स्वतंत्र डिजिटल पहचान निर्मित करने का अवसर प्रदान किया। लाइक, शेयर, कमेंट तथा फॉलोअर जैसी प्रक्रियाओं ने कलाकारों को सीधे अपने दर्शकों से जुड़ने का मंच दिया। इससे श्रोता-कलाकार संबंध अधिक सहभागी एवं संवादात्मक बन गया। जिन युवाओं का पहले हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत से सीमित संपर्क था, वे अब डिजिटल माध्यमों के जरिए इससे जुड़ने लगे। इससे हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का सामाजिक आधार विस्तृत हुआ और यह केवल एक विशिष्ट वर्ग तक सीमित न रहकर व्यापक समाज में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराने लगा।

इंस्टाग्राम पर दृश्यात्मक और त्वरित सामग्री के बढ़ते महत्व ने शास्त्रीय संगीत को "मनोरंजन-प्रधान" रूप में बदल दिया है। इससे प्रस्तुति का असली सौंदर्य दर्शकों तक पूर्ण रूप से नहीं पहुँच पाया। छोटे वीडियो और रील के माध्यम से संगीत प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति ने कलाकारों को इंस्टाग्राम पर संक्षिप्त आकर्षक अंश साझा करने के लिए प्रेरित किया, जिससे राग की दीर्घकालिक गहन प्रस्तुति जैसे- आलाप, विस्तारपूर्ण तान एवं बंदिश की गंभीरता प्रभावित हुई तथा कलाकार अपनी प्रस्तुति में लोकप्रियता को प्राथमिकता देने लगे। इस प्लेटफ़ॉर्म ने कलाकार की प्रस्तुति और राग की पारंपरिक संरचना दोनों पर प्रभाव डाला।

डिजिटल संरचनात्मक यात्रा की अवधारणा:

डिजिटल संरचनात्मक यात्रा से तात्पर्य उस परिवर्तनशील प्रक्रिया से है जिसमें भौतिक मंचों के स्थान पर ऑनलाइन मंच आए, संगीत की प्रस्तुति लम्बे राग विस्तार से छोटे डिजिटल प्रारूपों में ढली तथा श्रोता-कलाकार संवाद प्रत्यक्ष से वर्चुअल हुआ। यूट्यूब की दीर्घकालिक सामग्री ने कलाकारों को अपने श्रोताओं के लिए स्थायी व गुणवत्तापूर्ण प्रस्तुति उपलब्ध कराने का अवसर प्रदान किया। हालांकि, लंबे वीडियो की प्रकृति ने इसे मुख्यत: गंभीर और प्रशिक्षित श्रोताओं तक सीमित कर दिया। साथ ही इसके माध्यम

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.018

से कलाकारों ने पारंपरिक गुरु-शिष्य प्रणाली को ऑनलाइन रूप में जीवित रखा।

युवा दर्शकों और अल्पकालिक सामग्री पसंद करने वाले वर्ग के लिए लंबे समय तक ध्यान केंद्रित रखना चुनौतीपूर्ण था। इसी कारण, कलाकारों ने यूट्यूब की लंबी प्रस्तुतियों के साथ-साथ इंस्टाग्राम जैसे संक्षिप्त एवं त्वरित मंचों का उपयोग भी प्रारंभ किया, ताकि व्यापक और विविध श्रोता वर्ग तक पहुँचा जा सके।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की मंचीय संरचना, प्रस्तुति प्रारूप, श्रोता-समुदाय और सामाजिक प्रसार की संपूर्ण व्यवस्था का पुनर्संरचन ही "डिजिटल संरचनात्मक यात्रा" है। यह यात्रा परंपरा से तकनीक की ओर नहीं, बल्कि संरचना के पुनर्गठन की यात्रा है, जिसमें हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के युवा कलाकारों ने यूट्यूब से इंस्टाग्राम तक की यात्रा करते हुए अपनी पारंपरिक संरचना को डिजिटल युग के अनुरूप पुनर्गठित किया।

निष्कर्ष-

अत: मेरा शोध-अध्ययन निष्कर्षत: यह प्रतिपादित करता है कि यूट्यूब से इंस्टाग्राम तक की डिजिटल यात्रा हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की परंपरा में एक ऐसा परिवर्तन है, जिसने इसे नई पीढ़ी से जोड़ा है, किंतु इसके साथ-साथ इसकी मूल संरचना और सांस्कृतिक संरक्षण की चुनौती भी प्रस्तुत की है। कोरोना महामारी के दौरान हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के युवा कलाकारों द्वारा अपनाई गई डिजिटल यात्रा एक सांस्कृतिक पुनर्संरचना की प्रक्रिया रही। यूट्यूब ने दीर्घकालिक और गंभीर प्रस्तुतियों के माध्यम से पारंपरिक संरचना सुरक्षित रखी, जबकि इंस्टाग्राम ने संक्षिप्त, दृश्यात्मक और युवा-केन्द्रित स्वरूप प्रस्तुत किया। इस परिवर्तन ने डिजिटल सहभागिता बढ़ाई, परन्तु गुरु-शिष्य परंपरा और भावात्मक राग प्रस्तुति की चुनौती भी उत्पन्न हुई।

शोध संकेत करता है कि यूट्यूब और इंस्टाग्राम जैसे डिजिटल मंचों ने शास्त्रीय संगीत को जनसुलभ बनाया, परंतु इसके साथ प्रस्तुति की गुणवत्ता-आधारित मूल्य प्रणाली लोकप्रियता-आधारित प्रतिस्पर्धा में परिवर्तित होती दिखाई देती है। यह परिवर्तन हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की साधनात्मक और आध्यात्मिक परंपरा के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती बनकर उभरता है।

संदर्भ सूची

1. चौधरी, सिद्धार्थ. "द रोल ऑफ सोशल मीडिया इन प्रमोटिंग एंड प्रिज़र्विंग इंडियन म्यूज़िक एंड डांस ट्रेडिशन्स" द अकैडमिक इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, मई, 2024. https://theacademic.in/wp-content/uploads/2024/06/36.pdf
2. YouTube. (2020). Art And Artistes Channel. Retrieved from https://www.youtube.com/live/y8JvjTeLg_U?si=988BYZAxEjEvm9s8
3. Instagram. (2019). Singersadda Page. Retrieved from https://www.instagram.com/p/Bw3_JBcgnP4/?utm_source=ig_web_copy_link
4. YouTube. (2020). Swar Sanskar Channel. Retrieved from https://youtu.be/CGSSJTdoObk?si=0ZJG2tEhu2gBJWvT
5. Instagram. (2023). Hindustani_Classical_and Khayalsangeet Page. Retrieved from https://www.instagram.com/reel/

CxxAJHkhXJ1/?igsh=YzAyMD M1M GJkZA%3D%3D

6. कुमार, नरेश. हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में प्रयोग एवं परिवर्तन. कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2013.
7. तैलंग, मधु भट्ट और सत्यवती शर्मा. संगीत एवं नवाचार. लिटरेरी सर्कल, जयपुर, 2019.
8. श्रीमाली, सुनीता. "कोरोना काल में संगीतकला और कलाकार." इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन, मॉडर्न मैनेजमेंट, एप्लाइड साइंस और सोशल साइंस, जून 2021, https://inspirajournals.com/uploads/Issues/25535681.pdf
9. प्रदेश टुडे हिंदी न्यूज़, ग्वालियर, 29 मार्च 2020.
10. जनसत्ता हिंदी न्यूज़, ग्वालियर, 25 मई 2020.
12. YouTube. (2020). Swar Sanskar Channel. Retrieved from https://www.youtube.com/live/U0lHDyeMYXA?si=5VtxuZletS5Dgzbi

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.019

पर्क और बर्हिष्य सामों की सांगीतिक समीक्षा (कौथुमीय मद्र पद्धति और उत्तर भारतीय संगीत के विशेष सन्दर्भ में)

पूर्वा जोशी

सारांश

'सामवेद' का वेदों में एक विशिष्ट स्थान है। यही एकमात्र वेद है जिसका सम्पूर्ण रूप से गायन होता है। उत्तर भारत की प्रचलित 'कौथुम शाखा' की मद्र पद्धति पर आधारित गायन परम्परा—इसकी सांगीतिक समीक्षा इस शोध प्रबंध का प्रमुख केन्द्र है।

'सामवेद' की 'गान संहिता' के अंतर्गत निहित 'ग्रामगेयगान' का उपविभाग 'आग्नेय गान' है। आग्नेय गान के प्रथम तीन गान—पर्क, बर्हिष्य एवं पर्क की सांगीतिक समीक्षा इस प्रबंध में प्रस्तुत की गई है।

इस शोध प्रबंध के प्रारम्भ में पर्क तथा बर्हिष्य सामों का परिचय प्रस्तुत किया गया है जिसके अंतर्गत इनके रचनाकार, ऐवता एवं मूल रूप (सामवेद से उद्धृत) का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् इन गानों की स्वरलिपि (स्वरचित), सामवेद के स्वरों का गंधर्व स्वरों से संबंध, इस संबंध का विश्लेषण, गानों की लय का वर्णन एवं इन गानों का सांगीतिक विश्लेषण किया गया है।

तीनों गानों की उपरोक्ता समीक्षा के पश्चात् विदित निष्कर्ष को प्रस्तुत किया गया है।

पारिभाषिक शब्द— सामगान, कौथुमीय, आग्नेय गान, पर्क, बर्हिष्य।

वेद भारतीय संगीत की अमूल्य धरोहर हैं। चारों वेदों में सामवेद का विशिष्ट स्थान है

"वेदानां सामवेदोऽस्मि 1
(वेदों में सामवेद मैं हूँ।)
श्रीकृष्ण (भगवद्गीता 10.22)

भगवान कृष्ण, जो स्वयं एक उत्कृष्ट वेणु वादक हुए हैं, सामवेद की सांगीतिक प्रकृति के कारण स्वयं को सामवेद के रूप में निरूपित करते हैं।

वेद भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। वेदों से ही विभिन्न शास्त्रों एवं कलाओं का विकास हुआ है। कलाओं में संगीतकला का महत्त्व सर्वोपरि माना जाता है और सामवेद को संगीत के स्रोत के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्मा ने सामवेद से संगीत तत्त्व लेकर नाट्यवेद की रचना की। सामवेद का न केवल संगीत की दृष्टि से, बल्कि उपासना की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्व है। संभवत: इसी कारण भगवान वासुदेव ने श्रीमद्भगवद् गीता में कहा है कि 'मैं वेदों में सामवेद हूँ'।

सामवेद स्वरमय वेद है। उपनिषदों में स्वर को ही सामवेद का सर्वस्व कहा गया है। वस्तुत: वैदिक भाषा ही स्वरमय है। किंतु सामवेद वैदिक

पीएच.डी. शोधकर्त्री संगीत एवं ललित कला संकाय दिल्ली विश्वविद्यालय

भाषा के गुणों से युक्त होने पर भी अपने सांगीतिक स्वरों से भी अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए है।

उल्लेखनीय है कि सामवेद में वैदिक भाषा के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा प्रचय स्वर भी प्रयुक्त होते हैं तथा क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय एवं अतिस्वार्य भी प्रयोग होते हैं। जिनका श्रवण संगीतशास्त्र के षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत एवं निषाद स्वरों में होता है।

सामगान की शाखाएँ :-

मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार, 'सहस्र संख्यका जाता: शाखा: साम्न: परंतप एवं महर्षि पतंजलि के अनुसार 'सहस्रवर्त्मा सामवेद:, यह दोनों ही सामवेद की 1000 शाखाएँ होने का वर्णन करते हैं।

प्रो. गौरी महुलिकार ने अपने व्याख्यान में कई विलुप्त शाखाओं के नाम, जैसे खलवल, प्रांजल, वारतांतवेय, आसुरायनीय, लांगल, भाल्लवी एवं गौतमीय का वर्णन किया है।'

वर्तमान समय में सामवेद की 3 शाखाएँ प्रचलित हैं कौथुम शाखा, जैमिनीय शाखा एवं राणायनीय शाखा। इनमें कौथुम शाखा का विशेष महत्त्व है। यह शाखा उत्तर भारत में प्रचलित है। कौथुम शाखा की दो शैलियाँ हैं—मद्र एवं गुर्जर।

सामवेद की तीन संहिताएँ हैं—आर्चिक संहिता (2) गान संहिता तथा (3) पद संहिता। गान संहिता चार प्रकार की होती है— (1) ग्रामगेयगान (2) आरण्यगान (3) ऊहगान और (4) ऊह्यगान। ग्रामगेयगान के अंतर्गत निम्नलिखित चार उपविभाग मिलते हैं—(1) गायत्र गान (2) आग्नेय गान (3) ऐन्द्र गान और (4) पावमान गान। इनमें, आग्नेय गान के पहले तीन गान पर्क, बर्हिष्य तथा पर्क नाम से प्रसिद्ध हैं। इस शोध निबन्ध में कौथुम मद्र पद्धति के पर्क एवं बर्हिष्य सामों का वर्तमान उत्तर भारतीय संगीत पद्धति के अनुसार विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

विषय की गम्भीर मीमांसा से पूर्व, पर्क एवं बर्हिष्य सामों का परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है।

आर्चिक संहिता का प्रथम मन्त्र है

२ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २ १ २र ३ १२

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि।।

इस मन्त्र का गान संहिता में तीन गानों के रूप में विकास हुआ है। ये तीन गान क्रमश: पर्क, बर्हिष्य एवं पर्क के नाम से जाने जाते हैं।

1. पर्क साम

पर्क गान के रचनाकार गौतम ऋषि हैं। गायत्री छन्द पर आधारित इस गान के देवता अग्नि हैं। यह सामगान इस प्रकार है—

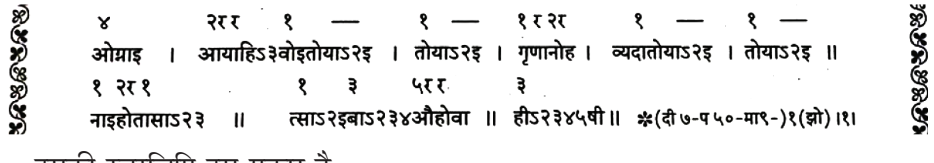

इसकी स्वरलिपि इस प्रकार है—

मद्र पद्धति

आग्नेयम् : गान संख्या-1*

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.019

सा - - - सा - - -, सा - नि ध़ - सा‌नि सा - -
ओ ऽ ऽ ऽ म् ऽ ऽ ऽ, ओ ऽ ऽ ऽ ऽ ग् ना ई

रेसा रे गरे सा - - सा - - सा -
आ या हि ऽ -

रे ग - रे, रे ग रे रेम रेग - - -
वो इ, तो ऽ ऽ या

रेग रे - - सा - सा -, रे ग रे
- इ ऽ, तो ऽ ऽ

रेम रेग - - - रेग रे - - सा - सा -
या इ ऽ
-सा म ग - - रे गरे - सा , , ,
ऽगृ णा ऽ ऽ ऽ नो ह , ,

सा रे ग - रेम रे ग रे रेम रेग - -
व्य दा ऽ ऽ तो या

रेगरे - - सा - सा -, रे ग रे
इ ऽ, तो

रेम रेग - - रेगरे - - सा - सा ,
या इ ,

रे ग - ग ग रे - सा - -
ना - इ हो

रे ग रे म रे - ग - रे गरे - -
ता सा

सा - ए रे -ग - - रेगरे - -
त्सा
सा - - सा सा नि - - सा - - सा
इ बा

-	-	नि	ध	,	सा	रे	$^{\text{ग}}$सा	-	नि	ध़
					औ	हो	ऽ			

नि	-	-	ध़,	सा	नि	-	सा	-	-	सा	-	-
वा				ही								

नि	ध़	नि	-	,	,	,	सा	-	-	-	सा
		षी					ओ				म्

इन गानों के प्रत्येक खण्ड को 'पर्व' की संज्ञा दी गई है जो कि विरामचिन्ह (।) से दर्शाया जाता है। दो विराम चिन्ह द्वारा दर्शाये जाने वाले पर्व को भक्ति कहते हैं।

सामवेद के स्वरों और गांधर्व स्वरों में संबंध

उपर्युक्त पर्क साम के स्वरों का सांगीतिक स्वरों से संबंध निम्नलिखित तालिका में दिया जा रहा है—

गान संख्या-1

सामगान के स्वर	स्वरलिपि में प्रदर्शित गांधर्व स्वर
4	सा नि़ ध़
4	सा ऩि
4	सा
2र	रे सा
र	रे ग रे सा
2	सा
2	सा
3	सा
1	रे ग
1	रे
1	रे ग रे
1	रे म रे ग
-	रे ग रे
2	सा
2	सा
1	रे ग रे
1	रे म रे ग
1	रे ग रे
2	सा
2	सा
1	सा
र	म
2	ग
र	रे ग रे सा
2	सा
2	सा
1	रे ग रे म
1	रे ग रे
1	रे म रे ग
-	रे ग रे
2	सा
2	सा
1	रे ग रे
1	रे म रे ग
-	रे ग रे
2	सा
2	सा
1	रे ग
1	ग
2र	ग रे - सा
1	रे ग रे म

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.019

1	रे
1	ग
2	रे ग रे
3	सा
1	रे - ग
1	रे ग रे
2	सा
2	सा
3	सा
3	नि
2	सा
3	सा
4	नि ध
5र	सा
र	रे "सा - नि ध
5	नि - - ध
3	सा
3	नि
2	सा
3	सा
4	नि
5	ध
5	नि - - ध

इस तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि—

- प्रत्येक पर्व का पहला स्वर या तो 'सा' है या 'रे' है।
- प्रत्येक पर्व का अन्तिम स्वर अधिकतर 'सा' है, केवल अंत के दो पर्वों के अंतिम स्वर 'नि - - ध हैं
- जहाँ कहीं भी सामगान का दूसरा स्वर दो बार है, वहाँ वे दोनों ही 'सा' हैं (2-2 = सा - सा)
- - स्वर (आठवाँ स्वर) - 'रे ग रे' है।
- पाँचवाँ स्वर हमेशा 'नि - - ध' है।
- यह स्केल 'काफी' राग का है जिसमें 'ग - नि' कोमल हैं एवं अन्य सभी स्वर शुद्ध हैं।

लय

यदि कोई इस साम को जल्दी-जल्दी उच्चारित करेगा तो द्रुत ख्याल के समान तीव्र गति का होगा; धीरे-धीरे बोलेगा तो विलम्बित जैसा एवं मध्य लय में बोलेगा तो मध्य लय के ख्याल से मिलती लय होगी। इस साम की रिकॉर्डिंग (ध्वन्यंकन) के गायक श्री सौरव नौटियाल जी ने इसे 125 bpm की लय में गाया है जो द्रुत ख्याल की लय है

सांगीतिक विशेषताएँ -

- प्रथम साम 'ओम्' से प्रारम्भ होता है - ऐसा नियम है।
- दूसरे पर्व की शुरुआत स्वराघात से हुई है।
- अनुप्रास - सौन्दर्य की दृष्टि से हर बार 'तोयाइ' को एक साथ दो बार उच्चारित किया गया है।
- तोयाइ कुल 4 बार आया है। प्रत्येक 'तोयाइ' के स्वर एक समान हैं

  रे ग रे रे म रे ग - - -

  तो या

रे म रे ग स्वर समूह को सुनने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वह सौंदर्य वृद्धि के लिए प्रयोग में लाया गया है।

- कई बार रे ग रे का प्रयोग किया गया है जो मुर्की के प्रयोग को दर्शाता है।

2. बर्हिष्य साम

बर्हिष्य साम के रचनाकार कश्यप ऋषि हैं। इसका छन्द गायत्री एवं देवता अग्नि हैं।

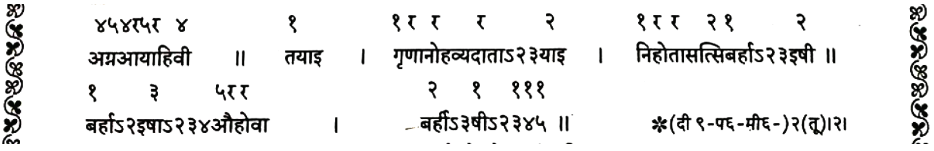

इसकी स्वरलिपि इस प्रकार है—

आग्नेयम्: गान संख्या-2

मद्र पद्धति

सा	-	-	-	सा	-	-	-	निध़	-	-	प़	रे	सासा - -
ओ	ऽ	ऽ	ऽ	म्	ऽ	ऽ	ऽ	अ	ऽ	ऽ	ग्न	आ	ऽऽ

ध	निध़	प़	प़	सा नि	-	सारेसा	-	,	,	,	
या	ऽऽ	ऽ	हि	वी	ऽ	ऽऽऽ	ऽ	,	,	,	
ग़	रे	-	ग	-	रेगरे	-	रे	,	,सा	मरे	
त़	या	ऽ			इ				,गृ	णाऽ	

-	मरे	-	गरे	म	-	रे	रे	-	ग़	-
ऽ	नोऽ	ऽ	हव्य	दा	ऽ	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽ

रेगरे	-	सा	-	-	-	सा	-	-	सा	,
ऽऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	या	ऽ	ऽ	इ	,

सा	साग	रेग	रे	मगम	रे	-	सा	-
,नि	होऽ	ऽऽ	ऽ	ताऽऽ	स		त्सि	

म	रे	म	रे	ग़	-	-	रेगरे	-	-	सा	-
बर्ऽ		ऽ	हा								

सा	,	सा	-	-	,	मरेम	रे	-	ग़	-
इ	,	षी	ऽ	ऽ	,	बर	हा	ऽ	ऽ	ऽ

रेगरे	-	-	सा	-	सा	सा	नि	-	-
ऽऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	इ	षा	ऽ	ऽ	ऽ

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.019

सा	-	-	,	,	सा	-	-	नि	ध	
ऽ	ऽ	ऽ	,	,	आ					
ैरा	रे	सा	-	-	नि	ध	नि	-	ध	-
औ	हो	ऽ	ऽ	ऽ			वा	ऽ	ऽ	ऽ
सा	सा	-	-	सा	-	-	रे	-	ग	-
बर्	ही	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	षी	ऽ	ऽ	ऽ
रेगरे	-	-	सा	-	नि	-	-	सा	-	-
ऽऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
सा	-	सा	-							
ओ	ऽ	म्	ऽ							

उपर्युक्त बर्हिष्य साम के स्वरों का सांगीतिक स्वरों से संबंध निम्नलिखित तालिका में दिया जा रहा है—

आग्नेयम् गान संख्या-2

4	नि़ ध़
5	प़
4	रे
र	सा सा
5र	ध नि़ ध प
5	प
4	साऽनि़ - सा रे सा -
1	ग
1	रे - ग़ - रे ग़ रे -
1	रे
1	सा
र	म रे
र	म रे
1	ऽरे
र	म - रे
1	ऽरे

1	ग़
2	रे ग़ रे
3	सा
2	सा
2	सा
1	सा
र	सा ग़ रे ग़ रे
र	म ग़ म
1	रे
2	सा
1	म रे म
1	रे
1	ग
2	रे ग़ रे
3	सा
3	सा
2	सा
1	म रे म
1	रे
1	ग़
2	रे ग़ रे - - सा
1	सा

3	सा
3	नि
2	सा
3	सा
4	नि ध
5र	रेसा
र	रे सा - - नि ध
5	नि - ध -
5	सा
2	सा
2	सा
3	सा
9 मात्रा का स्वर ।।।।। (षीऽ२३४५)	रे - ग, रे ग रे सा, नि सा सा सा

इस तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि—

- हर एक पर्व की शुरुआत अधिकतर 'सा' स्वर से हुई है।
- प्रथम साम-पर्क की तरह इस साम में भी जब कभी दूसरा स्वर दो बार आया है, वह सा, सा है। यानि 2-2 = सा-सा।
- तीसरे पर्व में र तीन बार आया है और हर बार , र = म रे।

लय

इस गान को श्री सौरव नौटियाल जी ने 105 bpm मध्यलय में गाया है।

सांगीतिक विश्लेषण

- इस गान में मुर्की का विशेष प्रयोग देखने को मिलता है जो - रे ग रे के रूप में गाई गई है।
- म - रे में सुंदर ढंग से मींड का प्रयोग देखने को मिलता है।
- षी अक्षर पर 'crescendo' देखने को मिलता है। अर्थात् 'सा' स्वर की तीव्रता (volume) बढ़ती जाती है।
- कई बार बलाघात का प्रयोग भी किया गया है।
- गान के अंत में 'स्वार' का प्रयोग देखने को मिलता है जो 'बर्हीषी' के 'षी' से प्रारम्भ होता है।

3. पर्क साम

आग्नेयम् का तीसरा गान-पर्क साम इस प्रकार है—

3. पर्क साम—इस पर्क साम के रचनाकार गोतम ऋषि हैं, इसका छंद गायत्री है एवं देवता अग्नि हैं। इस गान की स्वरलिपि इस प्रकार है—

आग्नेयम्: गान संख्या-3

मद्र पद्धति

सा	-	-	सा	-	,	ध़	-	-	प़	रे	सा	-	-	-
ओ	ऽ	ऽ	म्	ऽ	,	अ	ऽ	ऽ	ग्न	आ				

ध़	निध़प़	-	-	प़	,	,	,	सा	-	ऩि	ध़
या	ऽऽ	ऽ	ऽ	हि	,	,	,	वा	रे	सा	-

प़	प़	प़	सानि	-	-	-	सा	-	-	,	सा	गरे
	इ	त	या				इ			,	गृ	णा

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.019

म	ग	रे	रे	ग रे	सा	-	-	रे	ग	रे	ग	रे
नो		हव्	य	दा								

सा	-	रे सा	सा	सा	-	,	,	,सा	सा	-
ता				ये	ऽ	,	,	,नि	हो	ऽ

सा	ऩि	-	-	सा	-	-	सा	-	ऩि	ध़	नि	-
ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	सा	

ध	,	,	,	रे	ग	-	रे	ग	रे	-	सा	-	सा
				त्सा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	इ

सा	-	-	सा	,	,	,	रे	ग	-	रे	ग	रे	-
बा			ऽ				हा						

सा	-	ऩि	ध़	प़	प़	सा	-	ऩि	ध़	सा	ऩि	सा
					इ	षो	ऽ			हा		इ

उपर्युक्त पर्क साम के स्वरों का सांगीतिक स्वरों से संबंध निम्नलिखित तालिका में दिया जा रहा है—

1	सा
र	^{ग}रे
र	म ग रे
1	रे
1	ग रे
2	सा
4	रे ग
1	रे ग रे
2	सा
2	रे सा
3	सा
2	सा
2	सा
2	सा
3	सा
3	नी
2	सा

गान संख्या-3 आग्नेयम्

4	ध़
5	प़
4र	रे सा
5र	ध़ ऩि ध़ प़
5	प़
4	सा
4	ऩि ध
5	प़
5	प़
5	प़
4	$^{सा}$नि
4	सा

3	सा
4	नि ध
5	नि - ध
1	रे
1	ग
2	रे ग रे
3	सा
3	सा
2	सा
2	सा
3	सा
1	रे ग
1	रे ग रे
2	सा
3	नि
4	ध प
4	प
5	सा
5	नि ध
5	सा नि
5	सा

इस तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि—

- जहाँ कहीं भी दूसरा स्वर दो बार गाया गया है, वह अधिकतर 'सा' स्वर है। यानि (2-2 = सा-सा)।
- प्रत्येक पर्व का पहला स्वर अधिकतर सा है या रे है।
- पहले दो पर्वों में चौथे अथवा पाँचवें स्वर का ही अधिकतर प्रयोग हुआ है।
- जहाँ कहीं भी दो बार पहले स्वर का प्रयोग हुआ है, वहाँ रे एवं ग स्वरों का ही प्रयोग हुआ है।
- तीसरे पर्व में पहले गान के समान तीन बार दूसरा स्वर आने पर तीनों 'सा' गाये गए हैं (पहले गान में दूसरा स्वर कई स्थानों पर दो बार प्रयोग में आया है)।

लय

दूसरे गान के समान इस गान की भी लय 105 bpm है जो मध्य लय है। अर्थात् यह गान मध्य लय में गाया गया है।

सांगीतिक विश्लेषण

- इस गान में समय-समय पर बलाघात का प्रयोग होता सुनाई पड़ता है।
- यह एक गमक एवं मुर्की प्रधान बान है जिसमें दो या दो से अधिक स्वर द्रुत लय में कई स्थानों पर बोले जा रहे हैं।
- 'रे ग - रे ग रे' का बार-बार प्रयोग कर सौंदर्यवृद्धि की गई है, ऐसा प्रतीत होता है।

निष्कर्ष

पर्क और बर्हिष्य सामों की सांगीतिक समीक्षा करने के पश्चात निम्न तथ्य विदित होते हैं—

- सामगान में भी शास्त्रीय संगीत की तरह परम्परा में निश्चित किए गए उच्चारण 'नियम' का पालन होता है।
- तीनों गानों में, ऐसा देखा गया है कि काफी राग के स्केल का प्रयोग हुआ है।
- केवल शास्त्रीय नियम ही नहीं, बल्कि सांगीतिक विशेषताओं, जैसे मींड, मुर्की, खटका, कण आदि से ये सामगान अलंकृत है।
- सामवेद के स्वरों का गांधर्व स्वरों के साथ प्राय: निश्चित संबंध है जो कहीं-कहीं असम्बद्ध भी है।
- सम्पूर्ण सामगान एक ही सप्तक में गाया गया है।
- लय का कोई निश्चित नियम नहीं है—वह इच्छानुसार विलम्बित, मद्र या द्रुत हो सकती है।

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.019

- सामगान में कोई ताल नहीं है।
- सामवेद में अग्निदेवता की स्तुति में स्त्रोता के द्वारा भक्ति भाव प्रदर्शित करने के लिए, गान को मधुर बनाने के प्रयास में विभिन्न प्रकार की मुर्की, मींड, खटका, कण आदि तालवाद्य का प्रयोग सामगान के साथ सम्भव नहीं होगा। किंतु सामगान स्वरमय है, इसलिए स्वरवाद्य का प्रयोग सम्भव है। नारदीय शिक्षा में सामगान के साथ वीणा के प्रयोग का वर्णन मिलता है। ठाकुर जयदेव सिंह आदि विद्वानों ने भी सामगान के साथ वीणा के प्रयोग की चर्चा की है।
- सामवेद में अग्निदेवता की स्तुति में स्त्रोता के द्वारा भक्तिभाव प्रदर्शित करने के लिए गान को मधुर बनाने के प्रयास में विभिन्न प्रकार के मुर्की, मींड, खटका, कण आदि सांगीतिक तत्त्व प्रयुक्त हुए हैं।

संदर्भ

1. Vyasa, Ved (1972), Bhagavad Gita—As It is, The Bhaktivedanta Book Trust, Mumbai, pg 472.
2. मुक्तिकोपनिषत्, 1.13
3. पतंजलि, महाभाष्य (पस्पशह्निक)
4. महुलिकर, ग (2020), Yajirved & Samaveda by Prof. Gauri Mahulikar (Ola 14), https://youtbe.com/watch/v=izNqdVLch-w
5. Desai, S. (2017), Indian Women Seers & their Songs—The unfittered note, New Delhi IGNCA, pg.

* सभी सामों की स्वरलिपि एवं स्वरों का सांगीतिक स्वरों से संबंध की तालिका, शोधकर्त्री द्वारा स्वरचित है।

** श्री सौरव नौटियाल वर्तमान में प्रवक्ता, सामवेद कौथुम राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालय, उज्जैन में कार्यरत हैं।

DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.020

ऋतु-संस्कृति की मिसाल - चैती

डॉ. शीला झा

भारतीय लोक-संगीत परंपरा केवल एक मनोरंजन का साधन नहीं रही, बल्कि यह समाज, संस्कृति, ऋतु, श्रम और आस्था का जीवंत दस्तावेज रही है। भारतीय ग्रामीण जीवन में संगीत जन्म से मृत्यु तक मानव के साथ चलता है। खेतों में काम करते समय गाए जाने वाले गीत, पर्व-त्योहारों की धुनें, स्त्रियों के सुख-दुख की अभिव्यक्ति-ये सभी लोक-संगीत के अनगिनत रूप हैं। इनमें चैती एक ऐसी विधा है जो लोक और शास्त्रीय संगीत के बीच एक पुल का काम करती है। चैती एक मौसमी गीत-परंपरा है, जो खासकर चैत्र मास (मार्च–अप्रैल) में गाई जाती है। यह वसंत ऋतु के आगमन, नवजीवन, प्रेम, विरह और भक्ति के भावनाओं से भरी होती है। चैती के गीतों में खेतों, बागों, फूलों, पवन और ऋतु का वर्णन होता है, और साथ ही राम-भक्ति, नारी-मन की संवेदनाएँ और लोक-जीवन के वास्तविकता भी प्रकट होती है। शास्त्रीय संगीत के दृष्टिकोण से चैती को उपशास्त्रीय कहा जाता है, क्योंकि यह राग, स्वर और ताल की सीमाएँ रखती है, लेकिन कठोर शास्त्रीय अनुशासन से मुक्त रहती है। इसकी आत्मा लोक में निवास करती है, और यह इसे विशिष्ट बनाती है। चैती परंपरा आज भी गाँवों में जीवित है, लेकिन शहरीकरण, मीडिया-संस्कृति और पीढ़ीगत अंतराल के कारण इसके पारंपरिक रूप में कमी देखी जा रही है। चैती लोक-संस्कृति और ऋतु-चेतना का प्रतिनिधि स्वर है। यह महिलाओ के जीवन की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण माध्यम है। इसमें लोक-भाषाओं (भोजपुरी, अवधी, मैथिली) का संरक्षण शामिल है। यह उपशास्त्रीय संगीत की परंपरा को समझने में मदद करती है। आधुनिक समय में इसके संरक्षण और प्रलेखन की आवश्यकता है। यह लेख चैती को केवल एक गीत-रूप नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पाठ (Cultural Text) के रूप में देखने का प्रयास करता है।

शब्द कुंजी – चैती, लोक, पारंपरिक, उपशास्त्रीय, परंपरा, मौसमी गीत

'चैती' शब्द की व्युत्पत्ति 'चैत्र' मास से मान ली जाती है। भारतीय पंचांग के अनुसार, चैत्र वर्ष का पहला महीना है, जो वसंत ऋतु को दर्शाता है। लोक-संस्कृति में इस महीने का खास महत्व है। इसी समय नयी फसलें, वसंतोत्सव, रामनवमी और विभिन्न लोक-अनुष्ठान होते हैं। इस प्रकार, 'चैती' मूलत: वह गीत परंपरा है, जो चैत्र मास के दौरान गाई जाती है। समय के साथ ये एक विशेष संगीतात्मक शैली में परिवर्तित हो गई। विचारधारा के अनुसार-चैती एक मौसमी लोकगीत है, जो सामूहिक गायन की परंपरा से जुड़ी है। इसमें भावनाओं का महत्व स्वर से

संगीत शिक्षिका ,+2राजेंद्र गर्ल्स स्कूल,दरभंगा

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.020

अधिक है। इसका उद्देश्य अनुभव को साझा करना है, प्रदर्शन नहीं। भारतीय लोक-संस्कृति में ऋतु केवल मौसम नहीं, बल्कि जीवन का दृष्टिकोण है। वसंत ऋतु को रचनात्मकता, प्रेम और उत्साह का समय माना जाता है। खेतों की हरियाली, वृक्षों में नए पत्ते और मनुष्य के भीतर की ताजगी, ये सभी चैती गीतों में दिखते हैं। चैती गीतों में आम के बौर, कोयल की आवाज, बहती हवा, नदी, घाट और नवयुवती की प्रतीक्षा जैसे बार-बार आने वाले चित्र मौजूद हैं। इन चित्रों के जरिए लोक-मानस ऋतु का अनुभव करता है, केवल देखता नहीं। लोक-संस्कृति में चैत्र मास महिलाओं के लिए विशेष होता है। खेतों में काम की कमी, पर्वों की परिकल्पना और सामूहिक गायन के मौके मिलते हैं। इसी कारण चैती में महिलाओं की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

चैती लोकगीत परंपरा का इतिहास लिखित ग्रंथों में बहुत कम मिलता है, जबकि यह लोक-स्मृति में अधिक सुरक्षित है। भारतीय लोक-संगीत की विशेषता यह है कि यह शास्त्रीय ग्रंथों की अपेक्षा जनजीवन की मौखिक परंपरा में विकसित होता है। चैती भी इसी मौखिक परंपरा का उत्पाद है, जो ग्राम-समाज, ऋतु-चक्र और धार्मिक अनुष्ठानों के साथ विकसित हुई है। ऐतिहासिक अनुसंधान के अनुसार, चैती का आरंभ पुराने कृषि-समाज से जुड़ा हुआ है। चैत्र मास में फसल कटाई के बाद ग्रामीण जीवन में विश्राम और उत्सव का वातावरण बनता है। यह समय गीत-संगीत की परंपरा को प्रोत्साहित करता है। इसलिए, चैती को कृषि-आधारित लोक-संस्कृति का संगीतात्मक परिणाम माना जा सकता है। चैती का विकास किसी एक विशिष्ट काल में नहीं, बल्कि यह एक निरंतर प्रक्रिया रही है, जिसमें आदिम समाज की प्रकृति-पूजा, वैदिक ऋतु-भावना, मध्यकालीन भक्ति आंदोलन और आधुनिक लोक-चेतना सभी शामिल हैं।

भारतीय संस्कृति में ऋतु-गीतों की परंपरा बहुत प्राचीन है। वैदिक साहित्य में ऋतु-परिवर्तन से जुड़े यज्ञ, अनुष्ठान और स्तुति-गान का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में प्रकृति, सूर्य, पवन, वर्षा और पृथ्वी की स्तुति के मंत्र पाए जाते हैं, जिन्हें लोकगीतों के प्रारंभिक रूपों के रूप में देखा जाता है। संस्कृत काव्य-परंपरा में कालिदास का ऋतुसंहार ऋतु-आधारित काव्य का बेहतरीन उदाहरण है। हालांकि चैती सीधे संस्कृत काव्य से उत्पन्न नहीं हुई, फिर भी ऋतु को भाव और जीवन से जोड़ने की परंपरा लोकगीतों में निरंतर बनी रही। वसंत ऋतु को विशेष रूप से प्रेम, सौंदर्य और उल्लास की ऋतु माना जाता है, जो बाद में चैती गीतों का मुख्य विषय बन गया। इस प्रकार, चैती को भारतीय ऋतु-गीत परंपरा की लोकधारा के रूप में देखा जा सकता है।

मध्यकालीन भारतीय समाज में गहन सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तन हुए। इस युग में लोक-संस्कृति को नई ऊर्जा मिली। राजदरबारों के समानान्तर गाँवों में लोक-साहित्य और लोक-संगीत ने अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की। इस समय लोकभाषाओं का विस्तार हुआ। मौखिक परंपरा और भी मजबूत हुई। स्त्रियों की लोक-अभिव्यक्ति को एक नया रूप मिला। चैती गीतों का स्वरूप इस काल में अधिक स्पष्ट हुआ। गीतों में नारी-मन, प्रेम-विरह, पति-प्रवासी और ऋतु-वेदना जैसे विषय प्रमुखता से उभरे। मध्यकालीन लोकगीतों में स्त्री को केवल श्रृंगार की वस्तु नहीं, बल्कि एक संवेदनशील और चिंतनशील इकाई के रूप में दर्शाया गया। चैती के कई गीतों में नायिका

अपने प्रिय की प्रतीक्षा करती है, उससे संवाद करती है, या अपनी दुखदाई भावनाओं को प्रकृति के साथ साझा करती है।

भक्ति आंदोलन ने लगभग 14वीं से 17वीं शताब्दी के बीच भारतीय लोक-संगीत पर गहरा प्रभाव डाला। इस आंदोलन की प्रमुख विशेषता थी- लोकभाषा में भगवान की भक्ति, साधारण गीतात्मक अभिव्यक्ति, और वर्ग एवं जाति से परे धार्मिक जागरूकता। चैती परंपरा पर इस आंदोलन का प्रभाव विशेष रूप से राम-भक्ति के माध्यम से स्पष्ट होता है। उत्तर भारत में राम को जननायक मान लिया गया। रामकथा अब केवल धार्मिक कथा नहीं रही, बल्कि यह लोक-जीवन की कथा बन गई। चैत्र मास में रामनवमी का पर्व आता है, जो चैती गायन के लिए एक महत्वपूर्ण समय होता है। इसलिए अनेक चैती गीतों में राम, सीता, अयोध्या, वनवास और भक्ति के भाव की झलक दिखाई देती है।

रामकथा और चैती का आपसी संबंध

रामकथा भारतीय संस्कृति का आधार है। तुलसीदास की रामचरितमानस ने इसे सभी के लिए प्रकट किया। इस लोक-रामकथा का प्रभाव चैती गीतों में भी नजर आता है। चैती में रामकथा का प्रयोग तीन स्तरों पर पाया जाता है-

(क) धार्मिक मानक- राम को भगवान के रूप में अर्चना की जाती है। गीतों में राम का नाम लेना, भक्ति और स्तुति का उल्लेख किया गया है।

(ख) सामाजिक मानक- राम को एक आदर्श पति, पुत्र और राजा के तौर पर दर्शाया गया है। नायिका अपने प्रेमी की तुलना राम से करती है।

(ग) प्रतीकात्मक स्तर- राम 'प्रिय' के प्रतीक के रूप में परिणत होते हैं। अनेक चैती गीतों में राम वास्तव में देवता नहीं, बल्कि नायक के तौर पर प्रस्तुत किए जाते हैं।

इस प्रकार चैती में रामकथा आध्यात्मिक और worldly - दोनों दृष्टिकोणों पर उपस्थित है।

स्त्री-चेतना और भक्ति का संगम

भक्ति आंदोलन ने महिलाओं को अपनी भावनाएँ प्रकट करने का मौका दिया। चैती गीतों में यह स्त्री-चेतना स्पष्टता से दिखायी देती है। गीतों में महिलाओं की भक्ति में संलग्नता, प्रेम की व्याकुलता और सामाजिक प्रतिबंध मौजूद होने के बावजूद भावनात्मक स्वायत्तता प्रदर्शित होती है। अनेक चैती गीतों में महिलाएँ राम के साथ अपने दु:ख साझा करती हैं और उनसे बातचीत करती हैं। यह संवादात्मक शैली लोक-भक्ति की विशेष पहचान बनाती है। चैती को स्त्री-भक्ति का लोक-स्वर भी माना जा सकता है।

दरबारी संगीत का लोक-संवाद

हालांकि चैती मुख्य रूप से लोकगीत है, परंतु मध्यकाल में इस पर शास्त्रीय और दरबारी संगीत का असर पड़ा। विशेषकर बनारस, अवध और मिथिला जैसे सांस्कृतिक केंद्रों में लोक और शास्त्रीय परंपराएँ एक-दूसरे से संवाद करती रहीं। दरबारों में ध्रुपद और बाद में ख्याल का विकास हुआ, जबकि लोक स्तर पर चैती, कजरी, होरी जैसी विधाएँ जीवित रहीं। समय के साथ कुछ लोक-गायक दरबारों में स्थान पाए और कुछ दरबारी संगीतकारों ने लोक-शैलियों को अपनाया। इसीलिए चैती में सीमित रागात्मकता, अलंकारों का थोड़ा सा प्रयोग, लेकिन भाव की प्रमुखता नजर आती है।

चैती का इतिहास लिखित दस्तावेजों में नहीं, बल्कि ग्राम-स्मृति में संरक्षित है। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को गाने सिखाती है। गीतों के बोल

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.020

हर बार बदलते हैं, लेकिन भावना बनी रहती है। यह परिवर्तनशीलता चैती की कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी ताकत है। यह लोक-संस्कृति की जीवंतता को दर्शाती है। लोक-साहित्यकारों के अनुसार, "लोकगीत कभी स्थिर नहीं होते, वे समय के साथ प्रवाहित होते हैं।" चैती इसी प्रवाह का उदाहरण है।

चैती का ऐतिहासिक विकास यह बताता है कि यह किसी एक युग की उपज नहीं बल्कि बहु-स्तरीय सांस्कृतिक प्रक्रिया का नतीजा है। इसमें प्राचीन ऋतु-गण, मध्यकालीन भक्ति और लोक-स्त्री जागरूकता का समावेश है। चैती को जानना भारतीय लोक-संस्कृति, भक्ति आंदोलन और स्त्री अभिव्यक्ति को समझने का एक प्रमुख जरिया है।

लोक और शास्त्रीय के मध्य : चैती की संगीतात्मक प्रकृति

भारतीय संगीत की परंपरा में लोक और शास्त्रीय को अक्सर दो अलग ध्रुवों के रूप में माना जाता है, लेकिन सच्चाई यह है कि इनके बीच एक बड़ा मध्य-क्षेत्र मौजूद है। इसी मध्य-क्षेत्र में चैती जैसी उपशास्त्रीय शैलियाँ साधित हैं। चैती न तो पूरी तरह शास्त्रीय नियमों के तहत है और न ही पूरी तरह स्वतंत्र लोक-रूप में है। इसकी यही संक्रमणशील विशेषता इसे अनूठा बनाती है।

संगीत के संदर्भ में चैती का मूल भाव है। राग, ताल और स्वर-योजना सभी भाव की अभिव्यक्ति के उपकरण हैं, न कि उद्देश्य। इसलिए, चैती में शास्त्रीय शुद्धता से ज्यादा अनुभव की वास्तविकता को प्राथमिकता दी जाती है।

शास्त्रीय संगीत में राग एक ठोस संरचना होती है, जिसमें आरोह-अवरोह, वादी-संवादी, पकड़ और ताल निर्धारित रहते हैं। लोक-संगीत में राग का अर्थ अपेक्षाकृत लचीला होता है। चैती में राग संकेतक, प्रमाणिक और क्षेत्रीय परंपरा से प्रभावित होता है, अर्थात, एक समान चैती गीत विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न राग-छायाओं में गाया जा सकता है।

चैती में आमतौर पर कोमल सुरों वाले, मधुर और भावनात्मक रागों का उपयोग किया जाता है। मुख्य राग निम्नलिखित हैं।राग खमाज एक बहुत प्रसिद्ध राग है जो लोक और उपशास्त्रीय संगीत में पाया जाता है। चैती में खमाज का उपयोग श्रृंगार, विरह, और सौम्यता की भावना व्यक्त करने के लिए किया जाता है। खमाज की कोमल निषाद चैती के करुणा भाव को विशेष गहराई प्रदान करती है। इस राग को लोक-संगीत की आत्मा माना जाता है। भोजपुरी और मैथिली चैती में इस राग का व्यापक प्रयोग होता है। यह राग लोक-सुलभ सामूहिक गायन के लिए उपयुक्त है, विशेषकर स्त्री-कंठ के लिए।

भैरवी राग का उपयोग चैती में खासतौर पर समापन के लिए किया जाता है। इसमें करुणा, शांति और आध्यात्मिकता होती है।भैरवी चैती को गहराई देती है, खासकर धार्मिक संदर्भों में इसका भाव प्राप्त होता है।।

देश और पीलू जैसे राग भी चैती में पाए जाते हैं, खासकर बनारसी परंपरा में। ये राग लोक-रस और ठुमरी-शैली

के पास होते हैं।चैती में राग एक बंधन नहीं, बल्कि यह भाव की नींव है। लोक-गायक अपनी सहूलियत और परंपरा के अनुसार स्वर में परिवर्तन कर सकता है। इसी वजह से एक ही चैती गीत विभिन्न रागों में, विभिन्न स्वर-क्षेत्र में, और विभिन्न भाव-गहराई के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है।

स्वर-रचना और गायन (Vocal Composition)

चैती की स्वर-योजना आसान होती है। सामान्यत: मध्य सप्तक का उपयोग होता है। सीमित तान और अलंकारों का बहुत कम प्रयोग होता है। इसका उद्देश्य यही है कि गीत सामूहिक रूप से गाया जा सके।

अलंकार तथा मींड

हालांकि चैती लोकगीत है, फिर भी इसमें कुछ शास्त्रीय अलंकार प्रयोग किए जाते हैं। मींड - स्वर-संयोजन को कोमल बनाने के लिए, कण स्वर - भाव को उभारने हेतु और गमक - सीमित रूप में, विशेषकर बनारसी शैली में उपयोग की जाती है, लेकिन इन अलंकारों का उपयोग अति-प्रदर्शन के लिए नहीं, बल्कि भाव-संप्रेषण के लिए किया जाता है।

गायन-शैली

चैती की स्वरूप स्वाभाविक, सहज, और संवादात्मक होती है। प्राय: एक महिला गीत की पंक्ति लेती है और अन्य महिलाएँ उसे दोहराती हैं। यह प्रतिध्वनि शैली (Call and Response) जन-संस्कृति की सामूहिक चेतना को प्रकट करती है।

ताल-प्रबंधन

चैती में ताल का मुख्य लक्ष्य गति को बनाए रखना होता है, न कि लयात्मक जटिलता को। यहां ताल भाव की सहायक सामूहिकता की संरक्षक के रूप में कार्य करती है। प्रमुख ताल कहरवा, दादरा, रूपक और दीपचंदी हैं जो चैती में गाया जाता है।चैती में इस्तेमाल होने वाले वाद्य ढोलक, मंजीरा, झांझ और ताली हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में ताल कभी-कभी सिर्फ ताली से भी निभाई जाती है।

उपशास्त्रीय तत्त्वों का होना अर्थात ठुमरी-शैली का असर

चैती और ठुमरी के बीच गहरा संबंध है। बनारस घराने में चैती को ठुमरी-अंग में,भावपूर्ण प्रस्तुति के साथ गाया जाता है। यहाँ बोल-आलाप, भाव-विश्राम और सूक्ष्म स्वर-संयोजन दिखाई पड़ता है। 20वीं शताब्दी में जब चैती मंचों पर पहुँचती है, तब राग स्पष्ट होने लगते हैं,ताल स्थिर हो जाती है और गायन अधिक नियंत्रित होता है।यह परिवर्तन चैती को उपशास्त्रीय पहचान देता है।

सन्दर्भ सूची

1. दुबे श्यामा चरण, भारतीय लोक-संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. पाण्डेय रामनरेश, लोकगीत और लोकजीवन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. त्रिपाठी शिवकुमार, पूर्वी उत्तर भारत का लोकसंगीत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
4. वर्मा धीरेन्द्र, लोकसाहित्य का समाजशास्त्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
5. मिश्र विद्याधर, भोजपुरी लोकगीत परंपरा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
6. तिवारी भोलानाथ, लोकगीतों में स्त्री, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
7. भारतीय लोकसंगीत परंपराएँ, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.021

पं. भीमसेन जोशी की गायकी तथा नवाचार

डॉ. अभिषेक स्मिथ

सारांशिका

संगीत जगत के नाद महर्षि महान विभूति पं. भीमसेन जोशी अपने ओजमयी व्यक्तित्व एवं असाधारण गायकी द्वारा सर्वदा विस्मरणीय रहेंगे। आपका जन्म 04 फरवरी 1922 को धारवाड़ जिले के गदग गाँव में हुआ था। आपकी गायकी पूर्ण रूप से आलाप प्रधान गायकी है। गायन शैली किराना घराने की होने के उपरांत भी अन्य घरानों की विशिष्टताएं आपके गायन में विशेष रूप से दृष्टिगत होती है। आपकी गायकी की विशेषताओं में स्वर लगाव, आलाप, जटिल एवं क्लिष्ट तानक्रिया, श्वांस नियन्त्रण, खुली आवाज़ की गायकी,, सौंदर्ययुक्त गायन, भावपूर्णता, तीव्रगति की चमत्कृत व दीर्घकालिक तानें, गमक युक्त तानें,, राग विस्तार में एक-एक स्वर की बढ़त , भक्तिभाव युक्त आलाप प्रयोग आदि विशेषताएँ विशेष रूप से परिलक्षित होती है। प्रस्तुत लेख में पं. भीमसेन जोशी जी की गायकी की विशेषताओं का वर्णन किया जाएगा।

सूचक शब्द : *भारतीय, संगीत, ख़्याल, गायक, किराना, घराना, भीमसेन, जोशी इत्यादि।*

भूमिका

भारतीय वाङ्मय में संगीत एक अतिक्लिष्ट विषय है। भारत ही नहीं अपितु सर्वत्र विश्व में यह साधना के विषय के रूप में उपस्थापित है। प्रकृति, ईश्वर तथा भावाभिव्यक्ति के साधनों ने संगीतानुभूति में सहयोग किया है। अत: विश्व का कोई भी प्राणी इससे अछूता नहीं रहा है।

आधुनिक भारतीय संगीत का मूलाधार 'राग' है। 'राग' के दो आधार माने गए हैं- 'स्वर' और 'वर्ण'। राग की सम्पूर्ण कल्पना स्वर पर ही आधारित है। आधुनिक उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के रागदारी संगीत में ख़्याल गायन शैली अत्यधिक प्रचलित है। 'ख़्याल' शब्द 'कल्पना' का पर्यायवाची है। यह प्रस्तुतकर्ता के कल्पना शक्ति पर निर्भर है कि वह राग को किस प्रकार प्रस्तुत करता है।

जोशी वंश के षष्ठम् पीढ़ी के रूप में पं. भीमसेन जोशी का जन्म 04 फरवरी 1922 को गदग (कर्नाटक) में हुआ था। पिता गुराचार्य भीमाचार्य जोशी तथा माता रमाबाई कट्टी के सात संतानों में सबसे ज्येष्ठ थे- पं. भीमसेन जोशी। पिताजी एक कुशल शिक्षक थे व माता जी गृहिणी थीं।

किराना घराने का परिचय एवं विशेषता

किराना घराना—

किराना घराने की उत्पत्ति 'किराना' नामक गाँव से हुआ है, जो भारत के उत्तर प्रदेश राज्य

Assistant Professor, University Department of Music and Dramatics, Faculty of Fine Arts, Lalit Narayan Mithila University Darbhanga

के सहारनपुर जिले के अन्तर्गत आता है। उ0 अब्दुल रहीम खाँ साहब को किराना घराने का संस्थापक माना जाता है। परंतु वास्तव में, इस घराने के मूल प्रवर्तक उस्ताद बन्दे अली खाँ थे, जो एक उच्चकोटि के बीनकार थे। इन्हीं के शिष्य-परम्परा में उ. अब्दुल करीम खाँ हुए, जिन्होंने इस घराने का विस्तार किया। चूँकि बन्दे अली खाँ बीनकार थे, अत: इस घराने में बीन का अनुसरण प्राप्त होता है।

विशेषत

किराना घराने की गायकी का मुख्य आकर्षण का केन्द्र 'स्वर-स्थान का विस्तार' अर्थात् आलाप प्रधान गायकी है। राग का वृहद विस्तार हो सके, इस उद्देश्य से इस घराने की गायकी में लय को विलम्बित रखने की परम्परा है। कभी-कभी अतिविलम्बित लय में भी गायन की जाती है। यह घराना मूलत: बीनकारों का घराना है। अत: इसकी गायन शैली में स्वरों का विस्तार अधिकतर मींड़ आधारित होता है।

राग में प्रयुक्त स्वरों पर स्थिरता बनाए रखना, एक स्वर के पास के अन्य स्वरों को जोड़ते हुए राग का विस्तार करना, खुली आवाज़ के साथ कभी-कभी कृत्रिम आवाज़ का प्रयोग करना, इस घराने की विशेषताएं हैं। आलाप प्रधान गायकी होने के कारण गंभीर प्रकृति के राग इस शैली में अत्यधिक सुशोभित होते हैं। किराना शैली में ठुमरी गायन की परम्परा भी रही है।

भीमसेनी गायकी

पं. सुजान राणे के अनुसार, ''पं. भीमसेन जोशी की गायकी उनकी अपनी गायकी है, जो उन्होंने अपनी प्रतिभा, कला-कौशल एवं साधना से स्वयं बनाया था।'' अन्य घरानों तथा गायकों की गायकी की विशिष्ट गुणों को अपनी गायकी में समाहित कर उसे नए रूप में प्रस्तुत किया। मधुर, गंभीर व खुली आवाज़, रागों की शुद्धतम तथा भावपूर्ण प्रस्तुति, अंतहीन लंबी क्लिष्ट एवं जटिल तानों से परिपूर्ण गायकी उन्हें सबसे अलग करती है। विलम्बित लय की गायकी में ताल के मात्राओं पर स्वरों को भरने और एक आवर्तन पूर्ण कर सम पर आने का ढंग बहुत निराला था। उनकी गायकी में भव्यता का अतिरेक तरंगित होता है, जिससे श्रोता अति आनंदित होते हैं। ''यह उनकी गायकी थी जो उनकी ही थी। उनसे पूर्व में न ही किसी ने गाया और भविष्य में न ही गा पाएगा।''

पं. भीमसेन जोशी जी की संगीत शिक्षा अनेक घरानों की परिधि में अनुशासित हुई थी। अत: उनकी गायकी में विभिन्न घरानों तथा गायकों के सांगीतिक गुणों का समन्वय निरूपित होता है। स्वयं उनके शब्दों में- ''मैंने विभिन्न घरानों की विशेषताओं में अपने घराने की विशेषताओं को विलय किया और परिणाम स्वरूप प्रतिफल के रूप में जो मिला वो 'मेरी गायकी' है।'' एक ओर जहां किराना घराना की गायन शैली में स्वरों की प्रकृति सुकुमार व सुकोमल प्रयोग करने की परम्परा रही है, वहीं पं. भीमसेन जोशी जी ने अपनी गंभीर, दबंग तथा आक्रामक आवाज़ को बहुत ही सुंदरता से प्रयोग किया है। भक्तिपूर्ण, करुण, समर्पण तथा माधुर्य भाव से परिपूर्ण उनकी गायकी में एक विशेष आकर्षण था, जिससे श्रोताओं को आत्मीय आनंद की प्राप्ति होती है। यह उनके अनवरत तथा अखंडित साधना का सुपरिणाम था जो उन्होंने न कि किराना घराने का प्रतिनिधित्व किया अपितु भारतीय शास्त्रीय गायन शैली को नवीनता प्रदान की। गायकी में यह उनका अनुपम प्रयोग था, जो कहलाया- ''भीमसेनी गायकी''।

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.021

साहित्य पक्ष-

पं. भीमसेन जोशी जी ने किराना घराने के अतिरिक्त अन्य घरानों की बंदिशों को भी गाया है और उसे नवीन तथा अमूर्त रूप दी है। सदारंग-अदारंग की रचनाओं में राग शुद्ध कल्याण में 'मौन्दर बाजो री', राग-तोड़ी में 'लंगर काकरिया जिन मारो', राग-मियां मल्हार में 'करीम नाम तेरो तू साहेब सतार', राग-सूहा में 'तू है मोमदशाह', राग-मुल्तानी में 'गोकुल गाँव का छोरा' इत्यादि अनेक बंदिशों को अपनी शैली से प्रस्तुत किया है जो संगीत श्रोताओं के हृदय पर अमिट छाप छोड़ता है। साथ ही अन्य घरानों की बंदिशों में जैसे पंजाब घराने की राग गौड़ सारंग की बंदिश 'पिया नजर नहीं आवन्दा' जयपुर-अतरौली घराने की राग दुर्गा की बंदिश 'तू रसिकन रे', रामपुर सहसवान घराने की राग मारु बिहाग की बंदिश 'तड़पत दिन रैन' इत्यादि अनेक रचनाओं की प्रस्तुति दी है। उन्होंने पारम्परिक बंदिशों के साथ अन्य गायकों की रचनाओं को भी बड़े ही आत्मीयता से गाया है। उन्होनें इन संगीतिय रचनाओं को ऐसे प्रस्तुत किया कि वो अमर हो गई।

स्वर पक्ष

स्वर, लय, ताल तथा साहित्य के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट गूढ़ तत्वों जैसे-गमक, मींड़, खटका, मुर्की, काकु भेद इत्यादि का अनुपम मिश्रण उनकी गायकी में प्राप्त होता है। मध्य सप्तक के षड़ज से मंद्र सप्तक के स्वरों पर गमक और मींड़ के साथ आना, फिर एक-एक स्वरों को जोड़ते हुए आगे बढ़ने के क्रम में मुर्की, खटका एवं छोटे-छोटे तानों का प्रयोग करना, उनकी कला तथा गायकी को अद्वितीय रूप प्रदान करता है। अपनी गंभीर ध्वनि को बड़े ही रंजकता से प्रयोग करते जिसमें रर्साद्रता का अनूठा चित्रांकन प्राप्त होता है। विशेषत: मुर्की तथा खटका का प्रयोग करते समय ध्वनि की तीव्रता में शिथिलता लाते, जो उनकी गायकी में आकर्षण भर देता है।

पं. भीमसेन जोशी जी की गायकी का एक महत्त्वपूर्ण व अभिन्न अंग है- 'पुकार'। उनके स्वरों में विशेषत: तार सप्तक के स्वरों में करूणा तथा भक्ति के भावों का वृहद संचार होता है। ऐसा लगता है कि वे ईश्वर से कुछ कह रहे हैं। अपनी अंर्तात्मा की व्याकुलता को निवेदित कर रहे हैं। अपने भावों की अभिव्यक्ति कर रहे हैं। उनके पुकार में करूण तथा श्रृंगार के भाव तरंगित होते हैं। यह उनकी गायकी का गूढ़ घटक है, जिससे प्रस्तुतियों में जीवंतता आती है।

लय पक्ष

'लय' के सन्दर्भ में पं. भीमसेन जोशी जी का चिन्तन अन्य गायक कलाकारों से पूर्णतया अलग है। वे राग की प्रकृति के आधार पर लय का चयन करते थे। एक ओर जहाँ किराना घराने में अति विलम्बित लय में गायन करने की परम्परा रही है, वहीं पं. भीमसेन जोशी जी की गायकी में लय सम्बन्धी विचारधाराओं में भिन्नता पायी जाती है। उन्होंने अति विलम्बित लय की गायकी को विलम्बित लय में परिवर्तित किया और साथ ही विलम्बित लय की गति में थोड़ी तीव्रता भी लाई।

उनकी प्रस्तुतियों में लय, ताल तथा राग की बढ़त का अनुपम समन्वय प्राप्त होता है। स्वर की रंजकता के साथ-साथ लय की सौंदर्यात्मक प्रस्तुति पर उनका असाधारण चिन्तन था। समान ताल में निबद्ध विभिन्न रचनाओं की प्रस्तुतियों में ताल के वादन तकनीक का इस प्रकार प्रयोग हो कि वह प्रत्येक प्रस्तुतियों में नवीन लगे, इस संदर्भ में वे सदा ही अपने संगत कलाकारों से

चर्चा करते थे। फलत: उनकी प्रस्तुतियों में राग बढ़त की लय तथा ताल के ठेका में समान तारतम्यता दिखती है।

पं. भीमसेन जोशी की लय के सम्बन्ध में विचारों को प्रख्यात तबला वादक भाई गायतोंडे ने सरल रूप में वर्णन किया है। उनके अनुसार ''उनकी लयकारी सरल व अप्रत्यक्ष है। लयकारी के प्रवाह में वे मात्राओं के बीच से ही तान और बढ़त प्रारम्भ कर देते थे। छोटी-छोटी स्थानों को भी गायकी के विभिन्न घटकों से भर देते थे। 'लय' केवल उनकी गायकी में नहीं वरन् सम्पूर्ण शरीर में था। यह उनकी तपस्या का सुपरिणाम था।'' छोटी-छोटी मात्राओं के साथ तान, मुर्की, खटका के प्रयोग का कलात्मक रूप दृष्टिगोचर होता है। गायन के साथ शरीर के प्रत्येक अंग का लयात्मक रूप में गतिमान होना, उनके लय पर सम्पूर्ण प्रभुत्व को परिलक्षित करता है। स्वयं उनके शब्दों में- ''मैंने जितना गायन सुना है उतना ही तबले का स्वतंत्र वादन भी सुना है। एक गायक को तबला वादन की गूढ़ तकनीक को समझना चाहिए। ये उसके प्रस्तुतियों में सहायक सिद्ध होता है।'' वादन शैली की इस कलात्मक दृष्टिकोण का सार्थक सुपरिणाम विभिन्न स्वर समूहों द्वारा जो तय नहीं है, सम पर आने से व्यक्त होता है।

ताल-पक्ष

पं. भीमसेन जोशी जी की ख़्याल गायकी के प्रस्तुतियों में साहित्य (शब्द), स्वरस्थान और ताल का अनूठा समन्वय प्राप्त होता है। उनकी गायकी विलम्बित त्रिताल में अधिक पायी जाती है। यह उनका एक प्रयोग था। उनकी गायकी में साहित्य के शब्द, उचित स्वरस्थान के साथ ताल के निश्चित मात्राओं पर व्यवस्थित प्रतीत होते हैं। प्रत्येक आवर्तन में स्थायी के बोल (शब्द) को भिन्न-भिन्न स्वर समूहों द्वारा सम पर लाने, नए स्वर-गुच्छों के साथ राग की बढ़त तथा तानों का सौंदर्यात्मक प्रयोग से हर क्षण नवीनता आभासित होता है। उन्हीं के शब्दों में, ''गुरुजी ने मुझे दो बाते सिखायीं- पहली, प्रत्येक शब्द एक निश्चित मात्रा पर होनी चाहिए और दूसरी कि नवीनता बनी रहनी चाहिए।''

राग-विस्तार

पं. भीमसेन जोशी जी की राग-विस्तार करने की शैली उत्कृष्ट थी। स्वर, लय, ताल, पद, तान इत्यादि घटकों के प्रयोग के अतिरिक्त उनका विशेष ध्यान रंजकता की ओर रहता था। क्षणिक मात्र भी शिथिलता तथा अरंजकता का बोध कहीं नहीं प्राप्त होता है। लंबी साँस में अतिक्लिष्ट तथा जटिल तानों को गाने के पश्चात् जब वे बंदिश को गाते तो उसमें कहीं भी थकावट भरे स्वरों का भाव प्रतीत नहीं होता है।

पंडित जी के राग के प्रथम स्वर को लगाने मात्र से ही वातावरण में एक अद्‌भुत छटा बिखर जाती है। माधुर्यपूर्ण गंभीर स्वर प्रयोग श्रोताओं तथा दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। राग-यमन कल्याण में मंद्र निषाद पर प्रहार कर, एक लम्बी सांस छोड़ने के पश्चात् मींड़ के साथ जब वे मध्य षड़ज को स्पर्श करते तथा पुन: मन्द्र निषाद से होते हुए मन्द्र धैवत के प्रयोग के साथ मध्य षड़ज पर जाने से राग की अद्‌भुत छवि तैयार हो जाती है। राग तोड़ी का आलाप करते समय मध्य षड़ज से मन्द्र निषाद का कण लेते हुए मंद्र धैवत पर मींड़ के साथ आना, राग का सुंदर चित्र प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार अन्य रागों के प्रथम स्वर के प्रयोग से ही रंजकता की सुन्दर मूर्ति प्रतिबिम्बित होने लगती है।

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.021

विलम्बित ख़्याल में रचित बंदिशों की स्थाई पूर्ण करने के पश्चात् मन्द्र सप्तक के स्वरों में भ्रमण करते थे। मध्य षड़ज से मंद्र सप्तक के स्वरों को एक-एक करके स्थिरता के साथ नीचे की ओर बढ़ते जाते थे। गमकयुक्त गंभीर आवाज़ मंद्र सप्तक में ऐसा प्रतीत होता जैसे शेर की दहाड़ हो। वे बड़े ही सहजता से मंद्र सप्तक के स्वर गंधार, रिषभ तथा षड़ज तक चले जाते। इस प्रकार मंद्र सप्तक में राग की आधारशिला तैयार कर धीरे-धीरे मध्य सप्तक में प्रवेश करते। मध्य सप्तक के स्वरों के बढ़ते क्रम के साथ उस स्वर के निचले अन्य स्वरों को युक्त कर राग की बढ़त का आरोहण किया करते थे। इस क्रम में मुर्की, गमक, खटका तथा छोटी-छोटी तानों का सुंदर प्रयोग प्राप्त होता है। धीरे-धीरे तार षड़ज तक पहुँचने के पश्चात् वे उस स्वर पर टिक जाते तथा तार सप्तक के अन्य स्वरों के साथ राग-बढ़त की क्रिया को विस्तार देते। तार पंचम, धैवत तक वे आसानी से विचरण कर आते। पाश्र्व संगीत के महान गायक मन्नाडे के शब्दों में- ''वे तीनों सप्तकों में आसानी से भ्रमण करते थे। सांस इतनी लम्बी थी कि एक ही सांस में मंद्र, मध्य और तार सप्तकों में तानों का अनूठा प्रयोग करते थे।'' पं. भीमसेन जोशी जी का तीनों सप्तकों पर पूर्ण प्रभुत्व था। वे सहजता से खुली आवाज़ में तीनों सप्तकों में भ्रमण करते थे। किन्तु कभी-कभी तार सप्तक के स्वरों को कृत्रिम आवाज़ में गाते जो अत्यन्त ही मनमोहक था। प्राकृतिक और कृत्रिम स्वरों का ऐसा प्रवाह करते जो श्रोताओं को आश्चर्यचकित कर देता था।

पं. भीमसेन जोशी जी की गायकी में भाव पक्ष तथा कला पक्ष समान रूप से पाये जाते हैं। एक ओर जहाँ माधुर्य तथा करूण भाव से राग की स्वरूप को चित्रित करते वहीं अत्यन्त क्लिष्ट तथा जटिल दानेदार तानों से राग की कला पक्ष को अलंकृत कर देते थे। स्वरों के सूक्ष्म कण युक्त तानों को तीनों सप्तकों में एक ही सांस में पूर्ण करने की असाधारण कला थी उनमें। उनकी गायकी की तानें छंदयुक्त होती हैं। लय की परिधि में की गई यह तान ताल की मात्राओं के साथ सुशोभित हो जाती है। अलंकार, पलटा, सपाट तान, मुर्की, खटका, गमक इत्यादि घटकों का विशेष समन्वय वे बड़े ही सुदंरता से करते थे और राग का एक भव्य रूप प्रस्तुत करते।

प्रस्तुति

उनकी प्रस्तुतियाँ (विशेषत: मंच प्रदर्शन) प्रचलित रागों जैसे यमन, कल्याण, दरबारी, कान्हड़ा, मालकौंस, मियाँ मल्हार, तोड़ी, शुद्ध कल्याण, भैरव, मारवा, बिहाग, भीमपलासी, पुरिया, पुरिया धनाश्री, पुरिया कल्याण इत्यादि रागों में पायी जाती है। पारम्परिक रूप से प्रचलित इन रागों को गाकर उन्होंने श्रोताओं के हृदय पर अमिट छाप छोड़ी। नाविन्य तथा आकर्षण से भरपूर इन रागों की प्रस्तुतियों से श्रोता ही नहीं अपितु उनके समकालीन तथा पूर्व के महान संगीतज्ञों के हृदय को स्पर्श किया।

पं. भीमसेन जोशी अपनी प्रत्येक राग की प्रस्तुतियों में एक नवीन स्वर संगति का समावेश अवश्य करते थे। वे राग को नवीनता से व्याख्यायित कर उसे अद्वितीय रूप में प्रस्तुत करते थे। यही कारण है कि श्रोताओं को उनकी गायकी में सर्वदा नाविन्य का बोध होता रहा है।

पं. भीमसेन जोशी जी की गायकी पर अन्य गायकों का प्रभाव

पं. भीमसेन जोशी जी की संगीत शिक्षा विभिन्न घरानों के गुरु के सानिध्य में हुई थी। साथ ही अन्य सुप्रसिद्ध गायकों की गायकी के विशिष्ट गूढ़ तत्वों को साध कर उसे अपनी गायकी में

समावेश कर सुदंरता से प्रस्तुत किए। इस प्रकार उन्होंने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप अर्थात् कुछ गुरुमुखी रूप में तो कुछ श्रवण से संगीत के सूक्ष्म अवयवों को सीखा। अत: उनकी गायकी पर अनेक गुणीजनों का प्रभाव पड़ा, जिसे उन्होंने विनम्र भाव से स्वीकार भी किया है।

पं. भीमसेन जोशी जी की गायकी में किराना घराने के विशेषताओं के साथ अन्य गुणीजनों की गायकी के विशेषताओं का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है। गुरुवर्य पं. सवाई गंधर्व के अतिरिक्त सुरश्री केसर बाई केरकर, उ. अमीर खाँ, उस्ताद मुश्ताक हुसैन और बाल गंधर्व की गायकी का विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है।

सुरश्री केसरबाई केरकर

13 जुलाई 1892 को गोवा के केरी गाँव में जन्मीं केसरबाई केरकर जयपुर-अतरौली घराना की सुप्रसिद्ध गायिका थीं। आपने संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा उ. अब्दुल करीम खाँ तथा पं. रामकृष्ण बुवा वझे से प्राप्त की थी। अंत में जयपुर-अतरौली घराने के संस्थापक उ0 अल्लादिया खाँ से 11 वर्षों तक संगीत की विस्तृत शिक्षा प्राप्त की।

सुरश्री जी ने जयपुर घराने की विशेषताओं को गले में उतारकर उसे भव्य रूप में प्रस्तुत किया। उनकी गायकी में स्वरों का अनुनाद तरंगित होता था। स्वरों का शुद्धतम रूप में प्रयोग, उसकी गहराई और तीनों सप्तकों में विचरण करने की उनमें अद्‌भुत कला थी। साथ ही वक्र तथा छोटे-छोटे तानों के साथ राग की बढ़त करने की वैशिष्ट्य पूर्ण कला थी।

पं. भीमसेन जोशी जी ने सुरश्री केसर बाई केरकर जी की गायकी से प्राकृतिक रूप में स्वरों का लगाव, छोटी तथा वक्र तानों द्वारा राग की बढ़त और आलाप की लयबद्ध स्वरूप को ग्रहण किया था। साथ ही काफी कान्हड़ा, सूहा कान्हड़ा और मेघ कान्हड़ा की शिक्षा भी ली थी।

उस्ताद अमीर खाँ

अमीर खाँ साहब का जन्म सन् 1912 में अकोला में हुआ था। आपने संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता शाहमीर खाँ से प्राप्त किया था। अमीर खाँ के शिष्य तेजपाल सिंह लिखते हैं कि, ''वे संगीत की शिक्षा केवल अपने पिताजी से प्राप्त किए थे। किन्तु अन्य गायकों-गुणीजनों की गायकी की विशिष्ट गूढ़ तत्वों को आत्मसात् कर अपनी ख़्याल गायकी को उत्कृष्ट बनाया था।'' उ. अमीर खाँ की गायकी में अति विलम्बित लय में राग की बढ़त करने का ढंग, क्लिष्ट सरगम तान, तथा मेरुखण्ड पद्धति पर आधारित स्वर संयोजन का अनुपम रूप दृष्टिगोचर होता है।

पं. भीमसेन जोशी जी ने विलम्बित लय में राग की शांतिपूर्ण बढ़त करने की शैली, रसार्द्र भाव तथा मेरुखण्ड आधारित स्वर-संयोजन को ग्रहित कर उसे अपने गायन शैली में प्रस्तुत किया। पं. भीमसेन जोशी खाँ साहब की गायकी से न कि गायकी की विशिष्ट घटकों को ग्रहण किया, वरन् उनके बंदिशें भी गाई, जो उन्हें स्वयं खाँ साहब ने दी थी। राग-मारवा में रचित बंदिश 'गुरु बिन ज्ञान न पावे', राग-दरबारी कान्हड़ा की बंदिशें 'झनक-झनकवा बाजे बिछुवा' तथा 'किन बैरन कान भरे', राग-आभोगी की बंदिशें, 'चरन धर आयो' तथा 'लाज रख लीजो मोरी' इत्यादि अनेक बंदिशों का सुमधुर गायन पं. भीमसेन जोशी जी ने किया है।

मुश्ताक हुसैन खाँ

''रामपुर सहसवान घराने के प्रसिद्ध गायक मुश्ताक़ हुसैन खाँ का जन्म सन् 1880 में सहसवान में हुआ था। इन्होंने संगीत की शिक्षा

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.021

अपने पिता कल्लन खां तथा बड़े भाई आशिक हुसैन खाँ से प्राप्त की थी। साथ ही अपने ससुर इनायत हुसैन से भी संगीत की शिक्षा ग्रहण की थी।

उ. मुश्ताक हुसैन खाँ की गायकी में विशिष्टता ये थी कि उनकी सांस अत्यंत लम्बी थी। क्लिष्ट से क्लिष्ट तानों को वे तीनों सप्तकों में आसानी से गा लेते थे। जटिल तानों पर उनका प्रभुत्व था। इसी उद्देश्य से पण्डित जी इनके सानिध्य में 6 महीने रहे तथा संगीत शिक्षा अर्जित की।'' पण्डित जी ने खाँ साहब की गायकी से लंबी सांस में तान करने के ढंग को ग्रहण किया। साथ ही सपाट तथा अत्यंत जटिल तानों के रूपरेखा को ग्रहण कर उसे सौंदर्यात्मक रूप से अपने गायकी में समावेश किया।

बालगंधर्व

बाल गंधर्व का जन्म 26 जून 1988 को महाराष्ट्र के नागथाणे ग्राम में हुआ था। इनका वास्तविक नाम नारायण श्रीपद राजहंस था। बालगंधर्व उच्चकोटि के रंगमंच कलाकार के साथ एक अच्छे गायक भी थे। नाटकों में उन्होंने स्त्री की भूमिका बड़े ही कलात्मक रूप में निभाया है।

बाल गंधर्व नाट्यगीत के उत्कृष्ट कलाकार थे। उनके गले में एक विशिष्ट प्रकार का सुरावट था। लय की स्थिरता के साथ विविधतापूर्ण गायकी थी। वे एक ही पंक्ति को अनेकों बार विभिन्न प्रकार से गाते थे। शब्दों का उच्चारण शुद्धता से परिपूर्ण होता था। उनकी गायकी में सूक्ष्म स्वरों का अप्रतीम समन्वय था।

पं. भीमसेन जोशी जी नाट्यगीत की सूक्ष्म गुणों को बाल गंधर्व की गायकी से ग्रहण किए थे। वे नाट्य गीतों की भावात्मक प्रणाली तथा लयात्मक स्वरूप की बारीकियों को सुनकर उसे आत्मसात किए थे।

इस प्रकार यह बोध होता है कि पं. भीमसेन जोशी अपने घराना परम्परा के परिधि से बाहर निकलकर अन्य उत्कृष्ट गायकों के गायकी की विशिष्ट गुणों को आत्मसात किए और जहाँ से जो भी कुछ ग्रहण किया उसे विनम्रता से स्वीकार किया। यह उनका स्वभाव था।

उपसंहार

जोशी जी की गायकी किराना घराने की समस्त विशेषताओं को अपने में समाहित किये हुए है। परन्तु फिर भी अपने घराने की सीमाओं से परे जाकर अन्य घरानों में विचरण करती प्रतीत होती है। जोशी जी के गायन में चिन्तन, अथक साधना, बौद्धिक सूझबूझ, विचारशक्ति एवं भावों का अनूठा संगम दृष्टिगोचर होता है। इनका स्वर लगाव, कंठशक्ति एवं गायन स्वयं में अपनी मिसाल है। जो भी विशेषताएं इनके गायन में थी वे सभी अपने आप में विलक्षण थीं और वे समग्रता से इस रूप में शायद ही अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर हों। अनेक गायकों को सुनकर और प्रयोगों की विभिन्न अवस्थाओं को पार कर उन्होंने गायन की उस शैली को अपनाया जो उनके कंठ संस्कार के सर्वथा अनुकूल थी। उन्होंने जो कुछ भी अपने गुरु, गुरुतुल्य व्यक्ति या अन्य गायकों से ग्रहण किया उस पर उन्होंने भीमसेनी विशेषताओं की अमिट स्याही सी लगा दी। जोशी जी की आवाज जो मन्द्र सप्तक में विशेषत: निखरती थी उनके द्वारा किये गये खरज अभ्यास का परिणाम था। उनके कंठ पर नाट्य संगीत व मराठी गायकी का बहुत प्रभाव पड़ा। आवाज़ तीनों सप्तकों में सुगमता से विचरण करती थी। उनकी आवाज़ के लिए समीक्षकों का मानना है कि नाद का तेज, ओज, भवतव्य सब कुछ उसमें है।

जोशी जी की ख़्याल गायकी में धुरपद की गहराई सम्मिलित थी और उसके साथ मुर्की, खटके, गमक, पुकार आदि के उपयुक्त प्रयोग के द्वारा सौन्दर्यात्मक भावनाओं का प्रकटीकरण होता था। जोशी जी राग शुद्धता के परम पक्षधर थे। वे बहुधा प्रचलित व शुद्ध रागों को ही गायन के लिए चुनते थे। जैसे शुद्ध कल्याण, यमन, पूरिया, मारवा, आभोगी, तोड़ी आदि उनके कुछ प्रिय राग थे। भीमसेन जोशी के बारे में जो सबसे अचरज भरा तथ्य है, वह यह है कि उन्होंने कुछ रागों के ऊपर अपना पूरा जीवन सौंप दिया। वे कहते भी थे कि जीवन बिताने के लिए अठारह बीस राग काफी हैं। वे यह भी कहते थे कि आलाप ही बंदिश को जीवंत बनाता है। केवल आलाप ही गायक के स्वभाव को प्रदर्शित कर सकता है। यदि गायक शांत व गम्भीर होता है तो आलाप उसके इसी गुण का प्रतिनिधित्व करता है। स्वरों का परत दर परत विस्तार करना किराना घराने की विशेषता है। जोशी जी भी इसी का अनुसरण करते हुए अपने रागों की अभिव्यंजना करते थे। पं. भीमसेन जोशी जी की गायन शैली में उनकी तानें अपनी चरमावस्था में मनोभावों को उत्स्फूर्त करने वाले प्रभाव को उत्पन्न करती है। गायकी के अन्य अंगों की अपेक्षा उत्तेजना और जोश का अंग उनके तान अंग में ही अनुभूत होता है। किराना घराने की गायकी आलाप प्रधान है। इसमे तानों का संचार करने का श्रेय जोशी जी को ही जाता है। उनके राग प्रस्तुतीकरण का तानपक्ष, स्वर माधुर्य तथा लयकारी दोनों ही दृष्टि से आकर्षक एवं प्रभावशाली था। ध्वनि की परिसीमा का वास्तविक रूप उनकी तानों में खुलकर सामने आता है। ख़्याल गायकी की अपनी सिद्धहस्तता से अलग भीमसेन जोशी जी के सुर संसार में कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं, जहां पर उनकी प्रतिभा शिखर पर रही। ठुमरी, अभंगपद गायन एवं भजन से भीमसेन जोशी ने अपनी उपस्थिति को और भी अधिक प्रखर व सार्वकालिक बनाया है। पं0 भोमसेन जोशी ने जिन-जिन घरानों, मठ, हवेलियों, शहरों और उपासना केन्द्रों का चक्कर लगाया है, उन सब जगहों का दर्शन उनके इन भजनों, अभंग पदों एवं नाट्य गीतों में रसिक समाज को सरलता से मिल जाता है।

पं. भीमसेन जोशी ने देश विदेश में बहुत से कार्यक्रम किए तथा शास्त्रीय संगीत का परचम लहराया। जोशी जी को संगीत में अप्रतिम योगदान के लिए बहुत से पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। जिसमें मुख्य पुरस्कार हैं- पद्मश्री 1972, संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार 1976, पद्म भूषण 1985, कनार्टक रत्न 2005 तथा सबसे महत्त्वपूर्ण व सर्वोच्च पुरस्कार भारत रत्न 2009 आदि।

पं. भीमसेन जोशी इन्हीं कला साधकों की श्रेणी में आते हैं। उनका रागमय चिन्तन क्षणिक भर के लिए भी अखण्डित नहीं होता था। ''वे कमरे में एकांत अवस्था में भी गुनगुनाया करते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि वे ईश्वर से वार्तालाप कर रहे हैं। उनकी हाथों की अंगुलियाँ तबले पर थिरकते अंगुलियों की भांति कुर्सी के बाहियों पर थिरकते रहते थे। नेत्र अर्द्ध बंद रहते और वे आकाश की ओर देखकर गाते रहते थे। वे सर्वदा अपने लिए गाते थे। उनकी साधना अनवरत चलती रहती थी। वे प्राय: कहा करते कि रागों में जो आनंद है वो किसी अन्य संगीत में नहीं है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, डॉ. जयदेव ठाकुर, भारतीय संगीत का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2016।
- परांजपे, डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, चैखम्भा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण 2015।

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.021

- सिंह, गजेन्द्र नारायण, कालजयी सुर पंडित भीमसेन जोशी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016।
- सिंह तेजपाल, संगीत के देदीप्यमान सूर्य उस्ताद अमीर खाँ, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, संस्करण 2005।
- मजूमदार अभिषेक, भीमसेन जोशी ए पैशन ऑफ म्यूजिक, रूपा कम्पनी, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2004।
- पोतदार, बसंत, पं. भीमसेन जोशी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016।
- चिंधाड़े शिरीष, भीमसेन जोशी माय फादर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस इण्डिया (नई दिल्ली), संस्करण 2016।
- हवलदार, डॉ. नागराज, भारत रत्न पं. भीमसेन जोशी: द वायस ऑफ द पीपुल, सुनन्दा आर्ट फाउण्डेशन बैंगलोर, संस्करण 2018।
- गोस्वामी, शैलेन्द्र कुमार, हिन्दुस्तानी संगीत के महान रचनाकार सदारंग-अदारंग, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, संस्करण 2018।
- यमन, अशोक कुमार, संगीत रत्नावली, अभिषेक पब्लिकेशन, चण्डीगढ़, संस्करण 2021।
- केशरी श्वेता, कर्नाटक संगीत, कला प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2019।

पत्र-पत्रिकाएँ

- 'छायानट' त्रैमासिक पत्रिका, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली
- 'संगीत' मासिक पत्रिका संगीत कार्यालय, हाथरस
- भैरवी संगीत शोध पत्रिका, अंक-1, वर्ष 2009, प्रधान सम्पादक डॉ. पुष्पम नारायण
- आजकल पत्रिका, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सितम्बर 2011, सम्पादक सीमा ओझा

वेबसाइट्स

- www.hindustaniclassicalmusic.in
- www.artindia.net
- www.classicalarchives.com

झरनी लोकविधा: ऐतिहासिक-सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि में

पूजा कुमारी

सारांश

झरनी मिथिलांचल का एक पारंपरिक लोकनृत्य-गीत स्वरूप है, जिसे विशेषकर मुस्लिम समुदाय के पुरुष मुहर्रम के अवसर पर प्रस्तुत करते हैं। झरनी एक समूहात्मक लोकनृत्य-गीत है जिसमें प्रदर्शन करने वाले दस-बारह पुरुष मंडलाकार वृत्ताकार क्रम में गाते और नाचते हैं। दोनों हाथों में लम्बी बांस की बने झरनी पट्टियां (पतली बांस की फटी फट्टियाँ) लेकर सभी संगीत की ताल पर कदम उठाते-गिराते हैं। समूह गीत प्रारंभ में धीमी-धीमी ताल से गाया जाता है और फिर तीव्र होती धुन पर तेजी से नृत्य होता है। झरनी की ताल बहुत विशिष्ट होती है। बांस की पट्टियों को एक-दूसरे से टकराकर हथौड़े जैसी आवाज देने से युद्ध का प्रभाव उत्पन्न होता है। गीत-गति और स्वर-संचरण का अद्‌भुत संयोजन झरनी के आकर्षण का मूल है।

शब्द कुंजी *– झरनी,संगीत, मुस्लिम, मुहर्रम, बांस*

झरनी मिथिलांचल का एक पारंपरिक लोकनृत्य-गीत स्वरूप है, जिसे विशेषकर मुस्लिम समुदाय के पुरुष मुहर्रम के अवसर पर प्रस्तुत करते हैं। यह करबला के शहीदों की श्रद्धांजलि में गाया और नाचा जाता है और शौर्य, त्याग व भक्ति का प्रतीक माना जाता है। मिथिला क्षेत्र (बिहार व नेपाल का मिथिलांचल) की लोक-संस्कृति में झरनी की जड़ें गहरी हैं। मधुबनी-दरभंगा अंचल की ग्रामीण परंपराओं में मुहर्रम के दिन ताजिया जुलुस के साथ झरनी नृत्य-गीत प्रचलित रहा है। इसका सामाजिक अर्थ यह है कि हिन्दू-मुस्लिम दोनों समुदाय इसमें सम्मिलित होकर स्थानीय संस्कृति का सांस्कृतिक सौहार्द प्रदर्शित करते हैं। झरनी की उत्पत्ति के बारे में लिखित अभिलेख नहीं हैं, यह मौखिक परंपरा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रसरित हुई है। पारंपरिक लोक संगीत की तरह झरनी भी अतीत के लोक-विश्वास, धार्मिक अनुष्ठानों और सामूहिक स्मृति का वाहक है। आज के संकुचित विश्व में झरनी को मिथिला की समृद्ध लोक-संस्कृति की अमिट विरासत माना जाता है।

झरनी एक समूहात्मक लोकनृत्य-गीत है जिसमें प्रदर्शन करने वाले दस-बारह पुरुष मंडलाकार वृत्ताकार क्रम में गाते और नाचते हैं। दोनों हाथों में लम्बी बांस की बने झरनी पट्टियां (पतली बांस की फटी फट्टियाँ) लेकर सभी संगीत की ताल पर कदम उठाते-गिराते हैं। समूह गीत प्रारंभ में धीमी-धीमी ताल से गाया जाता है और फिर तीव्र होती धुन पर तेजी से नृत्य होता है। झरनी की ताल बहुत विशिष्ट होती है: बांस

शोध छात्रा,संगीत, विश्व विद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग,ल.ना.मि.वि.वि.,दरभंगा

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.022

की पट्टियों को एक-दूसरे से टकराकर हथौड़े जैसी आवाज देने से युद्ध का प्रभाव उत्पन्न होता है। गीत-गति और स्वर-संचरण का अद्भुत संयोजन झरनी के आकर्षण का मूल है।

झरनी गीत मौखिक (श्रुति) परंपरा के अंतर्गत संरक्षित हैं। इन गीतों में जनश्रुति और स्थानीय बोली का पुट रहता है। उदाहरणस्वरूप मैथिली गीत

हाय-हाय, कहाँ विराजे सैयद फुलबरिया
केये करै रखबरिये हाय?
हाय-हाय, काबा विराजे सैयद फुलबरिया
राजा करै रखबरिये हाय।
हाय-हाय, मालिन के बेटिया, बड़ी रे खेलरिया
आधे राती जाय फुलबरिये हाय।

में आंचलिक शब्दावली और प्रश्नोत्तरी का लयात्मक प्रयोग देखा जाता है। प्राय: दोहा या चौपाई जैसी परिपाटी में रचित इन गीतों का पाठ सहज है, जिससे गाँव के साधारण लोग भी बड़ी तीव्रता से गाकर भाव प्रकट कर लेते हैं।

मिथिला क्षेत्र की झरनी परंपरा

मिथिला के मधुबनी, दरभंगा, सुपौल, भागलपुर आदि जिलों में झरनी प्रबल रही है। नेपाल के तराई क्षेत्र (जनकपुर आदि) में भी इसकी परंपरा मिलती है। गाढ़ा सांस्कृतिक मिश्रण होने के कारण यहाँ के लोकगीतों में अक्सर हिन्दू और मुस्लिम दोनों तत्व मिलते हैं। झरनी गीतों में सैयद फुलबरिया (मुस्लिम पवित्र स्थान) और जनकपुर की जानकी (सीता) एक साथ आ जाना इस सांस्कृतिक समागम का उदाहरण है। मिथिला के किसानों और श्रमिकों की लोकश्रुति में ऐसी धारा बहती रही है जिसमें सामाजिक सौहार्द बँधा रहता है।

निम्नलिखित मूल झरनी गीत उद्धृत हैं (मैथिली भाषा में):

हाय-हाय, कहाँ विराजे सैयद फुलबरिया
केये करै रखबरिये हाय?
हाय-हाय, काबा विराजे सैयद फुलबरिया
राजा करै रखबरिये हाय।
हाय-हाय, मालिन के बेटिया, बड़ी रे खेलरिया
आधे राती जाय फुलबरिये हाय।
हाय-हाय, कोने फुल फूलै मालिन भोर-भिनसरबा
कोने फूल फुलै आधी रतिये हाय?
हाय-हाय, बोली तऽ चमेली फूले भोर-भिनसरबा
क्योला फुल फूलै राधी रतिये हाय।
हाय-हाय, कोने फुल लोढ़ली, कबने फूल तोरली
कोने फुल उठे घमसाने हाय?
हाय-हाय, बेली फुल लोढ़ली, चमेली फुल तोड़ली
क्योला फुल उठै घमसाने हाय।
हाय-हाय, खोंइछा भरि लोढ़ली, दउरिया भरि तोड़ली
आबि गेले राजा रखबारे हाय।
हाय-हाय, छेकी लेलकै बटिया, घीची दैलकै खोंइछिया
अँचरा धय बिलमाये हाय।
हाय-हाय, छोडू छोडू आहो राजा अँचरा के खूंटबा
रोबति होतै गोदी के बलकबा हाय।
हाय-हाय, कांचे तऽ उमेरिया मालिन, मीठी तोहर बोलिया
कहां पौले गोदी के बलकबे हाय?
हाय-हाय, गेलिऐ जनकपुर, पुजली सिया जानकी,
वोहे देलखिन गोदी के बकबे हाय।
हाय-हाय, घरबामे होतौ गे मालिन, सासू रे ननदिया
खेलबति होतौ गोदी के बलकबे हाय।
हाय-हाय, सासु मोर अन्हरी, ननदि ससुररिया
रोबति होतै गोदीकै बलबके हाय।
हाय-हाय, छोडू-छोडू आहो राजा, अंचरा के खूंटबा
रोबति होतै गोदी के बलकबे हाय?

इस गीत में "हाय-हाय" पुकार के साथ वसंत के फूलों की तुलना उभरी है, जैसे कोई शहीद लाल सुगबाएँ चुन ले गया हो। परंपरा अनुसार गुज़रने वाले समय का शोक प्रकट है।

हाय-हाय, कहमा जलम लेल लाल एक सुगबा
कहमा जलम दुनू बचबे हाय?
हाय-हाय, परबत जलम लेल लाल एक सुगबा
मक्का जलम दुनू बचबे हाय।
हाय-हाय, कथिये खिअयबइ, हमे लाल एक सुगबा
कथिये खिअबइ दुनू बचबे हाय?
हाय-हाय, ओहरा खिअयबइ हमे लाल एक सुगबा
दुधबा पिलयबइ दुनू बचबे हाय।
हाय-हाय, कथिये पढ़ेबइ हमे लाल एक सुगबा
कथिये पढ़ेबइ दुनू बचबे हाय?
हाय-हाय, पिंजड़े पढ़ेबइ हमे लाल एक सुगबा
इसकुल पढ़ेबइ दुनू बचबे हाय।
हाय-हाय, कहाँ उड़ि जेतइ लाल एक सुगबा
कहाँ चलि जेतइ दुनू बचबे हाय?
हाय-हाय, परबत उड़ि जेतइ, लाल एक सुगबा
मक्का चलि जेतइ दुनू बचबे हाय।

यहाँ लाल गुलाब (सुगबा) व कांचन फूल की बानी करुण भाव से कही गई है, भाव वही है कि लाठी, फूल या खेल की बात हो पर दोनों एक साथ संभव नहीं। यह स्वरूप वीर लता और त्याग की ज्यादतियाँ दर्शाता है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि झरनी गीत में अलंकार, लोकचित भावचित्र और सांस्कृतिक प्रतीक निहित हैं। वास्तविक लोकपरंपरा में यह गीत पीढ़ी दर पीढ़ी गाये जाते रहे हैं और इनकी शब्दावली स्थायी नहीं, समय-समय पर बदलती रहती है।

यद्यपि झरनी नृत्य-गीत पुरुष संचालित है, पर इसके सन्दर्भ में स्त्री जीवन और लोकनारीवाद के अनेक आयाम मिलते हैं। झरनी गीतों में पारिवारिक किरदारों का उल्लेख मिलता है - जैसे मालिन (घर की नन्हीं बहन), सासु (सास), ननद (सास की बहन) आदि। ये अक्सर स्त्री वर्ग के अंतर्गत आते हैं और उनकी पीड़ा, ममता व करूणा झरनी की कथावस्तु में झलकती है। उदाहरणत:

घरबामे होतौ गे मालिन,
सासु रे ननदिया,
खेलबति होतौ गोदी के बलकबे हाय

इनमें सासु-पोती का अनुप्राणित नज़ारा है जो माता-पिता की छवि प्रस्तुत करता है। ऐसी पंक्तियाँ दिखाती हैं कि झरनी में पारिवारिक संस्कृति, मातृत्व और स्त्री संबंधी संवेदनाएँ शामिल हैं।

अन्य मिथिला के लोकनृत्यों व गीतों से तुलना करने पर पता चलता है कि स्त्रियाँ अपनी लोककला के माध्यम से जीवन के अनुभव व्यक्त करती रही हैं। उदाहरण के लिए, जट-जटिन मैथिल लोकनाट्य स्त्रियों की ही है और उसमें वैवाहिक जीवन की व्यथा मुखर होती है। झरनी से भिन्न, झिझिया नृत्य तथा झूमर-झूमरिया गीत भी मुख्यत: महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं, जिनमें देवी उपासना या श्रम-जीवन की झलक मिलती है। इन तुलनात्मक विधाओं के संदर्भ में देखा जाए तो झरनी पुरुष-प्रमुख नृत्य होते हुए भी, इसके गीत स्त्री शक्ति, त्याग और मातृत्व जैसे पारस्परिक विषयों से प्रभावित हैं। लोक नारीवाद के दृष्टिकोण से कहा जा सकता है कि झरनी लोककला के माध्यम से मिथिला की स्त्रियाँ अप्रत्यक्ष रूप से अपनी सांस्कृतिक उपस्थिति दर्ज कराती हैं - चाहे वे प्रत्यक्ष गायन न करें, किन्तु इनके अनुभव व प्रतीक इनके गीतों में प्रतिविंबित होते हैं।

उन्नीसवीं सदी के लोक-शोधकारों ने जहाँ झरनी जैसी लोक-परम्पराओं का स्वरूप दर्ज

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.022

किया, वहीं आज झरनी के अस्तित्व को आधुनिक युग की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। ग्रामीण जनजीवन में बदलाव, धार्मिक प्रथाओं का स्वीकृत संदर्भ में सीमित होना, युवा वर्ग का शहरीकरण आदि कारणों से पारंपरिक धरोहर लुप्तप्राय होती जा रही है। इसके अतिरिक्त भाषाई प्रसार में भी कमी आई है; मैथिली व स्थानीय बोलियाँ पढ़ने-लिखने वाले की संख्या कम है। इन सब कारणों से स्थलीय लोकशिक्षा और लोककलाओं का हस्तांतरण बाधित हुआ है।

संरक्षण की दृष्टि से आवश्यक है कि झरनी गीतों एवं नृत्यों का दस्तावेजी संकलन बनाया जाए और मौखिक परंपरा को सुनियोजित रूप से दस्तावेजीकृत किया जाए। आज डिजिटल माध्यम ने लोकगायक-अभिलेख को व्यापकता दी है। उदाहरणार्थ, यूट्यूब व सोशल मीडिया पर झरनी गीतों के रिकॉर्ड प्रकाशित हो चुके हैं। इससे नए श्रोताओं तक पहुंच तो बढ़ी है, पर साथ ही फ्रीलांस स्वरूप में कई कृति उपलब्ध होने से ग्राफिक व पारंपरिक सूक्ष्मता कमजोर हो सकती है। इसलिए आवश्यकता है कि लोककला संस्थाएँ, विश्वविद्यालय और सरकार मिलकर अखिल भारतीय लोकसंगीत योजनाएं बनायें, झरनी गीतों को ओडिशन द्वारा नहीं, समुदाय से जोड़कर पारम्परिक स्वरूप में डिजिटल अभिलेख में सुरक्षित करें। साथ ही, फ़िल्मों, रेडियो व नाटकों में मिथिला के लोकगीतों की भागीदारी बढ़ाकर नई पीढ़ी को लोकविधाओं की समझ दी जानी चाहिए। अन्य राज्यों और विदेश में बसे मिथिला वासी समुदायों को भी जोड़ा जाना चाहिए जिससे झरनी लोक-परंपरा अंतरराष्ट्रीय जन-जागरुकता पा सके। कुल मिलाकर, समकालीन युग में सूचना प्रौद्योगिकी व सामुदायिक भागीदारी द्वारा झरनी की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करना सभी का कर्तव्य है।

भारत-विशेषकर बिहार-मिथिला क्षेत्र- में लोकनृत्यों की अनेक विधाएं हैं। झरनी की तुलना अन्य प्रमुख लोकविधाओं से करने पर इनके उद्देश्य, माध्यम व संरचना में अंतर स्पष्ट होते हैं:

झरनी और झिझिया: झरनी पुरुषों का युद्ध-प्रेरित लोकनृत्य है, जो मुहर्रम के अवसर से जुड़ा है, जबकि झिझिया पूरी तरह महिलाओं का लोकनृत्य है, जो दुर्गा पूजा-परिवार की रक्षा हेतु की जाती है। झिझिया में महिलाएँ सिर पर मटके में जलती हुयी मद्धम दीप जलाकर गीट-भरती हैं (जहाँ मातृत्व-सुरक्षा की कामना होती है)।

झरनी और जट-जटिन: झरनी युद्धपथ की गरिमा और करुण दर्द है; इसके विपरीत जट-जटिन मैथिल स्त्रियों का लोक-नाट्य है, जिसमें सावन-भादो में नृत्य और गीत (प्रेम तथा मानसून स्तुति) होती है। जट-जटिन में स्वर की बजाय अभिनय और नाटकीय संवाद अधिक हैं तथा यह महिलाओं की ही प्रस्तुति द्वारा किया जाता है।

झरनी और झूमर: झूमर बिहार-मिथिला के आदिवासी व ग्रामीण प्रेम-प्रकृति गीत हैं, जहाँ स्त्री-पुरुष मिलकर हाथों में हाथ लेकर अर्धवृत्त में झूमते हैं। इसमें मुख्यत: वादन होता है और विषय कृषि, प्रेम, श्रम आदि जनसामान्य हैं। झरनी से इसका ज़बरदस्त अंतर है कि झूमर में मिलन-आनंद है, संगीत साधारण और नृत्य खुले वातावरण में होता है, जबकि झरनी एक सामूहिक श्रद्धा-अभिव्यक्ति है।

झरनी और सोहर/चैती आदि: पवनिया (फाग/सोहर) एवं चैती जैसे लोकगीत मुख्यत: हिन्दू कृषि-ऋतु एवं जन्मोत्सव गीत हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष वैवाहिक या प्राकृतिक आनंद व्यक्त करते हैं। झरनी इनसे धर्मीय तथा सामूहिक भाव में भिन्न है।

अत: झरनी अन्य लोकनृत्यों की तुलना में (क) सामुदायिक धार्मिक श्रेणी का है(मुहर्रम के

दिन),(ख) केवल पुरुषों का समूह प्रस्तुति है और (ग) इसमें बांस की झरनी जो बांसुरी या ढोल जैसे वाद्य नहीं बल्कि कठोरता की ध्वनि देती है, का प्रयोग अनूठा है। इन तुलनात्मक बिंदुओं से स्पष्ट होता है कि झरनी मिथिला लोक परंपरा का एक विशिष्ट, धार्मिक और सामूहिक लोक-विधानिक स्वरूप है, जो अन्य लोकविधाओं से अपने उद्देश्य और प्रस्तुति की दृष्टि से भिन्न है।

झरनी जैसे पारंपरिक लोकसंगीत प्रत्यक्ष लिखित नहीं होता,यह मौखिक परंपरा के माध्यम से ग्रामीण समुदायों तक संचारित हुआ। विकिपीडिया के अनुसार, बीसवीं सदी से पहले ग्रामीण मजदूर कम पढ़े-लिखे थे और गीतों को स्मृति से सीखा करते थे। इसी कारण लोकगीतों में अत्यधिक प्रकार आती है, एक ही गीत के कई रूप सामान्य हैं और गायक रचनात्मक रूप से सीखे गीतों में परिवर्तन कर लेते हैं। झरनी गीतों के भी कई स्थानीय स्वरूप पाए जाते हैं, जिनमें शब्द एवं ताल में थोड़े अंतर होते हैं, यह मौखिक प्रक्षेपण की स्वाभाविक विशेषता है।

सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से झरनी लोकविधा मिथिला क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक चेतना और लोकधारणा की अभिव्यक्ति है। यह क्षेत्रीय पहचान को पुष्ट करती है क्योंकि मिथिला की लोककला स्वयं में मिथिलांचल के प्राकृतिक-विरासत, देव-पूजा और सामाजिक मूल्यों का प्रतिबिंब है। झरनी जैसे लोकगीत समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह दिखाते हैं कि कैसे धर्म और लोक परंपरा का मेल होता है: यह एक 'संस्कृति की हाइब्रिड' स्थिति है जहाँ हिन्दू (जनकपुर-सीता) और मुस्लिम (कर्बला-सैयद) प्रतीकों का सम्मिलन है। इसी परिप्रेक्ष्य में, झरनी लोकगीतों को इंटरडिसिप्लिनरी अध्ययन का विषय माना जा सकता है,जहाँ वे मानवजाति की सामूहिक स्मृति और रस-भाव दोनों को संजोते हैं।भारतीय लोकपरंपरा में झरनी जैसी विधाएँ उन अवचेतित सामाजिक आदतों को सामने लाती हैं जो औपचारिक इतिहास में नहीं मिलतीं, इन्हें समझकर अनुसंधानकर्ता सामाजिक-लोकशास्त्रीय विमर्श विकसित कर सकते हैं।

अत: झरनी लोकविधा मिथिला की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का अनूठा धरोहर है। इसकी ऐतिहासिक-मौखिक जड़ें, सामाजिक संघर्षाभिप्राय, और सांस्कृतिक समन्वय में प्रवाह इसकी महत्ता बताते हैं। संरचनात्मक दृष्टि से यह लोकगीत-नृत्य समूह पुरुषों द्वारा मुहर्रम के अवसर पर प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें पारिवारिक मूल्य, मातृसंवेदना और सामूहिक श्रद्धा की झलक मिलती है। स्त्री-अनुभव की भूमिकाएं इसमें अप्रत्यक्ष रूप से अंतर्निहित हैं, जबकि परंपरा के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि झरनी अन्य लोकशैलियों से भिन्न स्वरूप और अभिव्यक्ति रखता है। मौखिक परंपरा और लोकविधा के सैद्धांतिक दृष्टिकोण से इसकी तर्जनी और अध्ययन आवश्यक हैं। समकालीन युग में झरनी का खयाल रखने और डिजिटल युग में सुरक्षित रखने की योजनाएँ बनाकर इसे आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाना आज की आवश्यकता है।

संदर्भ

- नारायण पुष्पम (2013). झरनी मुहर्रम का प्रमुख गीत. ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,दरभंगा
- कविता कोश. (2014). हाय-हाय, कहमा जलम लेल (मैथिली लोकगीत). मैथिली लोकगीत संग्रह, ऋतु एवं पर्वगीत गीत (कविता कोश).
- विकिपीडिया. (बिना वर्ष). पारंपरिक संगीत [Traditional Music]. विकिपीडिया, मुक्त विश्वकोश.
- शुक्ला,एन. (1990). भारतीय लोकसंगीत और उसकी विशेषताएँ (प्रकाशन).

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.023

Pandit Jasraj's Haveli Sangeet: Bridging Devotion and Stage

Anaida Naik* Dr. Shyama Kumari**

Indian Music is a triad of gaayan (vocal), vaadan (instrumental), and nritya (dance). These three have been India's cultural and spiritual life for centuries. Music is more than just an art form; it has served as a pathway to devotion and inner awakening. One of the many forms of devotional music, Haveli Sangeet, stands as a rare devotional form that is associated with Pushtimarg temples. Originally performed in havelis as an offering to Lord Krishna, this tradition embodies Bhakti Rasa, set in classical ragas and talas. Over time, the essence of the haveli sangeet became diluted because of the shift from temple to concert stage.

Pandit Jasraj, an eminent artist of the Mewati Gharana, revitalised Haveli sangeet by presenting it in a concert framework while still preserving its spiritual sanctity.

This research paper aims to explore how Pandit Jasraj's musical vision and performance greatly impacted the preservation and popularisation of Haveli Sangeet, ensuring its relevance beyond the temple setting.

Keywords *– Pandit Jasraj, Mewati Gharana, Haveli Sangeet, Devotion, Pushtimarg*

The landscape of Indian Classical Music has always been deeply intertwined with spirituality and devotion, where this artistic expression becomes a medium of worship. Every note, every raga, and every lyrical expression is not merely an aesthetic pursuit, but is conceived as an act of worship, a bridge between the human and the divine. Hindustani Classical Music evolved with this conception in mind, because of which it came to be regarded as a means of Salvation (Moksha). One of the finest and most vivid examples of this devotional expression is Haveli Sangeet.

* Research Scholar: Department of Vocal Music, Faculty of Performing Arts, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Email: naikanaida53@gmail.com

** Assistant Professor, Department of Vocal Music, Banaras Hindu University, Email: shyama.vocal@bhu.ac.in

Origin of Haveli Sangeet

The Haveli Sangeet tradition originated within the Pushtimarg Sect in the 16th century. This sect was established by Vallabhacharya. Lakshman Bhatt, a resident of Kaankrava village of South India, was blessed with a son named 'Vallabh' during his stay in Kashi. This child, later revered as Vallabhacharya, established a new branch of the Vaishnava faith, which, over time, came to be known as the Pushti Sampradaya (Satybhan).

The foundation of the Pushti Sampradaya was not based solely on theory. It gradually shaped into a unique, rich culture. The core principle of this tradition was seva (devotional service), in which music assumed a central role. Over time, this devotional practice evolved into a musical tradition known as Pushtimargiya Sangeet. 'Pushtimargiya' meaning the 'Path of Grace' (Interview by Pandit Jasraj and Pandit Askaran Sharma on Haveli Sangeet in Sangeet Sarita). It was considered the ultimate service to Lord Krishna.

The word Haveli is a Persian word that means a grand and beautiful residence designed with elegance and comfort in mind (Chamak Laal Chabeel Das). However, in the Pushtimarg sect, temples in Gujarat came to be called havelis. As a result, the music performed in these temples came to be known as Haveli Sangeet.

The deeply emotional and traditional singing of Krishna's divine pastimes was used as a support, through which, on one side, a current of devotion to Krishna began to flow. On the other hand, the development of Vishnu hymns and kirtans took place within the framework of musical melody and rhythm.

Musical Style of Haveli Sangeet

Founded by Vallabhacharya, this musical style gained recognition when it was primarily popularized by the eight renowned poet–singers. These singers were a group of 16th-century devotional poets associated with the Pushtimarg Tradition. They were given the name 'Ashthchaap', meaning 'Eight Seals', symbolizing their status as divinely authorized poets who carried the seal of Lord Krishna's approval. This group comprised four disciples of Vallabhacharya – Surdas, Paramananddas, Krishnadas, and Kumbhandas – and four disciples of Vallabhacharya's son, Vitthalanath – Govindswami, Nanddas, Chatiswami, and Chaturbhuj Das.

Haveli sangeet comes from the deep traditions of drupad, dhamaar, and prabandh gayaki; it also includes exponents of bhajan, kirtan, etc. It is mainly constructed on the drupad style with compositions related to temple rituals, festivals, and daily worship. This style was performed

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.023

daily in temples, which uplifted the environment spiritually. The compositions of Haveli Sangeet are mainly in Brajbhasha, the language of Krishna's homeland.

Haveli Sangeet has descriptions that are deeply devotional and centered around the life of Lord Krishna. It explores the different aspects of his divine play (leela). It contains pad (lyrics) that depict different aspects like daily rituals of worship, episodes from Krishna's childhood, his mischief in Gokul, stealing butter, playing with gopis and gopas, seasonal celebrations (Holi, Janamshthami), nature, and the sanctity and beauty of Vrindavan, Krishna's emotional state of love, longing, and separation.

In Haveli Sangeet, Lord Krishna is worshiped in eight types of seva (service). The eight types of seva, also known as the 'Ashtayam Seva' (Satybhan), represent a daily ritual that devotees perform cyclically. These eight seva or services are connected to a specific moment in Krishna's day, from early morning awakening to night rest. The services are as follows:

1. Mangla: This marks the very first darshan of Lord Krishna, symbolizing his awakening at dawn. The temple doors open to reveal the deity freshly bathed and still in a dreamy, peaceful state.
2. Shringaar: During this service, Krishna is adorned with beautiful garments, ornaments, and fragrant flowers.
3. Gwaal: This is when Krishna, the divine cowherd, sets out to graze the cows.
4. Rajbhaog: This is the main meal offering of the day, after which Krishna is believed to take rest.
5. Utthapan: In this seva, Krishna is awakened from his past lunch nap.
6. Bhog: This is another offering of food, lighter and mostly a seasonal fruit.
7. Sandhya Aarti: This evening service welcomes Krishna back from the forest. The lamps are lit, songs are sung, and this worship has a festive atmosphere to represent his safe trip back home.
8. Shayan: This is the last service of the day before Krishna rests for the night. He is made ready for the bed, draped in soft attire, lullabies are sung, and the temple closes.

The ritual cycle of the eight daily sevas established the foundation for the rich devotional musical traditions. Haveli sangeet was mainly confined within the temple walls. It was not very famous but still influenced the devotional repertoire of North India. It flourished as a unique art form closely tied to Lord Krishna. The tradition began to fade through the medieval

and modern periods due to vandalism of temples, erosion of patronage, and changes in community worship. Modern influences, especially Bollywood and folk music, have largely replaced traditional temple music. Institutional neglect led to a lack of trained mentors, and schools left only a handful of practitioners. Over time, as Indian Classical Music evolved and the center of patronage shifted from temples to royal courts and public performances.

Amid this decline, Pandit Jasraj emerged as a crucial revitalizer. He not only preserved but also popularized haveli sangeet through performances, musical recordings, educational initiatives, etc.

Pandit Jasraj and the Revival of Haveli Sangeet

Pandit Jasraj played an exceptional role in the revival and global appreciation of Haveli Sangeet, blending deep devotional feeling with outstanding classical expertise. Pandit Jasraj's major influence came from Baba Shyam Manohar Goswami Maharaj, a distinguished expert in this sacred tradition. His profound knowledge of the classical and religious repertory was melded by the combination of guru-disciple traditions and familial instruction, which allowed him to maintain, create, and disseminate Haveli Sangeet with remarkable emotional depth and authenticity.

He was among the very few Indian classical musicians who performed Haveli Sangeet in numerous temples across India, thereby bringing this ancient form of devotional music from private temple rituals to the concert stage and recorded media.

Pandit Jasraj revived this tradition and introduced it to the concert audiences by performing classical haveli sangeet compositions globally. Pandit Jasraj researched, revived, and adapted Haveli Sangeet for the concert stage without compromising its devotional essence. He invested years collecting and learning traditional padas, kirtans, and bandishes from surviving temple musicians and scholars.

His contribution began with his landmark 1976 performance of the 'Sur Padavali' on the occasion of Surdas's 500th birth anniversary, which was released as an LP and exposed a broader audience to Haveli Sangeet. Under the guidance of temple experts and scholars, Pandit Jasraj not only performed traditional compositions but also explored the musical vocabulary of Ashtachhap poets such as Surdas, Nanddas, Kumbhandas, and Krishnadas. He masterfully set their padas and bandishes to classical ragas, introducing rare ragas specific to Haveli Sangeet, like Hori Sarang, Haveli Basant, Malav, and Sameri, that were otherwise almost forgotten.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.023

To spread Haveli Sangeet to a wider audience, he released Haveli Sangeet albums through Navras Records in collaboration with Sony Music India. A Varanasi recital organized by Kashi Sangeet Samaaj also released a full-length audio cassette with Pandit Jasraj's Haveli Sangeet sung in Brajbhasha. Some notable international concerts- such as at Kensington Town Hall, London in 2000 – featured Haveli Sangeet along with talented accompanists like Pandit Bhawani Shankar (Pakhawaj), Kedar Pandit (Tabla), Smt. Kala Ramnath (Violin) and Mukund Petkar (Harmonium).

He revolutionized the Mewati Gharana style by infusing it with additional elements from Haveli Sangeet, making this tradition accessible to the listeners. Additional elements, like the use of Bhakti Ras in the singing style, a lot of bandishes related to Shri Krishna, use of a lot of murki, kan swar, and small phrases of taan.

Significant Compositions

Pandit Jasraj's commitment to and mastery of the devotional music tradition devoted to Lord Krishna is exemplified by his famous compositions in Haveli Sangeet. His ability to combine traditional raga structures with profound spiritual expression is demonstrated by these pieces, which include his adaptations of ancient Haveli bhajans and creations like "Maai Mero Man Mohyo" and "Laal Gopaal Gulaal Hamari".

His music preserves the religious spirit of Haveli Sangeet by elevating the listener's experience from aesthetic enjoyment to divine contemplation, as seen by these examples.

Maai Mero Man Mohyo

Raag- Hori Sarang
Taal- Deepchandi
Sthayi:
Maai mero man mohyo saware mohe
Ghar angna na suhaave maai
Antra:
Jyon jyon aankhin dekhiye
Tyon tyon jiya lalchaaye maai

This Haveli Sangeet composition expresses the deep emotional surrender and longing of a devotee mesmerized by Krishna's divine beauty. In the sthayi, the devotee confides in the mother, saying that Krishna has completely captivated the heart, making even the home and surroundings seem dull without him.

The antara describes how each glimpse of Krishna only makes the heart yearn for him more. This piece reflects the intimate bhakti tradition of Haveli Sangeet and showcases how divine love is expressed with simplicity, tenderness, and profound feelings of devotion.

Laal Gopaal Gulaal Hamari

Raag- Haveli Basant (mixture of Raag Hemant and Raag Basant)

Taal- Deepchandi

Sthayi:

Laal gopaal gulaal hamari
Aankhin me jin daaro ju

Antra:

Badan chandrama naina chakori
In antar jin paaro ju

The sthayi portrays the image of the radiant, child Gopal, whose divine beauty captivates the eyes of his devotees. He is playing with gulaal, and the devotees are asking him not to put gulaal (coloured powder) in their eyes, because if he does so, they will have to close their eyes, and for that second, they will not be able to see him.

The antara continues this imagery, comparing Krishna's face to the moon and his enchanting eyes to the chakori bird that gazes at it with love.

This composition portrays a beautiful blend of his mischievous nature and the devotee's love for him.

Rani Tero Chirjeeyo Gopal

Raag- Yaman

Taal- Deepchandi

Sthayi:

Rani tero chirjeeyo gopal
Begi badho badhi hoya viradh lat

Antra:

Upaji paryo yeh koonkhi bhagya bal
Samudra seep jaise laal
Sab gokul ke pran jeevan dhan
Bairin ke ursaal

In the sthayi, the devotee offers a blessing, wishing that Krishna's consort (Rani) and Gopal himself remain ever radiant and blessed.

The antara describes the divine fortune that arises with Krishna's presence, comparing it to a precious gem found within the sea's depths and referring to him as the life and treasure of all of Gokul. This composition reflects the essence of Haveli Sangeet, elevating art and devotion through the blend of classical music and spirituality.

Mrignayani Ko Yaar Naval Rasiya Mrignayani

Raag- Des

Taal- Keherwa

Sthayi:

Mrignayani ko yaar naval rasiya Mrignayani

Antra:

Atlas ko vaako lehengo sohe
Jhumak saari more man basiya mrignayani

This Haveli Sangeet composition, "Mrignayani Ko Yaar Naval Rasiya Mrignayani," set in Raag Des and Taal Keherwa, is a devotional and romantic portrayal of Krishna's divine charm. The sthayi expresses the admiration of Mrignayani (Krishna's beloved) for the enchanting and divine young Krishna.

The antara describes the beauty and grace of her attire, symbolizing devotion blended with aesthetic beauty. The piece reflects Pandit Jasraj's style of combining classical precision with bhakti (devotion),

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.023

typical of the Haveli Sangeet tradition.

Gokul Me Baajat Kahan Badhai

Raag- Kedar
Taal: Addha Teentaal
Sthayi:
Gokul me baajat kahan badhai
Peer bhayi hain nand ju ke dwaar
Ashth mahas siddhi aayi
Antra:
Bhramadik rudradik jaaki
Charan renu nahi paayi
Soyi nand ju ko put kahavat
Kautuk suno mori maayi

This composition invites listeners to step into the joyous streets of Gokul. The scene rings with laughter, music, and the excitement of the arrival of Krishna.

Through the words of the antara, everyone wonders how the divine chose to be a child in their midst, making the extraordinary accessible. This song doesn't just narrate a festival; it creates a feeling of togetherness, wonder, and love for the divine that brings the listeners together.

Conclusion

In conclusion, Haveli Sangeet reflects centuries of cultural legacy that honor Lord Krishna's glorious pastimes and is a magnificent fusion of spiritual devotion and classical musical perfection. The tradition has declined due to shifting sociopolitical environments and dwindling sponsorship, but visionary artists like Pandit Jasraj are largely responsible for its resurgence. With a steadfast commitment, he not only brought the Ashtachhap poets' classical compositions back to life but also breathed new life into them and added emotional depth, making Haveli Sangeet relevant and accessible to audiences worldwide today. Haveli Sangeet maintains a vibrant yet niche presence in 2025, with ongoing performances in temples, cultural festivals, and urban communities like Mumbai's Bhuleshwar, where the tradition persists after 250+ years

Beyond his own distinguished career, Pandit Jasraj's legacy endures vibrantly via his many pupils who go on spreading this precious art form with the same zeal and sincerity. These pupils, who received training in his distinctive fusion of technical proficiency and spiritual expression, have taken on the role of Haveli Sangeet's torchbearers, performing worldwide and igniting new enthusiasm among both musicians and listeners. Some of the torchbearers are Pt. Rattan Mohan Sharma, Smt. Suman Ghosh, Smt. Tripti Mukherjee, Pritam Bhattacharjee, Gargi Siddhant, Kala Ramnath, Pt. Gautam Kale, Ankita Joshi, Dr. Vilina Patra, Sai Prasad Panchal, etc.

Because of their continued dedication, Haveli Sangeet's spiritual and musical core continues to be a vibrant, living tradition that unites the past and present and inspires devotion

and artistic brilliance for years to come.

Rrferences

1. Budhiraja, Sunita. Rasraj: Pandit Jasraj. Vani Prakashan, 2019.
2. Budhiraja, Sunita. Saat Suro Ke Beech. Vani Prakashan, 2017.
3. Sharma, Satybhan. Pushtimargiya Mandiro Ki Sangat Parampara: Haveli Sangeet. Radha Publications, 2010.
4. Sharma, Neera. Ashthachaap Sangeet: Ek Vishleshan. Navjeevan Publications, Nivaai.
5. Nayak, Chamak Laal Chabeel Das. Ashtachaap Bhakti Sangeet: Udhbhav aur Vikaas Khand (Ashthchaap Sangeet Kala).
6. Kumari, Sneha. "Pandit Jasraj ka Vyaktitva evam Krititva: Ek Vishleshnatmak Adhyayan." PhD thesis, Tilka Manjhi Bhagalpur University, 2021.
7. Rastogi, Poorti. "Vartaman Samay mein Haveli Sangeet ka Swaroop evam Uski Gaayaki ke Vaishishtya ka Anushilan." PhD thesis, Chhatrapati Sahuji Maharaj University, 2005.
8. Sontakke, Chaitra, and Arati N Rao. "Propagating and Preserving Havēlī Music." Naad-Nartan, vol. 12, no. 1, 2024.
9. Mathur, Priyaankaa. "Rediscovering Haveli Sangeet: A Journey Through India’s Ancient Temple Music." The Times Express, 26 Aug. 2024, indianexpress.com/article/lifestyle/art-and-culture/india-ancient-temple-music-haveli-sangeet-9529277.
10. Mishra, Dr. Nidhi. "Haveli Sangeet: The Tradition of Pushtimargiya Kirtan." Indica Today, 7 Oct. 2023, www.indica.today/research/conference/haveli-sangeet-the-tradition-of-pushtimargiya-kirtan/.
11. “Interview by Pandit Jasraj and Pandit Askaran Sharma on Haveli Sangeet in Sangeet Sarita in 2020.” YouTube, uploaded by Sangeet Sarita, 2020, https://youtu.be/YuBKh2sGn1E?si=Qk2T0EGOA6QzRjnn.
12. Maai Mero Man Mohyo Saanware Mohe.” YouTube, uploaded by Gopala Bhakti, 23 Jul. 2014, https://youtube.com/watch?v=QaGW6YjB6Mk&si=VbUUbbeZCqaLUnON
13. Laal Gopal Gulaal Hamari.” YouTube, uploaded by Gopala Bhakti, 12 Sept. 2024, https://youtu.be/UnWhDpWfy1E?si=1saui BLAfJZ7dWkw
14. Rani Tero Chirjeeyo Gopal.” YouTube, uploaded by Music Today, https://youtu.be/PnUJdzA-c0g?si=mFzB_0Lmvn3DGd9K
15. Mrignayani ko Yaar Naval Rasiya.” YouTube, uploaded by Gopala Bhakti, 13 Apr 2017 https://youtu.be/ZY6Ls1_DRtA?si=riN520JkkJSOxG22
16. Gokul Mein Baajat Kahan Badhaai.” YouTube, uploaded by Music Today, 29 Dec 2015, https://youtu.be/y1xrUna0mZs?si=y_-S3LVm4qMiJ5sw

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.024

Suhasini Koratkar - The Silent Torchbearer of the Bhendi Bazaar Gharana

Deepika Gadhekar*, Prof. Suniti Dutta**

ABSTRACT

Hindustani Classical Music is one of the oldest and most sophisticated traditions. Rooted deeply in the oral traditions, the Gharana System serves as the primary framework for the preservation and evolution of a style. Each gharana has its own cultural identity, a unique aesthetic, and stylistic innovation/approach.

Widely known for its intricate taan patterns, its focus on lyrical purity and melodic structure, the Bhendi Bazaar Gharana has been celebrated in the Guru-Shishya Gharana Parampara.

Within this tradition, Suhasini Koratkar emerged as a significant figure. She became a silent torchbearer of the gharana; her contributions to maintaining the stylistic purity of the gharana are profound. A devoted practitioner and teacher, she ensured that the gharana's repertoire is kept alive with the same essence for future generations.

This research paper explores and brings into light the vital role that she played in preserving the musical heritage of the gharana, which has often been overlooked. It also seeks to reaffirm her place as a quiet yet powerful custodian of the Bhendi Bazaar Gharana.

Keywords *– Bhendi Bazaar Gharana, Suhasini Koratkar, Guru-Shishya Parampara, Hindustani Classical Music, tradition*

Introduction

Indian classical music is a guru-centric tradition, and among the four Vedas, the Sama Veda is regarded as the "Veda of Music." It features the melodious rendition of hymns from the Rigveda, articulated through carefully structured notes and rhythms. The term "Sama" itself denotes melodious chanting

*Research Scholar : Department of Music and Fine Arts, University of Delhi
E-mail:deepikagadhekar6@gmail.com
**Assistant Professor : Department of Music and Fine Arts, University of Delhi

or musical recitation. In ancient times, sages imparted these Samas to their disciples through the oral tradition (guru-shishya parampara), wherein the powers of listening and memorization (śruti and smṛti) ensured the preservation of the purity of intonation, rhythmic accuracy, and sanctity of pronunciation across generations.In the Nāṭya Śāstra, Bharata Muni provided a comprehensive framework while discussing concepts such as Shruti, Swara, Rasa, Kaku, and others. As a revered teacher, he imparted this knowledge to his disciples, and through them, the musical tradition evolved as an oral transmission system. This tradition eventually came to be known as the Guru–Shishya Parampara, which has preserved the essence and purity of music across generations.

As centuries passed, this oral tradition evolved, adapting to the cultural and social context. During the Mughal period, Indian music entered a different phase. The patronage of the Mughal courts gave Indian musicians and teachers the space to experiment, create, and innovate a different kind of music.

It was during this era that this guru-shishya parampara came to be known as the gharana. The expression gharana originates from the Hindi term ghar. Socially, it refers to a group or family residing Grtogether under one roof, who characterize customs, traditional values, and artistic vision passed down from one generation to the next. Gradually, this inherited characteristic was shared from the distinctive hallmark lineage. Each gharana maintains its own musical principles and manner of rendition, introduced by its founder and refined through successive exponents. The naming of a gharana is generally derived from the region associated with its founder. Thus emerged gharanas such as Gwalior, Agra, Jaipur-Atrauli, Patiala, and Bhendi Bazaar. Within the tradition of the Bhendi Bazaar Gharana, its musical lineage originates from Ustad Dilawar Hussain Khan and his three sons — Ustad Chajju Khan, Ustad Nazir Khan, and Ustad Khadim Hussain Khan. All three brothers received their initial musical education under the guidance of their father. To further enhance their artistic proficiency, they later took taalim under Ustad Inayat Khan of the Rampur-Sahaswan Gharana and then went to Jaipur, where they pursued advanced training in Dhrupad from Ustad Inayat Khan of the Dagar Gharana.

In the year 1870, they shifted to Mumbai and settled in an area called Bhendi Bazaar. The brothers evolved a unique vocal style and earned recognition as renowned vocalists from the Bhendi Bazaar region. Their style was called the Bhendi Bazaar Gayaki. This gharana has produced many eminent disciples, condensed in the three-lineage chart given below.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.024

Table - 1

Chart showing Gurus and disciples from 1st to 4th generation of Bhendibazar Gharana

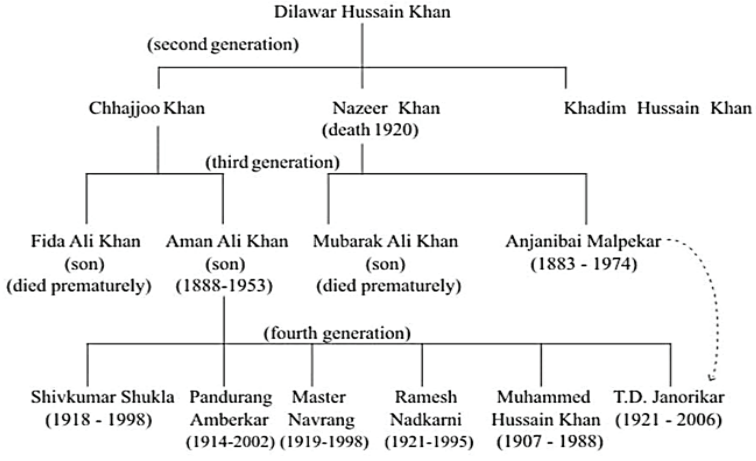

Table - 2

Chart showing those disciples who took guidance from stalwarts of Bhendibazaar Gharana for some time, but developed their own style and pursued classical or light music or chose to work in Film Industry.

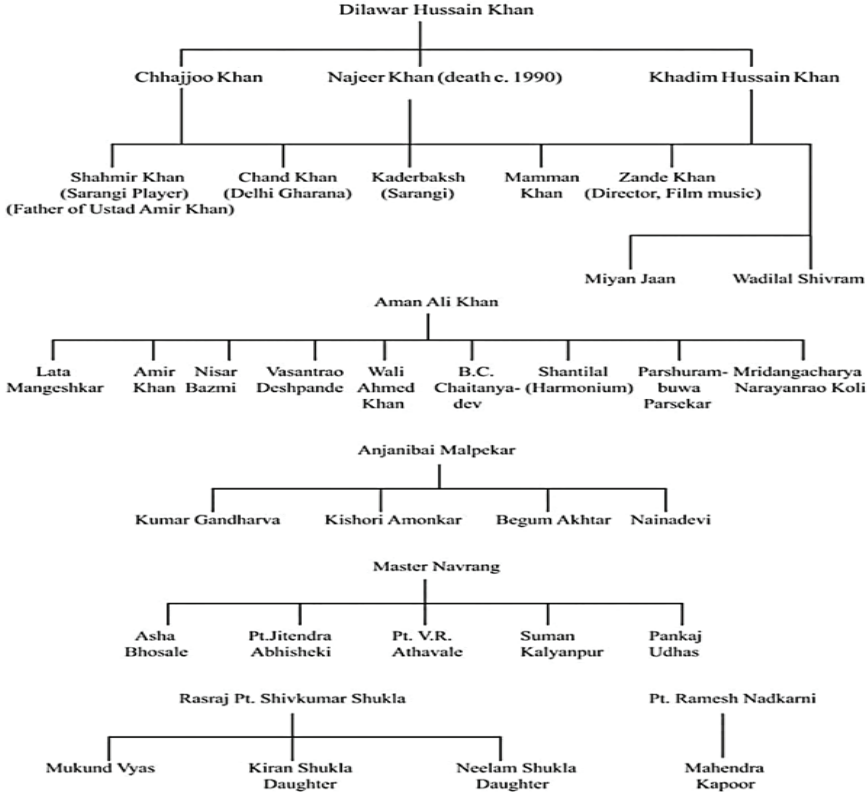

Table - 3

Disciples of the 5th generation of Bhendibazar Gharana

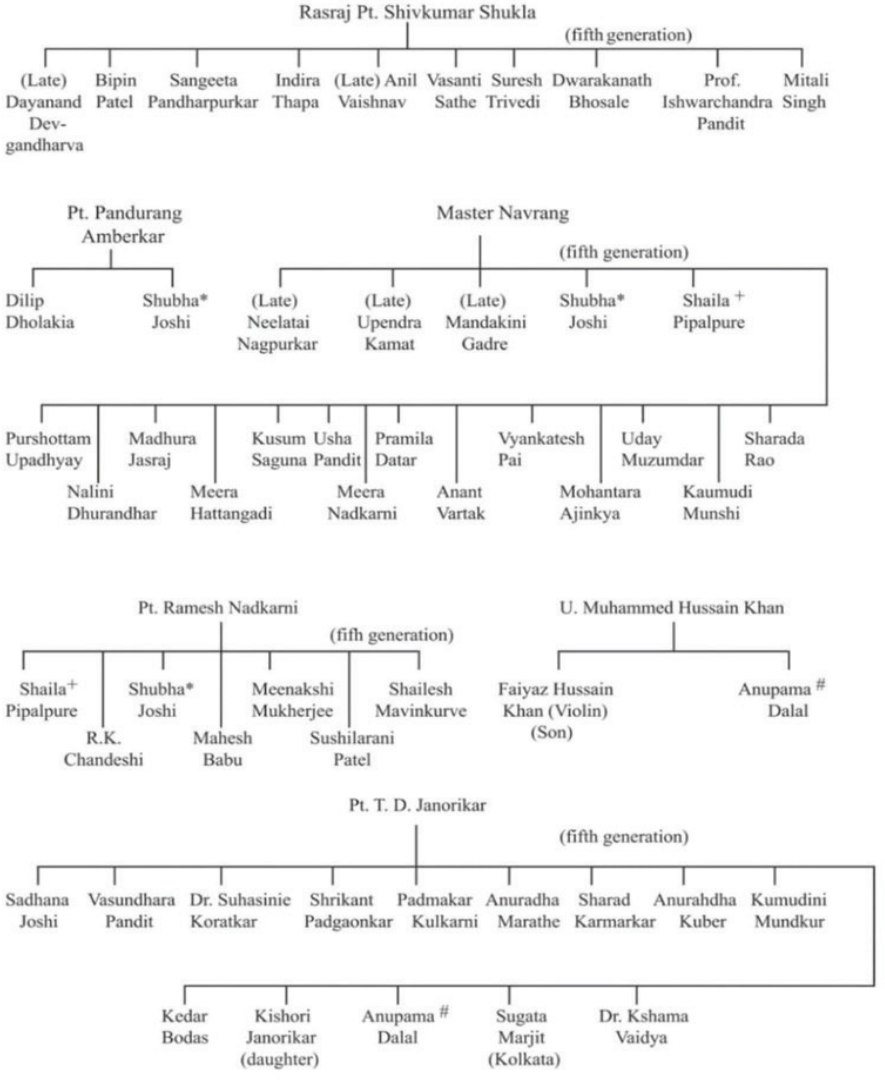

Early Life and Musical Training

Dr. Suhasini Koratkar, also known as Niguni, was a brilliant musician and a thoughtful, thought-provoking musicologist, writer, composer, and respected guru. Born on November 30, 1944, she was one of the most dedicated musicians. She hailed from a middle-class household enriched with cultivated culture and sensibility. Classical music greatly appealed to Suhasini Tai's family. Her father,

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.024

Ramrao, was a profound music lover, and her mother, Sarla Tai, received training in harmonium, violin, and singing, creating a strong musical environment for Suhasini Tai.

Her father, Ramrao Saab, served as a technical officer in the Indian Air Force. Because of the constant transfers associated with his service, the family relocated frequently.

Suhasini Tai pursued her initial studies in Bangalore, Mumbai, and Pune. In 1961, she completed her graduation in Economics from Fergusson College, Pune. Later, her research work on the spiritual significance of music earned her the prestigious degree of Sangeetacharya in 1968.

When the family moved to Pune, she came under the structured guidance of the illustrious guru, Pandit Trimbakrao Janorikar, of the Bhendi Bazaar Gharana. Tai's musical personality was profoundly shaped by her training under the strict yet inspiring guru, Pandit Trimbakrao Janorikar. He taught her all the hallmarks of the Bhendi Bazaar Gharana. He not only trained her in the techniques of music but also instilled in her a deep sense of the inner values of the Bhendi Bazaar Gharana, which include expressive alaap, flowing meend, rhythmic clarity, and delicate expression of bandishes.

She learned music from her guru with deep dedication and sincerity, and after 7–8 years of intense riyaaz (rigorous practice), she stepped onto the concert stage for the first time.

She was a fabulous performer, widely appreciated for her elegant stage persona, expressive musicality, and profound artistic sensitivity. She reached audiences worldwide as she performed at numerous international festivals, showcasing the rich legacy of Hindustani classical music and the Bhendi Bazaar Gharana, embodying its aesthetic purity and traditional ethos. With immense grace, she earned a reputation as a renowned and respected artist of Indian classical music.

Role as a Key Promoter

Suhasini Koratkar was deeply committed to preserving the legacy of her gharana. Realizing that its traditions were slowly fading, she recognized the need to create greater awareness among people to ensure its revival and continuity. To achieve this, she carried forward the sammelan pratha established by her guru and introduced her own initiatives to sustain and promote the gharana's rich musical heritage. She has made numerous significant contributions towards the advancement of her musical tradition, notably through her profound dedication as a guru. Shastri Koratkar, as a Guru, upholds the true essence of the Guru-Shishya Parampara, blending discipline with a deep bond, personal guidance, and the

holistic transmission of knowledge. She focused on the improvisation of a raga through the use of khandmeru and appropriate combinations of notes to highlight its beauty. She emphasized improving tonal clarity, swarasuddhata (purity of notes), meticulous control of laya (rhythm), proper breath control, and the use of beautiful notes, along with ornaments such as gamak, meen, and sapat taan. To spread awareness, preserve the legacy of her gharana, and create a love for classical music across all strata of society, she created various innovative programs and conducted numerous performances. To spread awareness, preserve the legacy of her gharana, and create a love for classical music across all strata of society, she created various innovative programs and conducted numerous workshops, some of them are

- Workshop on vocal music - Goa University (2008)
- Lecture demonstration with Naina Devi & Shobha Mudgal. (ICCR 1988)

Recording published in Paris: a CD titled " Bhendi bazar gharana."

To preserve the literary, poetic, and musical intricacies of her gharana and uphold the legacy of her esteemed guru. She compiled various bandishes and published them in a book, “AMER BANDISHE”

Compositions of - Us. Aman Ali Khan (named as 'Amar')

Compilation by – Dr. Suhasini Koratkar

The Book comprises 129 bandishes from 77 Ragas. They are sung by leading vocalists of Bhendi Bajar Gharana- late Dr Suhasini Koratkar, Smt Anuradha Kuber, Pt Sharad Jambhekar, and Smt Kishori Janorikar.

Having composed more than a hundred bandishes, it would be prudent to mention that she was an outstanding and highly skilled composer.

Niguni Rang (Bhendi Bazar Gharana) (Bandish Notations)

This book comprises bandishes composed by Bhendi Bazar Gharana‘s artist Dr. Suhasini Koratkar, under the name of ‘Niguni’. The compilation, notation and recording of these bandishes was done by Smt. Kishori Janorikar, who herself was the student of Dr. Koratkar, who had learned from her Guru, Pt. T.D. Janorikar of Bhendi Bazar Gharana.

The bandishes have a soulful taste with a wide range in ragas.

The book includes 86 bandishes in 51 ragas.

Some of bandish which were composed by her

- Gun hi na ho to Niguni tum gunan ki ho kali tum sakal kala ke dhani
  Raag – Shana
  Taal - Drut Ektaal
- Ghanan Ghanan garjat
  Raag- Malhar mala

Taal- madhya lay. Teental

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.024

Some Prominent Bandishes of Bhindi Bazar Gharana

- Sundar angana bethi nikas ke,
  has has piya ko manāye.
  (Antara)
  Ek nazar se man bas kīno,
  bāndh liyo man kas ke.
  Raag - shana
  Taal - Adha Teentaal

About the Bandish : In the bandish the scene of charming courtyard, where the heroine steps out with quiet elegance and sits gracefully. With a gentle smile, she engages her beloved, seeking to restore harmony through tender persuasion. She completely binds him to her with deep affection.

- Sadan ati mand mand sahali ayi
  Rasik nik mand dhari
  Raag – Narayani
  Taal - ektaal

About the Bandish :To the beloved's abode, a gentle breeze comes softly and the lover the connoisseur of beauty or emotion steps out gracefully, adorned with elegance and charm

- Sthayi: Na ham de na ham ko, ham so ham jaan, jeev tu taj khalu aham
  (Antara)
  Kasmat man panchi jagat mo, amar hriday mai sohe so ham
  Raag - Bhatiyar
  Taal - Teentaal

About the Bandish:I am neither the body nor the mind;

I am my true self — pure consciousness itself.

O restless mind, like a bird wandering the world, know this —

The immortal one dwells in the heart; that eternal being is who I truly am.

Conclusion

She is known as a torchbearer of the Bhendi Bazaar Gharana because of her dedication and her profound yet unassuming contribution to preserving and promoting its tradition. She devoted her life to teaching, guided by devotion and sincerity rather than the pursuit of recognition. Her focus remained on achieving and documenting musical works, while also collecting stories and experiences from esteemed gurus to ensure that the continuity and essence of the tradition remain alive. She also preserved the rare bandishes of the Bhendi Bazaar Gharana, helping future generations connect with its timeless legacy.

Today, her legacy continues to flourish through her disciples and followers, who carry forward the same values and musical vision that she upheld throughout her life. These present takers of Suhasini Koratkar's legacy are keeping the Bhendi Bazaar Gharana alive through their performances, research, and teaching. They not only uphold her musical ideals but also share her dedication to authenticity, discipline, and aesthetic refinement. Through them, the rich

and soulful tradition of the Bhendi Bazaar Gharana continues to reach new audiences while preserving its original essence.

Among the prominent disciples who continue to carry her legacy forward are *Shubhangi Janorikar, representing the Janorikar family's musical lineage; **Ragini Kausadikar, who actively performs and teaches Bhendi Bazaar *bandishes; and *Kishori Janorikar, who has documented and notated Dr. Koratkar's compositions in the book *Niguni Rang published by Sanskar Prakashan. Other devoted disciples include *Sadhana Joshi, associated with the Janorikar–Koratkar *parampara through her teaching and performances, and *Anuradha Kuber, a noted vocalist whose recordings reflect the Bhendi Bazaar aesthetic and repertoire. **Sharad Jambhekar* and several fifth-generation practitioners of the Janorikar–Koratkar lineage also continue to teach, perform, and preserve the gharana's traditional compositions, ensuring its continuity in contemporary musical practice.

Thus, Dr. Suhasini Koratkar's name remains synonymous with commitment, humility, and devotion to music. Her life's work stands as a living example of how one artist's sincere efforts can sustain and strengthen an entire gharana, ensuring that its beauty and depth continue to inspire generations to come.

Reference

1. Amar Bandishe (Bhendi Bazar Gharana). Mumbai: Sanskar Prakashan.
2. Bagchee, Sandeep. Naad: Understanding Raag Music. New Delhi: Eeshwar, 1998.
3. Bhave, Prasad. "Bhendi Bazaar – The Area, The Gharana, The Gayaki." Prasad Bhave Blog, 24 Mar. 2015, https://prasadbhave.wordpress.com/2015/03/24/bhendi-bazaar-the-area-the-gharana-the-gayaki/.
4. "Bhendi Bazaar Gharana." Mid-Day, https://www.mid-day.com/mumbai/mumbai-news/article/bhendi-bazar-gharana-144737
5. "Bhendi Bazaar Gharana." Wikipedia: The Free Encyclopedia, Wikimedia Foundation, Oct. 2025, https://en.wikipedia.org/wiki/Bhendi_Bazaar_gharana.
6. "Bhendi Bazaar Gharana – Information & Family Tree." Swaramandakini, https://swaramandakini.com/information-family-tree.aspx.
7. "Bhendi Bazaar Gharana: A Rare Musical Heritage." G5A Foundation for Contemporary Culture, https://bhendibazaargharana.g5a.org/about/.
8. "Bhendi Bazaar Gharana: The Musical Legacy of Mumbai." Peepul Tree / Live History India, 2021, [https://www.peepultree.world/

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.024

livehistoryindia/story/living-culture/bhendi-bazaar-gharana](https://www.peepultree.world/livehistoryindia/story/living-culture/bhendi-bazaar-gharana).

9. "Bhendi Bazaar's Rich & Untapped History Is Largely Unknown." The Indian Express, https://indianexpress.com/article/cities/mumbai/bhendi-bazaars-rich-untapped-history-preservation-9520293/.
10. Deshpande, Vamanrao. Indian Musical Traditions: An Aesthetic Study of the Gharanas in Hindustani Music. Bombay: Popular Prakashan, 1987.
11. "Farewell, Bhendi Bazaar." Mumbai Reader, Urban Design Research Institute, 2013.
12. Koratkar, Suhasini. "Bhendi Bazaar Gharana: A Distinctive Vocal Tradition." Lecture-demonstration Paper, International Music Workshop, Pune, 2015.
13. Kothari, Sunil. The Gharanas of Hindustani Music. New Delhi: Sangeet Natak Akademi, 1997.
14. Nair, Jyoti. "A Style as Intriguing as the Name: Bhendi Bazaar Gharana and Lata Mangeshkar." The Hindu, 4 Jan. 2018, www.thehindu.com.
15. Ranade, Ashok D. Hindustani Music: Tradition in Transition. Delhi: Popular Prakashan, 1990.
16. "Sahapedia: Dr. Suhasini Koratkar – Bhendi Bazaar Gharana Exponent." Sahapedia, https://www.sahapedia.org.

Clinical And Aesthetic Impact of Music Therapy Sessions at Radiant Hospital Amravati: A Structured Interdisciplinary Study

Dr Ankush A. Giri

Abstract

Music Therapy has emerged as a significant complementary therapeutic intervention in contemporary clinical settings, especially for neurological and psychosomatic disorders. The present research paper examines the structured Music Therapy sessions conducted at Radiant Hospital, Amravati, with specific reference to patients suffering from Parkinson's disease, Dementia, Post-Stroke conditions, Anxiety disorders, and Chronic stress-related ailments.

The study is based on a mixed-method research design incorporating observational analysis, clinical feedback, patient response documentation, and interdisciplinary collaboration between musicologists and neurologists. Therapeutic modules including Omkar Chanting, Raga-based Listening Therapy, Beat Therapy, and Guided Musical Meditation were implemented over a continuous period of five months.

The findings reveal measurable improvement in emotional regulation, reduction in anxiety levels, enhancement of motor coordination in neurological patients, and positive changes in cognitive responsiveness. The paper highlights Music Therapy as a scientifically grounded, culturally rooted, and ethically non-invasive therapeutic approach. The research advocates for the integration of Music Therapy as a supportive clinical practice within hospital environments in India.

Keywords : *Music Therapy; Clinical Musicology; Neurological Rehabilitation; Indian Classical Music; Raga-Based Therapy; Interdisciplinary Healing; Psychological Well-being; Complementary Medicine*

1 Introduction

Music has been an integral component of Indian philosophical and healing traditions since the Vedic period. References to Nada, Shruti, and Raga as instruments of

Associate Professor, Department of Music, Mahila Mahavidyalaya, Amravati, E-Mail: ankush.giri14@gmail.com Mobile No. 9890926960

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.025

psychological and physiological balance are found extensively in ancient Indian texts. In contemporary times, Music Therapy has evolved into a structured interdisciplinary field integrating musicology, neuroscience, psychology, and medicine.

In hospital environments, where patients often experience emotional distress alongside physical illness, Music Therapy serves as a non-pharmacological intervention capable of addressing mental well-being without adverse side effects. Radiant Hospital, Amravati, has initiated structured Music Therapy sessions as a complementary therapeutic practice, particularly for neurological and stress-related disorders.

The present study attempts a systematic academic analysis of these sessions, focusing on their therapeutic design, clinical relevance, and observable outcomes.

2 Objectives of the Study

The primary objectives of the present research are:

1. To study the structural framework of Music Therapy sessions conducted at Radiant Hospital, Amravati, Maharashtra.
2. To analyse the therapeutic impact of selected ragas, rhythmic patterns, and chanting practices on patients.
3. To evaluate patient responses from neurological and psychological perspectives.
4. To establish Music Therapy as a viable interdisciplinary clinical practice within Indian hospital systems.

3 Research Methodology

The research follows a mixed-method approach combining qualitative and observational techniques.

3.1 Research Design

A descriptive and analytical research design was adopted to document therapeutic processes and patient responses over time.

3.2 Sample Selection

Patients undergoing treatment at Radiant Hospital for Parkinson's disease, Dementia, Post-Stroke rehabilitation, Anxietydisorders, and Chronic stress conditions were included. Participation was voluntary and conducted with medical consent.

3.3 Therapeutic Modules Applied

The music therapy intervention was organized into structured therapeutic modules, each designed to address specific neurological, psychological, and emotional parameters. The modules were applied selectively based on patient diagnosis, cognitive capacity, and therapeutic objectives, ensuring both

clinical appropriateness and aesthetic coherence.

3.3.1 Omkāra Chanting with Regulated Breathing

Omkāra chanting was administered in conjunction with controlled breath patterns to facilitate respiratory synchronization and autonomic regulation. The prolonged vocalization of Om encouraged slow, rhythmic breathing, contributing to parasympathetic activation and mental calming.

Clinically, this module supported stress reduction, improved focus, and emotional grounding, particularly beneficial for patients experiencing anxiety, hypertension, and post-stroke emotional instability.

3.3.2 Rāga-Based Receptive Listening

Receptive listening sessions were structured around selected Indian classical rāgas, chosen for their emotional intentionality (rasa) and tonal stability. Patients were guided to listen attentively without active performance, allowing passive emotional engagement and cognitive relaxation.

This module enhanced attention span, emotional receptivity, and memory association, especially in elderly and dementia patients, by activating culturally familiar auditory schemas.

3.3.3 Beat Therapy for Motor Coordination

Beat Therapy employed consistent rhythmic cycles (tāla patterns) to stimulate motor synchronization and neural timing mechanisms. Percussive accents and repetitive rhythmic cues were utilized to assist patients with Parkinson's disease and post-stroke motor impairments.

Clinical observation indicated improvement in gait regularity, muscular coordination, and reduction of rigidity, suggesting effective sensorimotor coupling through rhythmic auditory stimulation.

3.3.4 Guided Musical Meditation

Guided musical meditation integrated soft melodic phrases with verbal or non-verbal cues, encouraging inward focus and emotional stabilization. This module supported mental clarity, reduced agitation, and enhanced emotional regulation, particularly in patients with anxiety, depression, and stress-related disorders.The gradual melodic progression facilitated a sustained state of relaxation without inducing sensory overload.

3.3.5 Mantra-Based Vibratory Sound Intervention

Mantra repetition was applied as a vibratory sound-based therapeutic module, emphasizing rhythmic repetition and tonal consistency. The repetitive sonic pattern aided

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.025

in synchronizing breath, cognitive focus, and memory recall.This module proved especially effective for patients with cognitive decline, emotional distress, and attentional deficits, as repetitive sound structures reinforced neural stability and emotional reassurance.

Integrative Perspective

Collectively, these therapeutic modules reflect an interdisciplinary synthesis of clinical neuroscience, psychological therapy, and Indian sound aesthetics. Their modular application enabled personalized intervention strategies while maintaining methodological consistency across therapy sessions.

3.4 Data Collection Tools

Observational notes, patient feedback forms, neurological assessments provided by the consulting neurologist, and session-wise response documentation were used for data collection.

4. Structure of Music Therapy Sessions

The music therapy interventions conducted at Radiant Super Speciality Hospital, Amravati were implemented using a systematic and clinically supervised session framework. The structure was designed to ensure consistency across patient groups while allowing adaptability based on neurological and psychological conditions. All sessions were conducted in a controlled acoustic environment to minimize external auditory interference and optimize therapeutic outcomes.

4.1 Preparatory Phase

Each session commenced with a preparatory phase focusing on physiological stabilization and attentional readiness. Patients were guided through controlled breathing techniques to regulate autonomic nervous system responses. This phase was particularly effective in reducing baseline anxiety, muscular tension, and sensory overload, thereby preparing patients for structured auditory engagement.

From a clinical standpoint, this phase facilitated respiratory synchronization and improved oxygenation, while from a therapeutic perspective, it enhanced attentional focus and receptivity to sound stimuli.

4.2 Core Therapeutic Musical Intervention

The core phase involved active or receptive musical engagement, selected according to the patient's clinical diagnosis and cognitive capacity. Rhythm-based musical interventions were administered for patients with neurological impairments such as Parkinson's disease and post-stroke motor dysfunction. These interventions emphasized consistent tempo,

repetitive rhythmic patterns, and structured phrasing to support motor coordination and neural timing.

For patients with psychological and emotional disorders, melodic and raga-based listening sessions were employed. The musical material was chosen to maintain moderate tempo and emotional stability, ensuring therapeutic engagement without cognitive fatigue.

4.3 Silent Absorption and Relaxation Phase

Following the musical intervention, a structured silent absorption phase was incorporated to allow internalization of the auditory experience. This period of reduced sensory input facilitated parasympathetic activation and emotional assimilation.

Clinically, patients exhibited decreased muscular rigidity, stabilized breathing patterns, and visible relaxation. Conceptually, this phase aligns with the Indian aesthetic principle of nāda-anubhava, wherein the therapeutic effect of sound continues beyond audible perception.

4.4 Feedback and Observational Assessment

The final phase involved verbal and non-verbal feedback assessment, adapted to individual communicative abilities. Behavioural markers such as facial expression, eye contact, posture, spontaneous movement, and emotional responsiveness were systematically observed and recorded.

This observational data formed a qualitative component of the study, providing insight into immediate therapeutic effects and patient engagement.

5. Therapeutic Impact Analysis

5.1 Neurological Outcomes

Patients diagnosed with Parkinson's disease and post-stroke motor impairments demonstrated measurable improvement in rhythmic motor synchronization following repeated exposure to beat-based music therapy (Beats of Balance). Clinical observations indicated reduction in muscular rigidity, enhanced gait regularity, and improved coordination.

These outcomes suggest that rhythmic auditory stimulation facilitates sensorimotor coupling and alternative neural pathway activation, compensating for impaired internal motor timing mechanisms.

5.2 Psychological and Emotional Outcomes

Patients experiencing anxiety disorders, stress-related conditions, and emotional dysregulation showed decreased restlessness and improved emotional stability over successive sessions. Improved sleep quality and reduced agitation were also reported.

In patients with dementia, increased alertness, sustained

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.025

attention, and emotional engagement were observed during sessions involving familiar melodic structures. These findings support the role of music therapy in accessing preserved emotional and memory-related neural circuits.

5.3 Aesthetic and Cognitive Engagement

Raga-based listening interventions significantly enhanced attention span, emotional receptivity, and cognitive engagement. The culturally familiar tonal frameworks of Indian classical music provided emotional reassurance and reduced psychological resistance to therapy.

The aesthetic organization of raga - characterized by emotional intentionality (rasa), tonal stability, and gradual melodic progression - contributed to therapeutic effectiveness by fostering predictability and emotional safety.

5.4. Discussion

The findings of this interdisciplinary study highlight that the integration of clinical music therapy protocols with Indian classical aesthetic principles offers substantial therapeutic benefits. Rhythm-based interventions support neurological rehabilitation, while melodic and raga-based approaches facilitate emotional regulation and cognitive engagement.

The structured session design ensured clinical consistency, while the aesthetic sensitivity of musical selection enhanced patient compliance and therapeutic depth. These outcomes reinforce the relevance of culturally contextualized music therapy within modern clinical settings.

6. Interdisciplinary Significance

The collaborative engagement between the Department of Music, Mahila Mahavidyalaya, Amravati and the Department of Neurology, Radiant Super Speciality Hospital, Amravati underscores the interdisciplinary foundation of the present study. This collaboration establishes Music Therapy as a functional interface between artistic practice and clinical science, integrating aesthetic knowledge with neuroscientific expertise.

The involvement of neurological professionals enabled systematic clinical observation, diagnostic interpretation, and therapeutic supervision, thereby strengthening the scientific credibility and academic validity of the observed outcomes. Simultaneously, the music department contributed aesthetic structuring, raga selection, rhythmic design, and culturally informed therapeutic frameworks.

Such interdisciplinary synergy validates Music Therapy not merely as an experiential art form but as a

clinically relevant complementary intervention, capable of contributing meaningfully to neurological rehabilitation and psychological care within institutional healthcare settings.

7. Ethical Considerations

All Music Therapy sessions were conducted in strict adherence to ethical standards of clinical research and therapeutic practice. Informed consent was obtained from all participants or their legal caregivers prior to participation. Patients were clearly informed about the nature, objectives, and complementary status of the intervention.

Music Therapy was applied exclusively as an adjunctive therapeutic approach and did not replace or interfere with ongoing medical treatments, pharmacological regimens, or clinical procedures. Patient confidentiality and dignity were maintained throughout the study, and participation was entirely voluntary, with the option to withdraw at any stage without any clinical consequence.

The ethical framework ensured patient safety, transparency, and respect for individual autonomy, aligning the study with institutional and national research ethics guidelines.

8. Results: Tabular and Statistical Analysis

Table 1: Demographic Distribution of Participants

Age Group (Years)	Number of Patients	Percentage
40–50	01	10%
50–60	01	10%
60–70	07	70%
70–80	01	10%
Total	**10**	**100%**

Interpretation:

The predominance of patients in the 60–70 age group (70%) indicates that Music Therapy was primarily applied to a geriatric population, which is clinically significant due to the higher prevalence of neurodegenerative disorders in this age bracket.

Table 2: Clinical Diagnosis of Participants

Clinical Condition	Number	Percentage
Parkinson's Disease	03	30%
Dementia	02	20%
Parkinson's + Dementia	01	10%
Other Conditions	04	40%
Total	**10**	**100%**

Interpretation:

A total of 60% of participants were diagnosed with Parkinson's disease, dementia, or both, confirming the relevance of Music Therapy in neurological and cognitive rehabilitation contexts.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.025

Table 3: Patient Responses to Music Therapy Survey

Survey Parameter	Yes	No	Positive Response (%)
Interest in Music	10	00	100%
Prior Exposure to Music Therapy	00	10	00%
Mood Improvement	10	00	100%
Memory Improvement	10	00	100%
Bodily Vibration Sensation	09	01	90%
Improved Sleep Quality	10	00	100%

Interpretation:

Despite zero prior exposure to Music Therapy, patients demonstrated uniformly positive psychological and cognitive responses, indicating the immediate effectiveness of structured musical intervention.

Table 4: Physical Response after Music Therapy

Physical Response	Number of Patients	Percentage
Felt More Energetic	05	50%
Felt More Relaxed	05	50%
Felt Tired	00	00%

Interpretation:

Music Therapy produced a balanced physiological effect, equally promoting relaxation and energy, without inducing fatigue—an ideal outcome in clinical therapy settings.

9. Results

The statistical analysis reveals a consistently high positive response rate across emotional, cognitive, physical, and sleep-related parameters. The presence of somatic vibrational awareness (90%) supports the aesthetic and nāda-based theoretical framework of Music Therapy.

These results empirically validate that Music Therapy at Radiant Hospital functions as a holistic, non-invasive, and effective adjunct therapy, particularly for geriatric and neurological patients.

Figure 1:
Overall Interpretation of Results

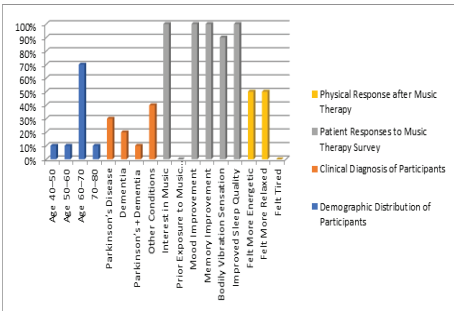

8. Conclusion

The present interdisciplinary study establishes that structured Music Therapy sessions conducted at Radiant Super Speciality Hospital, Amravati exert a positive therapeutic influence on neurological,

psychological, and emotional health parameters. Observed improvements in motor coordination, emotional stability, attentional engagement, and overall well-being affirm the clinical relevance of Music Therapy as a complementary intervention.

The findings support the systematic inclusion of Music Therapy within Indian healthcare and rehabilitation frameworks, particularly in neurological and mental health settings. Furthermore, the study highlights the necessity for future research involving empirical methodologies, statistical validation, longitudinal assessment, and standardized clinical scales to strengthen evidence-based practice.

This research opens significant avenues for policy-level recognition, academic integration, and institutional implementation of Music Therapy across hospitals and rehabilitation centres in India, thereby reinforcing its potential as a scientifically grounded and culturally resonant therapeutic modality.

Acknowledgement

The authors express sincere gratitude to the Dr. Sikandar Adwani Sir (Neurologist), Dr. Bhojraj Chaudhari (Musicologist) and the management of Radiant Hospital, Amravati, for providing institutional support. Special acknowledgment is extended to participating patients and medical staff for their cooperation during the study.

Conflict Of Interest

The authors declare that there is no conflict of interest regarding the publication of this research paper.

References

1. Giri, Ankush A., Nada Chikitsa: Concept and Clinical Application, Swadesh Weekly, November 2025, pp. 29–34.
2. Thaut, Michael H., Rhythm, Music, and the Brain: Scientific Foundations and Clinical Applications, Routledge Publications, New York, 2013.
3. Sacks, Oliver, Musicophilia: Tales of Music and the Brain, Vintage Books, New York, 2007.
4. Bruscia, Kenneth E., Defining Music Therapy, Third Edition, Barcelona Publishers, Gilsum, New Hampshire, 2014.
5. Giri, Ankush A., Beats of Balance, Audio-visual research documentation, 2025, https://drive.google.com/file/d/1Db7CYskovvWD4HdybMTi2T7gKCR4sdw2/view
6. Giri, Ankush A., Meditation, Audio-visual research documentation, 2025, https://drive.google.com/file/d/1BqnKQLy-mm10YYhWY8Pv8-0o0I6x9AIF/view
5. Giri, Ankush A., Survey Questionnaire for Music Therapy Research, Unpublished research instrument, 2025, https://drive.google.com/file/d/19rSfrJnlpVyq_wZbHBc-hXYBhvAznPfM/view

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.026

An Analytical Study of Sitar Techniques in the Maihar Seniya Gharana

Dr. Amandeep Kaur

Abstract

The Maihar Seniya Gharana occupies a significant position in the history of Hindustani instrumental music owing to its systematic and disciplined approach to raga presentation. Established by Baba Allauddin Khan, the gharana introduced a balanced blend of Dhrupad-based alap, refined tantrakari, and structural modification of instruments, specifically the Sitar. The present paper offers an analytical study of the principal Sitar techniques associated with the Maihar Seniya Gharana, examining their historical background, technical features, and aesthetic orientation. Special emphasis is placed on the Dhrupad-ang alap and jod, the functional role of kharaj strings, advanced meend techniques, and rhythmic elaboration in gat and jhala. The contribution of eminent exponents such as Pt. Ravi Shankar and Pt. Nikhil Banerjee is also discussed in order to understand how the Maihar style was consolidated and disseminated. The study argues that through structural innovation and technical discipline, the Maihar Seniya Gharana established the Sitar as a complete and independent solo instrument capable of deep melodic and spiritual expression.

Keywords: *Maihar Seniya Gharana, Sitar, Tantrakari, Dhrupad-ang, Baba Allauddin Khan*

1. Introduction

In Hindustani classical music, the term Gharana denotes a lineage-based tradition of musical thought, pedagogy, and performance practice relayed primarily through the Guru–Shishya parampara. Each Gharana preserves a distinct approach to raga development, technique, and aesthetic expression. Among instrumental traditions, the Maihar Seniya Gharana holds a unique position because of its holistic vision of instrumental music and its persistence on structural clarity and discipline.

Before the emergence of the Maihar tradition, the Sitar was often perceived as a lighter melodic

Assistant Professor : Department of Instrumental Music, Vasanta College for Women, Rajghat, Varanasi, U.P.-221001; Contact No: 8800784040; Email Id: dramandeepkaurSitar@gmail.com

instrument, frequently engaged in accompaniment or semi-classical contexts. The Maihar Seniya Gharana played a pivotal role in altering this perception by introducing techniques derived from the Dhrupad and Beenkar traditions and adapting them effectively to the Sitar. Consequently, the instrument acquired the depth, gravitas, and expressive range necessary for elaborate solo performance.

The objective of this paper is to present an analytical study of the Sitar techniques developed within the Maihar Seniya Gharana and to assess their contribution to the evolution of Sitar performance in Hindustani classical music.

2. Historical Background of the Maihar Seniya Gharana

The Maihar Seniya Gharana originated with Baba Allauddin Khan (1862–1972), one of the most influential figures in Indian instrumental music. His rigorous training under Ustad Wazir Khan of the Rampur-Senia tradition grounded him firmly in the Dhrupad system and the Beenkar style of Rudra Veena playing[1]. Baba Allauddin Khan's mastery over multiple instruments enabled him to conceptualize instrumental music as an integrated discipline rather than a collection of isolated instrumental techniques.

A central principle of the Maihar Seniya Gharana was that instrumental music should possess the same depth, seriousness, and completeness as vocal music. Baba Allauddin Khan emphasized slow and systematic alap, purity of swara, and gradual rhythmic expansion. These principles were transmitted to his disciples, including Pandit Ravi Shankar, Ustad Ali Akbar Khan, and Pandit Nikhil Banerjee, who carried forward the Maihar aesthetic in their tradition[2].

3. Structural Development of the Maihar Sitar

3.1 Introduction of Kharaj Strings

One of the most important technical developments associated with the Maihar Seniya Gharana was the modification of the Sitar's structure. The introduction of kharaj (bass) strings extended the lower register of the instrument, allowing performers to execute Dhrupad-ang alap in the mandra saptak[3]. This innovation enabled the Sitar to approximate the depth and resonance of the surbahar and Rudra Veena.

3.2 Tuning and Pitch

Maihar Sitarists preferred lower pitch tuning, commonly in B-flat or C, in order to achieve a deeper and more resonant tonal quality[4]. This choice enhanced the meditative character of the alap and strengthened the overall sonic weight of the performance. Lower tuning also proved effective in ensemble contexts, particularly in jugalbandi presentations with the sarod.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.026

3.3 Frets and Mechanical Adjustments

In order to facilitate extended and continuous meend, some Maihar Sitars incorporated an additional fret. Mechanical adaptations such as the hook system were introduced to control excessive vibration of heavy bass strings during fast passages, ensuring clarity in jhala and complex tan patterns[5].

4. Core Techniques of the Maihar Gharana

4.1 Dhrupad-ang Alap

The alap in the Maihar tradition is slow, expansive, and meditative in nature. Emphasis is placed on sustained notes, precise intonation, and the gradual unfolding of the raga's melodic character. Ornamentation is used sparingly, allowing the intrinsic form of the raga to emerge naturally[6]. The use of kharaj strings in the lower octave is a defining feature of this approach.

4.2 Jod and Rhythmic Transition

Following the alap, the jod introduces a subtle sense of pulse without the explicit use of tala. This section functions as a transitional phase between the unmetered alap and the rhythmically structured gat. In the Maihar style, the jod retains the seriousness and depth of the alap while gradually increasing melodic movement.

4.3 Tantrakari and Meend

Tantrakari forms the technical foundation of Maihar Sitar playing. The focus is on exploiting the instrument's inherent capabilities rather than imitating vocal phrasing. Long, controlled meends spanning multiple swaras on a single string pull are a hallmark of the style[7]. Techniques such as krintan and zamzama are employed with restraint, contributing to clarity, precision, and strength of expression.

4.4 Gat and Jhala

The gat section reflects a high degree of rhythmic sophistication. Influenced by Baba Allauddin Khan's comprehensive understanding of rhythm, Maihar gats often incorporate intricate layakari and structured improvisation[8]. The jhala concludes the performance with energetic rhythmic articulation, balancing technical brilliance with aesthetic control.

5. Role of Prominent Exponents

Pandit Ravi Shankar played a crucial role in systematizing and disseminating the Maihar Sitar tradition at national and international levels. His emphasis on structured presentation, clarity of form, and pedagogical discipline brought widespread recognition to the Maihar style[9].

Pandit Nikhil Banerjee represented a more introspective dimension of the Gharana. His performances were characterized by prolonged alap, minimal ornamentation, and intense raga exploration, reflecting the deeper philosophical orientation of the Maihar tradition[10].

6. Conclusion

The Maihar Seniya Gharana made a lasting contribution to the development of Sitar performance by integrating Dhrupad-based alap, advanced tantrakari, and structural innovation of the instrument. Through its emphasis on discipline, depth, and clarity, the Gharana elevated the Sitar to the status of a complete and independent solo instrument. The techniques developed within this tradition continue to influence contemporary Sitar pedagogy and performance, reaffirming the enduring relevance of the Maihar Seniya Gharana in Hindustani classical music.

End Notes

1. Sanyal, R., & Widdess, R. (2004). Dhrupad: Tradition and performance in Indian music. Ashgate.
2. Banerjee, A., Sanyal, S., Sengupta, R., & Ghosh, D. (2019). A nonlinear study on time evolution in Gharana tradition of Indian classical music. Preprints. https://doi.org/10.20944/preprints201904.0157.v1
3. Darbar Academy. (n.d.). The Sitar from different angles: Instrument basics and past experts. Darbar Archive.
4. Rao, S. (1998). Musical evolution related to Sitar strings. In L. Anapoorna (Ed.), New dimensions of Indian music, dance, and drama (pp. 247–255). Sundeep Publishers.
5. Vedabala, S. (2014). Sitar baaj: The changing phenomenon. Atodya, 1(1), 1–5.
6. Sanyal, R., & Widdess, R. (2004). Dhrupad: Tradition and performance in Indian music. Ashgate.
7. Vedabala, S. (2014). Sitar baaj: The changing phenomenon. Atodya, 1(1), 1–5.
8. Banerjee, A., Sanyal, S., Sengupta, R., & Ghosh, D. (2019). A nonlinear study on time evolution in Gharana tradition of Indian classical music. Preprints. https://doi.org/10.20944/preprints201904.0157.v1
9. Sharma, V. (2015). History of innovation in the presentation of Sitar with reference to Etawah and Maihar Gharana. International Journal of Research – Granthaalayah, 3(7), 45–52.
10. Neuman, D. M. (1980). The life of music in North India. University of Chicago Press.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.027

Nava-Vidha Bhakti: A Bharatanatyam Perspective

Neha Kumari*, Dr. Khileshwari Patel

Abstract:

Bharatanatyam, an Indian classical dance, traces its roots to temple traditions, which present the dance performances with the essence of spirituality. The dance used to be presented in front of the temple as an act of worship, which manifests the Bhakti bhava and devotion of the dancers towards this art form. Bharatanatyam is also one of the art forms that helps to reach the path of salvation. In the Bharatanatyam repertoire, the Bhakti bhava and devotion are more evident in abhinaya items such as Shabdam, Varnam, Padam, Javali, and Ashtapadi. And there is also a connection between the Nava-Vidha Bhakti (ninefold practice of Devotion), which is mentioned in śrimada Bhāgvatam, with the abhinaya items of Bharatanatyam. This research paper examines how the abhinaya items of Bharatanatyam evoke the spiritual consciousness. This study highlights how performers execute these items with devotion and ultimately connect with the audience, evoking a sense of spirituality. The paper also focuses on the role of devotion in preserving the spirituality of Bharatanatyam in this contemporary world.

Keywords: *Bharatanatyam, Spirituality, Nava-Vidha Bhakti, Devotion, Repertoire.*

Introduction:

Bharatanatyam, one of the most ancient Indian classical dances, originated from the sacred walls of the temples in South India. Bharatanatyam was being performed by the Devadasis in the temple with the bhava of Bhakti and surrender. For Devadasis, performing this dance form was an act of worship in their way. Later on, when Bharatanatyam started to be presented on the stage, the legendary Rukmini Devi Arundale "introduced the Nataraja image in order to create a temple on the stage. The opinion is diametrically opposed to that held by the devadasis who were performing Bharatanatyam on the concert stage during the same period." T. Balasaraswati, the renowned Bharatanatyam exponent and also devadasi, "she never had

*Research Scholar, Assistant Professor, Department of Dance, Banaras Hindu University

**Department of Dance, Faculty of Performing Arts, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University

a Natraja on the stage. She did not believe in that sort of thing, bringing the temple to the stage. She was opposed to this. She said, it is in the mind." Certainly, she had created the repertoire like a structure of a great temple "We enter through the gopuram (outer hall) of alaripu, cross the ardhamandalam (half-way hall) of jatiswaram, then the mandapa (great hall) of shabdam, and enter the holy precinct of the deity in the varnam. This is the place, the space, which gives the dancer expansive scope to revel in the rhythm, moods, and music of the dance. The padam-s now follow. In dancing to padams, one experiences the containment, cool and quiet, of entering the sanctum from its external precinct. Dancing to the padam is akin to the juncture when cascading lights of worship are withdrawn, and the drum beats die down to the simple and solemn chanting of sacred verses in the closeness of God. Then, the tillana breaks into movement like the final burning of camphor, accompanied by a measure of din and bustle" . Her vision of the recital, with its temple structure, provides insight into a sacred theme of Bharatanatyam. As we can witness in the repertoire of Bharatanatyam, like Shabdam, Padam, Varnam, Javali, and Ashtapadi, all the compositions revolve around Bhakti bhava and spirituality. "Among practitioners of Bharatanatyam, there is controversy around how devotion is expressed. Some dancers and critics feel that bhakti should be expressed through an erotic interpretation of Sringara, while others support an interpretation which suggests surrender to the deity- something less physical and more distant. The nature of bhakti, the appropriate metaphor for it, and the symbolic language (abhinaya) used to express it, have been the subject of vigorous debate within the South Indian dance community for over fifty years." Over time, a notable evolution in Bharatanatyam performances can be observed, as it was initially performed only in temples as a ritual and has now progressed to the proscenium stage. But it still carries the spiritual essence in the performances by the dancers. In the repertoire of Bharatanatyam, the abhinaya items hold a powerful scope of Bhakti Bhava, and this paper also stresses how these items help to experience the aura of spirituality both for the performer and the spectators. Abhinaya is the soul of dance. If there is no soul in the body, then the body is dead, in the same in dance, if there is no abhinaya in the dance, the dance becomes lifeless or emotionless. So, Abhinaya holds a great place in dance for the depiction of the stories and manodharma. The abhinaya of the dancers gets enriched more by the lyrics of the compositions, which helps the dancers to dive into the ocean of abhinaya. The composers like Swati Tirunal, Kshetrayya, and Tanjore Quartet, etc, who were the

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.027

great composers and admirers of Gods, had composed many items that are being performed by the Bharatanatyam artists, which reflect the devotional background of their poetry. Their poetry is a precious treasure for the Bharatanatyam dancers, which helps to develop and explore more about spirituality in the art. This paper explores the significance of Nava-Vidha Bhakti in maintaining the spiritual nobility of Bharatanatyam by examining the themes and presentation of the abhinaya items.

Objective:

- To explore how Nava-Vidha-Bhakti is expressed in the recital of Bharatanatyam.
- To analyse the difference in emotion depicted in all the abhinaya items.
- To analyze the dancer's inner experience of spirituality.
- To study the audience perception towards the spiritual performances.

Methodology:

This study will employ a qualitative research approach, analysing the textual meaning of the compositions. The data will be collected from books, articles, and research papers.

Discussion:

Nava-Vidha Bhakti and its representation in Abhinaya items of Bharatanatyam:

The ideology of Bhakti or Devotion refers to immense belief and surrender to the supreme one. "Devotion is closely linked with the idea of a personal God, who bestows divine grace on his devotee, who, in his turn, responds with devotional service to the deity. Although hints of devotion are found in the Upanishads, its first clear exposition is found in the Bhāgavada Gita." The philosophy of Bhakti mentioned in the Bhāgavada Gita and the Bhāgavata Purana is different. "The Bhāgavata makes extensive use of the type of devotion found in the Gita, and especially develops its links to the path of knowledge and to Yoga. As in the Gita, devotion in the Bhāgavata is often called a discipline (yoga), a means to final liberation (sadhana)." In the Bhāgavata Puran, Nava-Vidha (nine forms) of Bhakti are explained by Prahlada to his father.

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ २३ ॥

These nine forms are as follows: - 1. Śravaṇa (hearing), 2. kīrtana (chanting), 3. Smaraṇa (remembering), 4. Pāda - Sevanam (service at Bhagavan's feet), 5. Arcana (offering worship), 6. Vandana (praising), 7. Dāsya (servant), 8. Sakhya (friendship), and 9. Ātma - Nivedana (offering oneself to the supreme one). These Nava-

Vidha Bhakti, mentioned in the Bhāgavata Purana, offer not only theological insights but also influence the presentation of abhinaya items in the Bharatanatyam dance form. Here, the researcher had shown how the abhinaya items of Bharatanatyam reveal the element of Nava-Vidha Bhakti.

I. Śravaṇa – Śravaṇa means listening or hearing the glories of the deity. In many Shabdam, Padams, and Ashtapadi, the dancers listen to God's glories. Śravaṇa Bhakti allows the audience to listen to the divine narratives.

Abhinaya items: -

- Shabdam - In Bharatanatyam margam, Shabdam is the first item in which dancers are introduced to the abhinaya world. Shabdam is also known as 'Yashogeetam'. In this item, the praising of any one deity is depicted by the performer, and also highlights their unique characteristics. For example, 'Sarasijākshulu Shabdam, 'Gokulāmbudi Shabdam', it shows the element of Śravaṇa Bhakti in these items.
- Padam – Padam, a slow-paced abhinaya item. There is one example of Śravaṇa Bhakti which can be seen in Padam, 'Kannan Madhura Geetham Padam'. Here, Nayika is depicting that by hearing Krishna's flute's sound, everyone forgets their work and gets mesmerized by him.
- Ashtapadi – Ashtapadis, the composition of Jayadeva from Geet Govinda also stresses on Śravaṇa Bhakti element. For Example, 'Sanchara Tadhara Ashtapadi' and 'Haririha Mugdhavadhu Ashtapadi'. In Sanchara Tadhara Ashtapadi, Radha is telling her Sakhi that Lord Krishna is doing Rasa with the other Gopikas. What should I do now? Here, Sakhi becomes the listener, and in the same way, in Haririha Mugdhavadhu Ashtapadi, Sakhi is telling Radha about Krishna's Raslila with the other Gopikas, so here Radha becomes the listener.

II. kīrtana – kīrtana refers to singing, praising, and chanting the divine names of God and Goddess repeatedly. This second kind of Nava-Vidha bhakti devotion tends to dignify the glories of the deities.

Abhinaya items: -

- **Keertanam –** Keertanam is a combination of both Nritta and Abhinaya, which represents energetic and joyful movements while praising the deities' glories. For example, 'Śriman Nārayaṇa' and 'Bho Shambho'. In both of these compositions, the names of God are sung repeatedly by the composer and

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.027

danced by the dancers, which demonstrates that it is a perfect example of kīrtana Bhakti.

- **Todaya Mangalam –** Todaya Mangalam is an invocatory item; in this item also the glory of any particular God is performed by the dancers. For example, 'Jaya Jānaki Ramana', in this item, the praising of Lord Vishnu's avatara is presented.

These devotional chants fall under the kīrtana Bhakti.

III. Smaraṇa - Smaraṇa refers to remembering, or recollecting their divine thoughts. In this form of bhakti, the Bhakta recalls the beauty, past experiences with the lord, and good qualities, and admires them with pride.

Abhinaya items: -

- Javali – Javali, an abhinaya item in which the Nayika mostly depicts the Shringar Bhakti. In many Javalis, Nayika recalls their memories and cherishes them. For example, 'Smrasundaranguni', in this Nayika remembers his Nayaka and tells a random woman about beauty, and also, how he encourages her, unlike other men. So, this clearly exhibits the Smaraṇa Bhakti.

IV. Pāda - Sevanam - Pāda - Sevanam refers to offering service or bowing to the deity's feet. This Bhakti can be done in many ways, like offering flowers or water to the Supreme One.

Abhinaya items: -

- **Pushpanjali –** Pushpanjali is an invocatory item which is presented at the beginning of the performance by offering a handful of flowers to the deity to remove all the Vighna (obstacles). The entire performance is an act of service and surrender to the deity, which depicts the Pāda-Sevanam Bhakti.

V. Arcana – Arcana refers to the ritualistic worship done by the Bhaktas of their deities through offering flowers, lighting lamps, sacred food, and water, and reciting the mantras. Arcana is also done to remove all the hindrances around the surroundings.

Abhinaya items: -

- Pushpanjali – Dancers begin their performance by offering flowers to the God, Guru, and the audience. For example, 'Ganesh Pushpanjali'.
- Koutuvam – Koutuvam is also an invocatory item, in which there is a combination of both nritta and abhinaya. For example, 'Ganesh Koutuvam' and 'Natesh Koutuvam.'

VI. Vandana – Vandana means salutation, bowing, praying, and connecting to the Supreme one. It is

done through the recitation of a prayer or in a meditative state.

Abhinaya items: -

- Pushpanjali - As Pushpanjali also shows the Pāda – Sevanam, Arcana, but it also contains elements of the Vandana Bhakti.
- Todaya Mangalam – Although Todaya Mangalam exhibits the kīrtana Bhakti, its characteristics also show the Vandana Bhakti. As in Todaya Mangalam, dancers bow and pray to the Supreme One.

VII. Dāsya - Dāsya, derived from the word Dāsa, which means servant. Here, the devotional service of the Bhaktas is shown towards their deity. From a dance perspective, characters like Hanuman, Bharata, Shabri, and Lakshmana depict the Dāsya Bhakti.

Abhinaya items: -

- **Shabdam** – Along with Śravaṇa Bhakti, Shabdam also depicts the Dāsya Bhakti. For example, 'Ayar Sheriyar' and 'Gokulambudi' Shabdam. Here, the dancer praises God and asks to take them under their protection.

VIII. Sakhya – Sakhya refers to the friendship between the Bhakta and the God. It expresses the personal and intimate bond with the lord. It includes the playful rasalila of the lord with sakhis, friendly conversations, and assuming God as their companion. In a dance performance, the characters like Krishna, Radha, and Sudama are shown as Sakhya with the Bhakta (dancer), which highlights the Sakhya Bhakti.

Abhinaya items: -

- Padam – The evidence of Sakhya Bhakti can be seen in the very famous Padam composed by Kshetreyya, 'Yenta Chakkani Vade na Sami', here the dancer is Radha asking people who have seen my Sakha Krishna, and continues by explaining his good qualities.
- Javali – In Javali, the Nayika is having an intimate conversation with his lord, and asking him to embrace her and go along with her. For example, 'Ae ra rara' Javali, here the essence of Sakhya Bhakti can be clearly seen.
- Varnam – Varnam is the item that has a perfect blend of nritta and abhinaya. For example, in 'Manavi' Varnam, the Nayika is requesting the Nayaka, who is lord Shiva, to listen to her request and come immediately to her and embrace her, as she is now unable to endure the pain of separation. So, here the conversation between the Bhakta and the lord can be seen.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.027

IX. Ātma-Nivedana - Ātma-Nivedana means to surrender completely to God. Among the Nava-Vidha Bhakti, it is believed that Ātma-Nivedana is the highest intense form of devotion to offer oneself completely to the lord.

Abhinaya items: -

- **Keertanam –** The essence of Ātma-Nivedana can be clearly felt in Keertanam. For example, in 'Charukeshi' and 'Shriman Narayana' Keertanam, the dancer depicts the Bhakta who urges their God and Goddess to take them under their protection; they completely surrender themselves.
- **Varnam –** In many Varnams, the nayika shows the state of surrender. For example, 'Nee Manamirangi' and 'Shree Krishna Kamalanatho' Varnam. In Nee Manamirangi Varnam Bhakta, bow to Lord Muruga, whereas in Shree Krishna Varnam, bow to lord Krishna. The emotional depth and intensity of Ātma-Nivedana can be strongly felt in these items.

Audience Perspective: -

- When an artist performs these abhinaya items, which incorporate a comprehensive scope of Nava-Vidha bhakti, it creates an invisible connection between the performer, the audience, and the performance space. While dancing, the performer attempts to convey the Bhakti Bhava to the audience and evoke the spiritual essence of the items. And this stage is only achieved by the dancer when they indulge themselves in a pure spiritual practice (sadhana). In the items where the dancer performs with Sattvika abhinaya, they engage in Manodharma, which means they express one line of the composition in multiple ways. And this becomes possible only when they genuinely feel the item, at which point they can express the meanings effortlessly. It is said that Indian classical dance should be performed in front of an audience with some knowledge of classical dance, which makes it easier to establish a connection between the performer and the spectators. When the performer successfully evokes the divine emotion in the spectators, they feel uplifted beyond the entertainment. There is also a very significant role of performance space, that where the artists are performing, whether it is a temple, sabha, or stage. When the performer performs at the temple or sabha, it becomes a little easier to

make the performance space spiritual, as the place itself acts as a catalyst for the performance; the divine aura can be felt by everyone. In modern times, Bharatanatyam is performed in a proscenium stage globally on occasions like concerts, cultural festivals, and academic events. Even here, the performer performs these items and develops the bhakti bhava in the audience, even if they don't have any spiritual background; this is the beauty of the connection between the Bharatanatyam and Nava-Vidha Bhakti.

Conclusion:

This research provides a great insight into the influence of the Nava-Vidha Bhakti in an abhinaya repertoire of Bharatanatyam. It offers a significant lens to understand the depth of Bharatanatyam's abhinaya items. Each form of Nava-Vidha Bhakti, whether it is a Śravaṇa or Ātma-Nivedana, clearly states the emotional state of devotion within the dance items. The researcher has highlighted the items from the Margam that perfectly convey the meaning of the particular Nava-Vidha Bhakti. For audiences, it proves more than the entertainment factor, as it evokes the essence of devotion and makes them feel the spiritual and divine aura of Bharatanatyam. Performing the mythological stories is also a very suitable medium to maintain and preserve our Indian heritage, as the new generation is forgetting our own history and culture. Thus, Bharatanatyam emerges not only as a classical art form but also protects the essence of Bhakti traditions through its expressive medium.

References

1. Bharata Muni, (2006), *The Nātyaśāstra* (M. Ghosh, Trans.), Asiatic Society.
2. Coomaraswamy. A.K. (1956), *The mirror of gesture.* Munshiram Manoharlal.
3. coomaraswamy, A.K. (1957), *The dance of Śiva: Fourteen Indian essays.* Dover Publications.
4. Devi, R. (1990), *Dance dialects of India.* Motilal Banarsidass.
5. Goswami, R. (1998), *Bhakti-rasāmṛta-sindhu* (Trans. by various scholaras). Motilal Banarsidass.
6. Goswami, R. (2003) *Ujjvala-nīlamaṇi*. Gaudiya Vedanta Publications.
7. Sarabhai, M. (1989), *Understanding Bharatanatyam*. Darpana Academy of Performing Arts.
8. Vatsyayan, K. (1996). *Indian classical dance*. Publications Division, Governmment of India.
9. Venkataraman. L., & Pasricha, A. (2002). *Indian classical dance : Tradition in transition*. Roli Books.
10. Zubko, K.C. (2014), *Dancing bolies of devotion : Fluid gestures in Bharatanatyam*. Lexington Books.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.028

NEP 2020 as a Catalysr for a New Era in Music Education

Puja Singh*, Dr. Jaya Shahi**

Abstract

National Education Policy (NEP) 2020 is a significant development in Indian higher education as it has realized the music as a significant academic, cultural, and cognitive subject. In the past, music has been considered a periphery activity, but NEP 2020 keeps it in a comprehensive and flexible education system, which attaches importance to learning in action and has relationships between performing arts and other fields. The policy places a lot of emphasis on creativity, culture, Indian Knowledge Systems (IKS) and competency-based education. This urges institutions to recreate music curricula to integrate traditional music (Indian, classical and folk music) with the present practices and technological tools. In spite of this progressive vision, the institutions of higher learning continue grappling with such serious challenges as old-fashioned infrastructure, shortage of trained faculty, inadequate research opportunities, and skewed funding which limits access to digital resources. Nonetheless, with the introduction of NEP-inspired innovations such as experiential learning, modular courses, digital music production, interdisciplinary teamwork, and community involvement, universities will have an opportunity to make music education a credible field of study with cultural and professional value. NEP 2020 is a catalyst at a bigger scale because it will be reconsidering music education in India. It removes music to the periphery and brings its place to a centre of focus as a means of cultural continuity, creativity and future-proof jobs. Whether higher education can develop an inclusive, innovative and culturally-based environment where music can be learnt highly depends on the success of its implementation.

Keywords: *NEP 2020, Music Education, Higher Education, Experiential Learning, Arts Integration, Cultural Identity, Curriculum Reform, Indian Knowledge Systems.*

*Research Scholar : Department of Preforming Arts, Central University of Jharkhand, Ranchi, Jharkhand, E-mail: puja7shine@gmail.com

** Assistant Professor : Jaya.shahi@cuj.ac.in

Introduction

The most important report on transformation of India's educational landscape for the 21st century proposed in the National Education Policy (NEP) 2020 (Bhardwaj et al., 2024). It heralds 'the move from rote to name, the educational process based on creativity, flexibility, aesthete perception and holistic liberty' (Dixit & Dixit, 2024). It importantly values and respects the arts in general but music specifically as critical aspects to a child's education (Halder et al., 2023). Not looking at music as a "secondary" thing or co-curriculum initiative but considering it to enhance cognitive skills, emotional well-being, cultural identity and creative thinking (Verma & Tiwari, 2025). The result of this re-orientation is that music can function as a subject which has meaning and relevance for human life and progress into society (Mandavkar, 2023).

Music, part of India' cultural inheritance has ever held centre stage in the country. Sound of Music in India, classical, folk and regional medium traditions have influenced the thought process of people from time immemorial (Prabhakar, 2023). But in spite of its importance, particularly for maintaining that traditional straight seam society, music was left out in the cold as far as formal academic metrology went. Music was seldom allowed to exist anything other than isolated and marginalised in a few grad student silos or as some extracurricular add-on. NEP 2020 seeks to combat this narrow vision by incorporating music into the broader academic framework and nudging institutions to acknowledge its intellectual and cultural merit (Mandavkar, 2025). In this way, other than its nature as an art, music is a methodology of exploration and communication about thought protest and innovation (Khan & Husain, 2025).

NEP is based on learner cantered education, where the students enjoy freedom to learn according to their interest and require working cooperatively and through experimentation (Mahajan & Godbole, 2024). Music is a perfect fit for such aims, because it boosts focus, creativity, critical thinking and emotional regulation (Halder et al., 2023). Through listening, performing and creating, music provides a more experiential and holistic way for students to learn. At university, Lindo Ferguson believes these are skills that can help create graduates who are confident speakers and culturally competent thinkers. Music emerges as a major player in the type of higher-order skills that NEP wants

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.028

to impart across disciplines (Yadav, 2025). Further, NEP 2020 prompts higher educational institutions to redefine their pedagogical ethos where "learning environments are moving beyond passive knowledge reception to active learning involving artistic inquiry." This cultural shift does not only advance the musical life of a school, but would also be used to elevate its position among the other disciplines, that have always been considered to be more serious, in terms of knowledge testing. The re-defined role of music in the discourse of education with the coming of the Indian century of knowledge is indicative of a broader re-evaluation of creativity as a field of scholarship and as a social necessity.

NEP 2020 and Its cultural-educational vision: The NEP prioritizes the variety of cultural traditions in India, and the focus on institutions introducing the use of Indian Knowledge Systems in teaching and research (Mandavkar, 2025). This encompasses Western, classical music, folkways, regional art forms and local community-based cultural knowledge (Prabhakar, 2023). Some institutions and instrumental groups should not so much educate in music as study its history, language, philosophy and culture. The policy enables a flexible structure of study where learners can take music as their major, minor or an interdisciplinary along with subjects like psychology, media studies, cultural studies, linguistics and technology (Verma & Tiwari, 2025). This means that learners can study music as a truly academic subject with wide cultural and professional connection (Mandavkar, 2023).

Music Education Before NEP: Low and High-Point Music education before the National Education Policy (NEP) continued to be one of the most degenerating sectors in Indian institutions on account of its antiquated curriculum, untrained faculty, lack of research opportunities, inadequate infrastructure (Bhardwaj et al., 2024). Music was typically the subject of performance embedded without explicit interests on the analytical, technological and interdisciplinary approach. As a consequence, students had less opportunities to study music in interaction with new sectors such as digital arts, sound design, therapy (music) and media production or cultural studies. NEP addresses these limitations by advocating for contemporary pedagogies, experiential learning methodologies and culturally inclusive content that can capture India's diverse art scape (Dixit & Dixit, 2024). The policy encourages institutions to archive the traditional musical forms, so

that research-based programmes are created and modernisation of music education is done on academic demands (Mandavkar, 2025). An often-forgotten challenge in the pre-NEP period was the lack of access to diverse international music practices, thereby limiting students' capacities to situate Indian music within global academic discourse. In addition, the lack of formal exposure to research meant that students lacked scholarly writing, documentation and archiving skills. With NEP stepping in as an intervention, institutions finally have a job profile to upgrade music programs to global standards by setting up research labs, digital archives and collaborations that help students navigate through music as a dynamic field moulded by technology, space and global exchanges.

Higher Education - Music Education: New Education Policy gives freedom to universities and colleges to restructure the music courses in such a way that they are holistic, practice-oriented and at par with global standards (Verma & Tiwari, 2025). Institutions can run modules in performance, theory and musicology, digital production of music, ethnomusicology, research methods and creative arts. Students are also urged to engage workshops, live performance projects, inter-disciplinary collaboration and community-based arts activities. These experiences prompt the development of an artistic practice as well as that of analytical, communicative and technological skills (Mahajan & Godbole, 2024). Higher education will become a forum where not only music can be studied but applied to areas like cultural sustainability, creative industries, digital innovation and social practice (Yadav, 2025). NEP 2020 also supports the development of credit-earning internships, artists residencies and collaborative studio environments where students can work in real-world professional settings based on their learning. Students engage in the real world by contributing to cultural festivals, media labs or interdisciplinary innovation hubs and get first-hand experience of career paths like Music Therapy, Sound Engineering, Audio Branding, Cultural Management or academic research. This whole composition environment turns universities into creative centres where music is not only taught, but also created, examined and developed anew.

Challenges and Responsibility for Institutions: Despite the looking opportunities evolved by NEP, HEIs would have certain challenges on the ground. Most universities are without qualified music teachers, professional studios,

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.028

musical instruments and digital tools that today's kids need to succeed in music education (Halder et al., 2023). Institutions need to rework on their infrastructure, increase the strength of teachers, and rewrite their courses in accordance with NEP (Mandavkar, 2023). Furthermore, music education needs to meet the technological challenges, there are tools for online learning, digital databases collections and virtual musical instruments with multimedia support (Khan & Husain, 2025). Institutions too are responsible for incorporating traditional knowledge systems, supporting research efforts and partnering cultural organisations to keep music education meaningful and effective. Solving these problems is critical if we are to achieve NEP's vision of a thriving, inclusive and future-ready music education system (Prabhakar, 2023).

In general, NEP 2020 places music at the heart of India's educational and cultural growth. To facilitate and support creativity, cultural diversity, experiential learning and interdisciplinary approaches in music education in higher ed and to more effectively prepare students for a broad range of (academic & professional) pathways (Verma & Tiwari, 2025). This longer introduction sets up the foundation of the remainder of the essay, attempting to underline what is at stake in approaching music as a serious, enriched and future-focused object of study (Mandavkar, 2025). Other practical considerations that may limit the scope of implementation may be related to resource capacity but also, as faculty and administrators alike need professional development to understand how NEP have academic and structural impacts. Ongoing teacher retraining, digital literacy seminars and collaboration with industry will be necessary to realize the spirit of the policy. They also need to invest for access so that rural/ marginalised students can actually have an equal share of the tech-reforms-gains in music education. In other words, the institution's responsibility is not just a shift in curriculum, but with regard to building equitable, technology-ready and culturally-grounded learning ecosystems.

Conclusion

By providing new academic, cultural and developmental legitimacy to music education, NEP 2020 does not just relegate it from an extracurricular activity to cultural discipline but also as cognitive development, emotional maturity and creativity-building discipline with implicit premise on better understanding of cultures. One of the strongest aspects to music (one

that is rarely taught in a structured sense) is its innate ability to help people relax, focus and be mentally well. Whether a student, science or commerce, humanities or engineering, management tempo- music is the all-round friend that helps blend emotional stability and academics in just the right mix. Legitimising music as a credit-worthy subject and promoting interdisciplinary exploration, NEP 2020 makes it possible for students to connect up with any one discipline and fuse together learning as well as a means of creative expression. Much improved curriculum design, learning by doing, digital technology and ultra-culturally specific teaching and learning materials will enable the institutions of higher learning to create music programmes that help students in connection to academic stress along with cultivation of their artistic talents. It has challenges in the form of inadequate infrastructure, talented faculty and inequality in access to digital environment yet NEP 2020 will transform. When the institutions invest in such upgrading of the facilities, teacher education, research-based curriculum design and inclusive access, music education can become one of the sectors that will not only assist in preservation of the cultural heritage but also in elimination of stress levels among the students, combat emotional resistance and lead to the full 360 development of the personalities. By the end of the day, NEP 2020 will turn music into an investment in education and a lifelong resource that can further pay off in your mental health and creativity and the intellectual and cultural future of India.

References

- Verma, A. K., & Tiwari, J. P. (2025). Integrating performing arts in education: A perspective on NEP 2020. International Journal of Science, Architecture, Technology and Environment, 2(4), 724-727. https://doi.org/10.63680/aqw6nhgg755cg
- Mandavkar, P. (2023). Language, art, and culture in NEP–2020. SSRN. https://doi.org/10.2139/ssrn.4397508
- Halder, T., Sujathamalini, J., & Ravichandran, G. (2023). According to NEP 2020, the role of art education techniques in school level for inclusion of students with disabilities. International Journal of Research and Review, 10(3). https://doi.org/10.52403/ijrr.20230343
- Bhardwaj, M., Ranjan, A., & Sharma, J. (2024). Curriculum and NEP 2020: Perspectives and inter-connections. Indian Journal of Public Administration, 70(2), 237-255. https://doi.org/10.1177/00195561241230244
- Prabhakar, A. K. (2023). The intersection of traditional wisdom and modern education: Unpacking the potential of folk pedagogy in the context of India's National Education Policy 2020. The Creative Launcher, 8(2), Article 15. https://doi.org/10.53032/tcl.2023.8.2.15
- Dixit, M., & Dixit, K. (2024). NEP

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.028

2020: A roadmap towards innovative pedagogy to promote enjoyable learning. International Journal of Emerging Knowledge Studies. https://doi.org/10.70333/ijekS-03-09-032

- Yadav, N. (2025). Relevance of the ancient Indian curriculum and pedagogic approaches in the present context with reference to NEP 2020. Eureka: Journal of Educational Research, 3(2). https://doi.org/10.56773/ejer.v3i2.59
- Mahajan, Y., & Godbole, P. (2024). Curtains up on learning: Theatre pedagogy as a game-changer in primary education under NEP 2020. International Journal of Multidisciplinary Research & Reviews, 3(4), 120–131. https://doi.org/10.56815/IJMRR.V3I4.2024/120-131
- Khan, M. T. A., & Husain, N. (2025). Integrating the Indian Knowledge System into education through NEP-2020: Challenges, opportunities and strategies. Zenodo 3(5). https://doi.org/10.5281/zenodo.15645601
- Mandavkar, P. (2025). Indian knowledge system (IKS) and National Education Policy (NEP-2020). SSRN. https://doi.org/10.2139/ssrn.5205032

Beyond Form and Tradition: The Distinctive Raga Aesthetics of Kishori Amonkar

Sakshi Singh

Abstract-

This paper contends that Kishori Amonkar fundamentally redefined raga aesthetics in Hindustani classical music by centring emotional depth and spiritual engagement. Her distinctive reinterpretation of raga, through the development of Bhavpur Gayaki, included three main innovations: first, she expanded the emotional range of ragas by deliberately introducing new emotional colours beyond those traditionally associated with each raga; second, she incorporated technical features and stylistic nuances from other gharanas, such as adopting their alankaar, note emphasis, and phrasing, to enrich her core Jaipur Atrauli style; third, she prioritized improvisation and individual expression over rigid adherence to established compositional forms, restructuring performances to reflect the unique emotional context of each rendering. These departures moved raga from a tradition-bound practice to an art focused on expressive and affective power. By examining her methods and philosophy, this study demonstrates that Amonkar's innovations released raga from rigidity, establishing it as an expressive medium for profound emotional and spiritual communication.

Keywords: *Raga Aesthetics, Indian classical Music, Innovation with tradition, Bhava and Rasa, Jaipur Atraulli Gharana.*

Introduction

Rasa theory, central to Indian classical music, explores the evocation of emotions in performance and is foundational to artistic expression across music, dance, drama, and literature. Rooted in Bharat Muni's Natyashastra, written between the 2nd century BCE and the 2nd century CE, rasa, meaning essence, flavour, or emotion, has historically defined artistic excellence and emphasised music's early ties to theatre and the performing arts.

Designation – Research Scholar (Vocal Music), Office / Home Address – Central University of Jharkhand /Ayodhyapuri Road, no. 9 B Kokar, Ranchi, Jharkhand,83400, Email ID - sakshiisingh7@gmail.com, sakshi.22240203001@cuj.ac.in, Mobile number – 7765986339

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.029

Music requires emotion and feeling for completeness because these qualities bring the art form to life. The central argument is that raga aesthetics, grounded in rasa, are critical to attracting listeners and evoking emotional responses. Thus, the effectiveness and impact of a performance rely on engaging the audience through these aesthetic qualities.

After discussing the broader role of rasa in Indian classical music, it is important to focus on how individual artists interpret these concepts. Kishori Amonkar, a foremost artist of the Jaipur Atrauli gharana, was especially noted for the emotional and aesthetic depth of her music. Her performances were marked by powerful expressions that elicited profound joy and emotion in listeners.

Vidushi Kishori Amonkar, born 10 April 1932 in Goa to Madhav Das Bhatia and renowned Jaipur Atrauli gharana vocalist Mogubai Kurdikar, was the leading exponent of her gharana. She excelled in khyal, semi-classical music, Marathi abhangs, and Natya sangeet. Her training began with her mother and continued with maestros from the Jaipur Atrauli, Gwalior, Agra, and Bhindi Bazar gharanas.

Mogubai Kurdikar was a strict teacher, often having Kishori sing sthayi just once and emphasising careful listening. She limited performance opportunities to prioritise riyaaz, with Kishori accompanying on tanpura in her early years.

Kishori Amonkar deliberately departed from traditional Jaipur gharana practices through several innovations. She integrated features from other gharanas into her singing, placed greater emphasis on improvisation, and developed Bhavpur Gayaki to prioritise emotional expressiveness over strict adherence to form. This departure is central to understanding her artistic evolution, as it became a major point of both criticism and praise.

She believed that

"There is nothing called a gharana. There is only music. It has been bound in these gharanas, and that is like dividing music into specific castes. One should not teach the students the limits of this art. There are none. But one has to understand the grammar. Which is why one is taught the alankaar, the ragas."

-Amonkar on gharanas

This statement clarifies Amonkar's primary argument that true artistry should rise above restrictive traditions.

Kishori Amonkar articulated her aesthetic philosophy in many lectures, focusing especially on Rasa Siddhant. She studied theory extensively, reading Bharatmuni's Natyashastra to deepen her understanding. Her key argument was that rasa is fundamental to meaningful music and that any performance is incomplete without it.

In an interview with Somerset Maugham, "A raga is actually a feeling; it is about creating an atmosphere. It has no boundaries. Tell me the boundaries of any season, summer or winter. Can they be junctionised or partitioned? We tend to give preference to the medium rather than its purpose, which is to reach the universal. In its final analysis, Indian classical music is a feeling. It is not about you and me. It is not even about the raga or the singer. It is about universality. It is true. The final destination is peace."

Kishori Amonkar also mentored many disciples who continue the Jaipur Gharana tradition. Notable students include Manik Bhide, Maya Upadhye, Suhasini Mulgaonkar, Raghunandan Panshikar, Nandini Panshikar-Bedekar, Malati Kamat, Arun Dravid, Meera Panashikar, Sulabhatai Pishavikar, Meena Joshi, Vidya Bhagwat, Aarti Ankalikar-Tikekar, Devaki Pandit, Sangeeta Katti, Manjiri Asnare-Kelkar, and violinist Milind Raikar, among others.

Kishori Amonkar received India's Padma Bhushan (1987), Padma Vibhushan (2002), Sangeet Natak Akademi award (1984), Academy Fellowship (2001), Outstanding Konkani Award (1991), and M.S. Subbulakshmi Award (2016).

To deepen our understanding of Amonkar's innovations within the tradition, it is essential to revisit the broader concept of aesthetics itself.

“The term 'aesthetic' in Indian theories connotes the idea of' rasa', which is a very old concept as it goes back to the Natyasästra of Bharata, written not later than the 4th century. A.D. T races of the concept may even be discovered in the two great epics, viz., the Ramayana and the Mahabharata and in the Puranas or even in the Vedas and the Upanisads, which came into being long before the beginning of the Christian era. The concept of the Beautiful is a very old one in Western theories also, but the term'aesthetic' was not used long before”

It is a branch of philosophy that studies beauty. It explains how art reveals emotions through the medium of rasa. There are many types of art: dance, music, poetry, sculpture, architecture, painting, etc. If we talk about the aesthetics in Indian music, it means how to make music artistic with the aesthetic work, so that it becomes graceful and attractive in a way that affects humans. And which makes art even more beautiful and expressive. “Aesthetic' means the philosophy of the Beautiful; the history of aesthetics must mean the history of the philosophy of the Beautiful, by which philosophers have attempted to explain or connect the facts that relate to beauty.”

“The German philosopher Baumgarten first used the term in 1735, and in 1750, he wrote a big book called 'Aesthetics'. Bernard

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.029

Bosanquet says, "It was not before the latter half of the eighteenth century that the term 'Aesthetic' was adopted with the meaning now recognised to designate the philosophy of the 'Beautiful' as a distinct province of theoretical enquiry."

Tracing the history of aesthetics reveals its roots in ancient Greece, where philosophers such as Pythagoras, Aristotle, and Plato closely examined the role of emotions in art.

Pythagoras (6th century BCE) – He discovered the relation between music and mathematics, and found that the whole universe is established in the "Harmony of the spheres". He also taught music not merely for entertainment, but as a scientific branch.

On the other hand, Plato (427-347 BCE) believed that art is an imitation of reality, and the whole universe is also not real; he thought that an artist merely copies the external form of art and presents it to the public rather than living its reality. He was very negative towards the arts, but he is the one who popularised Western aesthetics.

Aristotle (384 BCE-322 BCE) was the student of Plato. He believed that Music is a natural way to bring pleasure. Music is used for relaxation, and it can be used to improve emotional health problems. Aristotle wrote a book called Poetics, in which he introduced the concept of Catharsis. In which he explained the idea of releasing emotions through art, such as crying, screaming, grief, and pity.

Indian Philosophers

Many Indian philosophers have written about Rasa Siddhant in their books, whose names are given below.

1. Bharata Muni – Natyashastra – 2nd century BCE
2. Anandavardhana – Dhvanyaloka – 820 CE
3. Abhinavagupta – Abhinavabharati – 950 CE
4. Mammata – Kavyaprakasa – 1050 CE
5. Vishwanatha Kaviraja – Sahitya Darpaṇa – 1350 CE
6. Jagannatha Panditaraja – Rasagangadhara – 1590 CE
7. Bhamaha – Kavyalankara – 700 CE
8. Dandin – Kavyadarsa – 725 CE
9. Vamana – Kavyalankara-sutra-vṛtti – 800 CE
10. Kuntaka – Vakrokti-jivita – 950 CE
11. Rajasekhara – Kavyamimamsa – 900 CE
12. Bhoja – Sṛingara-prakasa – 1020 CE
13. Appayya Dikṣita – Kuvalayananda – 1520 CE
14. Rudrata – Kavyalankara – 9th century CE
15. Hemachandra – Kavyanusasana – 1088 CE

Here, we will discuss two main works on Rasa Siddhant:

Bharat Muni's Natyashastra and Abhinavagupta's Abhinavabharati.

One of the oldest literary theories found in the Indian aesthetic tradition was the theory of rasa, which Bharatamuni first expounded in his seminal treatise on dramaturgy, known as the Natyashastra. the word ‘rasa’ literally signifies two main meanings: it represents the essence and what is tasted or felt.

Abhinavagupta (Abhinavabhrati) 10th Century. Abhinavagupta, who was a Kashmiri philosopher, provides a detailed analysis of Bharata's rasa-theory in his commentary on Natyashastra, known as Abhinavabhrati, in which he claims that Natyameva Rasah," i.e., "drama is rasa" because it is "different from worldly objects [and] it is a thing which is of the nature of rasa and can be known by direct experience in the form of aesthetic enjoyment”

Natyashastra: The Philosophical and Aesthetic Vision of Bharata Muni

Natya Shastra is the first available text written back in the 2nd century BCE-2nd century CE, by Bharat Muni, in which aesthetic elements have been described in detail. The term Natya Shastra is formed by the combination of two words: Natya means to act, and Shastra means manuscript, text, or book. This textbook consists of 36 chapters, in which a detailed explanation of dramatics, plays, musical scales, and instruments has been thoroughly discussed. This book was mainly written for dramatics, but in its last few chapters, 28-33, music-related interpretations can be seen. which shows that drama and music were interrelated and are not separate from each other. In the Natyashastra manuscript, we get detailed information about Gaayan Vaadan and Nritya, Swaras, Raag, Taal, Gram, Murchanna, Rasa, Bhava, all 4 types of Vadya (Instruments), i.e. Tata Vadya, Shushira Vadya, Avanaddha Vadya and Ghana Vadya. all types of Jaati gaan, Dhruva, Geeti and 16000 Shlokas. The Natyashastra is the classical compilation of knowledge on Indian performing arts forms. It is also considered to be the foundation text of Rasa theory, in which it is said that the most important thing in an art is aesthetics, which enhances the art. Natyashastra was added to the UNESCO Memory of the World register in April 2025.

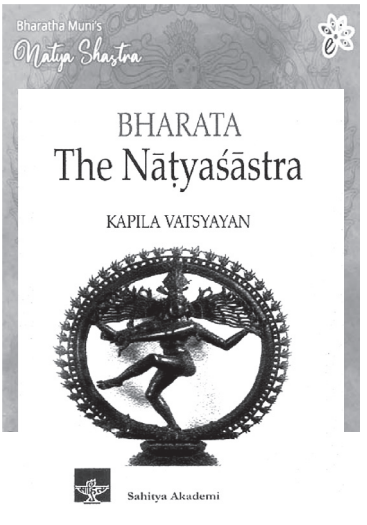

Figure:02

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.029

"The Natyasastra states that the purpose of a dramatic performance is to arouse in the audience the nine rasas, or emotional flavours. Sringar is romantic; Hasya is comic; Karuna is pathetic; Raudra is enraged; Veera is heroic; and Shanta is tranquil. Bhavas, on the other hand, are the emotional and psychological states that the performers represent on stage and which enhance the performance's overall visual appeal and emotional impact.

The connection between mood or bhava and emotion or rasa is as follows-

The relation among bhava, rasa and Sangeet(music)-

Mood (Bhava)	**Emotion (Rasa)**
Pleasure	Attraction (Sringaar)
To laugh	Laughter (Hasya)
Anger	Rage (Raudra)
Sorrow	Compassion (Karyunya)
Disgust	Disgusted (vibhatsa)
Fear	Terror (Bhyankar)
Perseverance	Valour (Vira)
Amazement	Wonder (Adbhutam)
Peace	Peaceful (Shanta)

Rasa and Bhava are important elements in Indian classical music. Without them, music is just compositions of sur, tala, and notes. There are eight types of Rasa: Sringara, Hasya, Karuṇa, Raudra, Veera, Bhayanaka, Vibhatsa, and Adbhuta. Shanta rasa is the ninth rasa, which was later added. In this way, there are 9 types of rasas.

1. Sṛingara Rasa- Sringar rasa is described as the main rasa in all the nine rasa and is considered as the king of all the rasa; Shringaar Rasa comes from the Sanskrit word, which means embellishments and adornment. It is expressed through dance, music, poetry, painting, and sculpture. It means the aesthetic elements of love and beauty; it reflects love, beauty, romance, and attraction. Love is considered the most important emotion in a human's life. Its sthayi bhava is called Rati. Shringaar Rasa can also be described as the emotional love of Radha, Krishna, and Shiva Parvati.

2. Hasya Rasa- This rasa is an aesthetic emotion of joy and Laughter. Hasya rasa is experienced when a person feels amusement, joy, and happiness. Its sthayi bhava is hasya. This emotion arises when we are delighted by something or in a happy mood, and are in funny situations. It is certainly used to portray a mock character or to show joyful emotions, as shown in Figure 1.2

3. Karuṇa Rasa- Karuna rasa means to feel the grief or sorrow. This emotion is felt when a person goes through pain or the tragedy of losing someone. It evokes grief, sadness, or despair. Its sthayi bhava is shoka. This is an emotion of grief or sorrow.

4. Raudra Rasa- The word Raudra derives from Rudra, a strong form of Lord Shiva, representing devastating, intense anger. Its Sthayi bhava is Raudra. This rasa expresses rage, anger, temper, madness, and wrath. This rasa emerges when a person feels betrayal, unfairness, misdeed, or cruelty.

5. Vira Rasa- Vira rasacomes from the Sanskrit word, which means brave. Its sthayi bhava is Utsaha. This rasa expresses the feeling of courage, fearlessness, confidence,

6. Bhayanaka Rasa- Bhayanak rasa arises when a person experiences fear. This rasa emerges when a person feels anxiety, panic, dread, horror, or worry. Its sthayi bhava is Bhaya. This feeling arises when a person is frightened or is disturbed when a person is made to suffer a lot, or is afraid of something uncertain, or is scared of someone's death, getting hurt, or failing.

7. Vibhatsa Rasa- Its Sthayi bhava is Jugupsa. It emerges when a person witnesses hatred, repulsion, and disgust. Its sthayi bhava is. It occurs when a person has suffered an awful and unfortunate situation that has mentally harassed them.

8. Adbhuta Rasa- Adbhuta rasa is the eighth rasa given by Bharat Muni. Its Sthayi bhava is Vismaya, which means amazement, surprise, or admiration. It emerges when a person experiences something extraordinarily amazing.

9. Shanta Rasa- This is the ninth rasa, which Abhinavagupta later added; it means inner peace, silence, harmony. Its sthayi bhava is Sama. These emotions emerge when we experience any bad incident and feel free and calm after coming out of that.

Figure: 03

Raga Aesthetics – Raga aesthetics is an innovative approach to Indian classical music where rasa and bhava are given priority. Raga is a set of specific notes that is sung, and it sounds exceptionally beautiful. All ragas have the power to evoke feelings and emotions. It is a melodious fusion of musical notes that connects the audience and the performer to the emotional depth of the feeling.

"The Raga-Rasa framework is rooted in the philosophical and cultural traditions of ancient India, where music was considered a sacred art form capable of evoking profound

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.029

emotional and spiritual experiences. This framework recognises that music is not simply a reflection of emotional states, but rather an active agent that can shape and transform emotions, influencing the listener's emotional landscape."

Raga Rasa theory- Raga Rasa theory states that every raga has emotional depth, which we connect with aesthetics. The history of which is reflected in Bharat Muni's Natya Shastra, where it is said that every raga creates an emotional intensity. In music, raga aesthetics encloses a deep connection between harmony and emotions. Each raga, when performed with inner aesthetic perception, creates a subtle emotional or aesthetic atmosphere, leaving the audience tearful by the performance.

Core Aspects of Raga Aesthetics

- Rasa: Rasa means to evoke emotions from raga, like sringaar rasa, karuna rasa,vibhatsa rasa.
- Bhava: Bhava means to evoke emotions and express them with emotional depth. Bhava is an essential part of raga presentations because it brings emotional nuance to the music.
- Laya and Tala: Laya and taal are a very important part of raga aesthetics. Laya means speed, which needs to be balanced in music, and taal plays a special role in mathematical accuracy, so they play a crucial role in creating an aesthetic atmosphere.
- Aalap and Aesthetic Experimentation: Aalap plays a prominent role in establishing the conceptual framework of aesthetics. Aalap is the emotional and spiritual part of a raga, where an artist portrays the raga's emotional essence.
- Aesthetic perception of the performer: Aesthetic perception of the performer means how the performer expresses it while singing and how much emotion he portrays with it.

Nine Rasas and Their Corresponding Ragas

1. **Sringaar Rasa (Love, Beauty):**
   Ragas: Khamaj, Desh, Tilak Kamod
   Experience: Expresses tenderness, romantic devotion, and aesthetic beauty.
2. **Hasya Rasa (Joy, Humour):**
   Ragas: Hamsadhwani, Kedar
   Experience: Creates a cheerful, light, and uplifting mood.
3. **Karuna Rasa (Compassion, Pathos):**
   Ragas: Bhairavi, Todi, Marwa
   Experience: Evokes deep empathy, sensitivity, and emotional sorrow.
4. **Raudra Rasa (Anger, Fury):**
   Ragas: Malkauns, Darbari Kanada
   Experience: Conveys intensity, power, and passionate energy.

5. **Vira Rasa (Heroism, Courage):**
   Ragas: Bilawal, Deshkar

Experience: Inspires valour, confidence, and inner strength.

6. **Bhayanaka Rasa (Fear, Anxiety):**
   Ragas: Puriya, Marwa
   Experience: Creates a sense of suspense, awe, and emotional tension.
7. **Vibhatsa Rasa (Disgust, Aversion):**
   Ragas: Todi, Bhairav (in rare contexts)
   Experience: Symbolises rejection of negativity and purification of emotion.
8. **Adbhuta Rasa (Wonder, Amazement):**
   Ragas: Yaman, Megh, Maru Bihag
   Experience: Evokes marvel, curiosity, and a feeling of spiritual elevation.
9. **Shanta Rasa (Peace, Serenity):**
   Ragas: Bageshree, Ahir Bhairav, Shankara
   Experience: Brings meditative calm, spiritual balance, and inner harmony.

Emotive Raga Aesthetic in the Artistry of Kishori Amonkar

1. **Yaman Raga Yaman | Kishori Amonkar | Live in Concert | Swar Utsav 2003 | Music Today."**

- https://youtu.be/RSba7WebiXo?si=grge77POU3LjQQVV

(This performance video is taken from the YouTube platform.)

Raga Yaman is a prominent evening raga, which belongs to the Kalyan thaat, and evokes serenity and peace.

- Vadi: Ga
- Samvadi: Ni
- Jaati: Sampurn
- Aroha: Ni, Re, Ga, Ma#, Dha, Ni, Sa'
- Avaroha: Sa', Ni, Dh, Pa, Ma#, Ga, Re, Sa
- Pakad: Ni. Re Ga Re, Pa Re, Ni. Re Sa
- Rasa evoked: Shaant Ras, Bhakati Ras, and Adbhuta Ras, Bhakati Rasa

It has been presented by Kishori Amonkar. This is a wonderful presentation by her; listening to which the mind becomes calm and peaceful. In this raga, she has not only followed the raga structure but has also found its emotional depth. She awakens Shaant Rasa and Adbhuta Rasa

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.029

with her presentation. In this raga, Kishori Ji is beginning to meditate on each note very slowly. Her voice is wonderful in the song, with each note calming the surroundings and giving us the feeling of peace and amazement. Kishori Amonkar used to meditate before she set for a performance, and when the audience listens to her songs, it gives the feeling of devotion. People see her as a spiritual practitioner or as a devotee rather than a performer, which evokes bhakati rasa. And when she sang taan, it flows in a very fluid way; there is a lot of energy in it, and the tivra maa is used beautifully; it is very wonderful in the ears, it gives us a wonderful feeling, and thus it emerges Adbhuta rasa.

2. **Raag Bhoop | Kishori Amonkar |Live in Concert\ Hari Mahadev Vaidya Hall, Dadar (Mumbai) |1970.**
   Youtubelink: https://youtu.be/WfKpt-_kLdA?si=DXRt0O-E7AAFIMOA

(This performance video is taken from the YouTube platform.)

Bhoop raga, or bhoopali or Bhupali, is a Hindustani classical raga which belongs to the kalyan thaat. It is an evening raga which is sung during early evening, from 7 pm to 9 pm. It's equivalent to Carnatic raga Mohanam. It has only 5 swaras. Sa,re,ga,pa,dh,sa.

- Vadi: Ga (Gandhaar)
- Samvadi: Dha (Dhaivat)
- Omitted Swaras: Ma, Ni
- Jaati: Audav
- Aroha: Sa Re Ga, Pa, Dha Sa'
- Avaroha: Sa' Dha Pa, Ga Re Sa
- Pakad: Pa Ga, Re Ga, Sa Re, Dha. Sa
- Rasa evoked: Shaant Rasa, Bhakati Rasa and Shaant Rasa.

Raga Bhoop is one of the most beautiful presentations of Kishori Amonkar; her bandish Sahela is a deeply fascinating and famous performance of hers, which she has presented in a very beautiful way. Kishori's voice is not just technical; she sang it with lots of emotion and aesthetic. Her voice is deeply philosophical and spiritual. She sang raga Bhoopali with a deeply spiritual aesthetic realisation which evokes bhakati rasa. Her way of performing simple raga into artistic immersion makes it more attractive. Amonkar portrays compositional structure into emotional depth. Her rendering in Aalap of raga bhoop also evokes shaant rasa. which calms the mind and soul. Her lyrical content and emotional nuance keep the raga's artistic expressivity. Her rendering in each swaras with lots of energy and courage evokes Vira rasa.

3. **Raga Bageshree | Kishori Amonkar | Live in Concert**
   YouTube link: https://youtube/wn0NvRho7EU?si=kzxMLd7AO6IeMVSa.

(This performance video is taken from the YouTube platform.)

Bageshree is a mesmerising raga in Indian classical music which belongs to the kaafi thaat. This raga is generally sung at the second prahar of the night (9 pm to 12 pm)

- Vadi: Ma (Madhyam)
- Samvadi: Sa (Shadja)
- Omitted swaras: Re&Pa in Aaroh
- Jaati: Audav-Sampurn
- Aroha: Ni# Sa Ga# Ma, Dha Ni# Sa'
- Avaroha: Sa' Ni# Dha, Ma Pa Dha Ga# Ma Ga# Re Sa
- Pakad: Dha., Ni# Sa Ma, Dha Ni# Dha Ma, Ma Pa Dha Ga#, Ma Ga# Re Sa
- Rasa evoked: Shringaar Rasa, Karuna Rasa, Shaant Rasa

Kishori Amonkar slowly meditated with each note, and the way she sang each microtone created an emotional yearning. Her use of meend gamak and her vocal quality transform Bageshree into an affective manifestation. She always brought back the raga structure to an emotional and soulful experience. She primarily evokes sringaar rasa by her performance, a feeling of separation from a loved one. By listening to such a masterpiece, one can experience an emotional journey. When Kishori ji progresses through the aalap of Raga Bageshree, it evokes a feeling of calming the mind throughout the aalap, which evokes the Shaant rasa. This raga contains so much pain and compassion that it expresses the sorrow of being separated from one's beloved. This expresses the sentiment of compassion, which evokes karuna rasa, a deep emotional sorrow described by Bharat Muni

4. **Raga Hansdhwani | Kishori Amonkar | Live in Concert**
   Youtube link: https://youtu.be/jdqvV9MVf2A?si=975mg3tKj-ZXTF4j

(This performance video is taken from the YouTube platform.)

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.029

Hansdhwani is a pentatonic raga belonging to Bilawal thaat. This raga is popularly developed in Carnatic music, but is also popular in North Indian music. It is particularly sung at midnight (9 pm to 12 pm)

- Vadi: Pa (Pancham)
- Samvadi: Re (Rishabh)
- Jaati: Audav
- Aaroha: Sa, Re, Ga, Pa, Ni, Sa'
- Avaroha: Sa'Ni, Pa, Ga, Re, Sa
- Pakad: Ni, Re, Ga, Pa, Ga, Re, Ga, Pa, Ni, Sa
- Rasa evoked: Shaant rasa, Bhakati rasa and Shaant rasa.

In Kishori Amonkar's presentation, Raga Hansadhwani unfolds with an aura of purity and devotion. Although the raga is known for its light and joyful nature, Amonkar brings to it a quiet depth that reflects her sensitive artistic temperament. Her aalap develops with graceful pauses, allowing each note to resonate with calm clarity. which evokes Shaant rasa. When she interweaves taans in the middle of the raga, a feeling of wonder and joy arises, which evokes an extraordinary emotion and emerges as Adbhuta rasa. The lyrics of this raga describe Lord Ganesha and create an auspicious atmosphere, which evokes feelings of devotion and brings out the essence of devotion bhakti rasa. The smooth transitions and precise intonation reveal her command over both emotion and technique. Through this thoughtful approach, she transforms Hansadhwani into an experience of spiritual peace, where melody becomes a means of inner expression rather than mere performance.

5. **Raga Bhimpalasi | Kishori Amonkar | Live in Concert |** Youtube link: https://youtu.be/uQghAGGP5fI?si=k2eA4TX3OVe-ALrt

(This performance video is taken from the YouTube platform.)

Bhimpalasi is derived from kaafi thaat. It is an afternoon raga which is sung from 12 pm to 3 pm.

Komal Ga and Ni are used in this raga. Rishabh and Dhaiwat are omitted from this raga. This raga is equivalent to raga Abheri in Carnatic music.

- Vadi: Ma (Madhyam)
- Samvadi: Sa (Sadaj)
- Komal Swaras: Ga & Ni
- Jaati: Audav-Sampurnas
- Aroha: Ni# Sa Ga# Ma, Pa Ni# Sa'
- Avaroha: Sa' Ni# Dha Pa, Ma Pa Ga# Ma, Ga# Re Sa
- Pakad: Ni# Sa Ma, Pa Ga# Ma, Ga# Re Sa
- Omitted notes: Re and Dha in the aaroh

- Time of performance: Afternoon (12 PM to 3 PM)
- Rasa evoked: Sringaar rasa, Karuna rasa, Bhakati rasa

Raga bhimpalasi is a raga that is beautifully performed by Kishori Amonkar, where she blended this raga into the emotional core. As she started singing this raga, we get to see the emotional essence, where she unfolds each note patiently. The way she used meend in this raga creates a feeling of emotional flow. It feels like she is not just performing raga bhimpalasi; she was living it. The raga evokes the feeling of emotional vulnerability. It expresses the emotion of parting from a loved one, which primarily evokes the sentiment of romance she meditated with aalap and emerges sringaar rasa, but Amonkar deepens it with a distinct aesthetic philosophy, which creates a feeling of pain, loss, or separation, which evokes karuna rasa as well. In her delayed thoughts, there was love for her beloved, and along with this, her slow tempo moves felt more like a prayer, and it became a divine devotional. It also transformed into the sentiment of devotion, which evokes bhakti rasa.

6. **Raga Bhinna sadaj | Kishori Amonkar | Live in Concert | Gaan Saraswati Mahotsav Pune| 2013**
   YouTube link: https://youtu.be/ZA2zHAaNj0Y?si=t9T3sTqJ4zx9kqw2

(This performance video is taken from the YouTube platform.)

This raga, called bhinna sadaj, is a prominent raga of Bilawal thaat, which is also known as Kaushik Dhwani. It's an audav jaati raga, which is particularly sung in the evening (6 pm to 9 pm). Rishabh and pancham swaras are particularly omitted in this raga.

- Vadi: Ma (Madhyam)
- Samvadi: Sa (Sadaj)
- Omitted notes: Re & Pa
- Jaati: Audav
- Aroha: Sa, Ga, Ma, Dha, Ni, Sa'
- Avaroha: Sa', Ni, Dha, Ma, Ga, Sa
- Pakad: Ga Ma Dha Ni Dha Sa'; Ni Sa' Dha; Ga Ma; Dha Ma Ga Sa;
- Time of performance: Midnight (9 pm to 12 pm)
- Rasa evoked Shaant Rasa, Karuna Rasa and Adbhuta Rasa

Kishori Amonkar's Raga Bhinna Sadaj is a presentation in which Kishori has done a very beautiful work on aesthetics. The way she used the aalaap and her voice control

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.029

is something that we rarely get to hear. The way she goes from Taar saptak and returns to Madhya saptak to Mandra saptak is something that left the audience totally. speechless. There is a different energy in her each aalaap, which itself makes a beautiful presentation. There is a different calmness in her voice.. This presentation of hers is not just a musical performance but an emotional journey to be lived. Her Raga presentation is far above technical sophistication; she lives an emotional evolution in it and connects her audience to a spiritual and meditative journey. Through her improvisation, she explores each swaras, which give the feeling of amazement and wonder, which evokes adbhuta rasa.

Conclusion

Kishori Amonkar's music goes far beyond the limits of form and tradition, reflecting her deep inner world and emotional sensitivity. Rooted in the Jaipur–Atrauli gharana, she carried its discipline and precision, yet reshaped it with her unique imagination and spiritual understanding. For her, every raga was a living emotion, not just a set of notes or rules. Through her expressive aalap and delicate handling of bhava and rasa, she turned each performance into a journey of self-discovery and meditation. Her music touched listeners not only for its technical brilliance but for its emotional honesty and depth. In this way, Amonkar created her own distinctive aesthetic, one that blends tradition with individuality and transforms classical music into a search for the soul. Kishori Amonkar's profound music is characterised by her blending of technical mastery with emotional depth. Instead of playing Gharana-bound music where other artists don't look beyond their gharana, she developed a different style of music in which she drew her vision from the aesthetics and spirituality. Kishori Amonkar used meend, gamak, and aalaap in such a way that she used to live every raga. She gave the audience such emotional depth with her beautiful presentation of her raga that the audience connected with her. Kishori Amonkar's singing style has broadened the emotional effects hidden in her raga presentation. Kishori ji's artistic effect in a raga can make it beautiful and emotional. Experiencing aesthetics in a flavour through the medium of a raga is beautiful.

References

1. Khurana, S. (2018, April 4). The loneliness of Kishori Amonkar. The Indian Express. https://indianexpress.com/article/lifestyle/art-and-culture/the-loneliness-of-kishori-amonkar-4595452/
2. Ravindran, N. D. (2017, April 4). Why the maverick Kishori will live on. The Times of India. https://timesofindia.indiatimes.com/

3. Goswami, S. K. (1988). An account of Indian views on the aesthetics of music. Kolkata:
4. Bosanquet, B. (n.d.). History of aesthetics (p. 1).
5. Goswami, S. K. (1988). An account of Indian views on the aesthetics of music. Kolkata:
6. Baghel, V. S. (2024). Theorising the ideal of aesthetic self in Abhinavagupta. Integrated Journal for Research in Arts and Humanities, 9(1),
7. Saraf, R. (2003). Bhartiya Sangeet Sarita. Delhi: Vidyanidhi Prakashan.
8. Jana, D. A. (2025). The Raga-Rasa connection: Exploring the intersection of emotions. International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD). https://www.ijtsrd.com/

YouTube Videos

9. Rliesky56. (2014, September 1). Kishori Amonkar – Raga Yaman. YouTube. https://youtu.be/RSba7WebiXo?si=v1BZL_Q8Hd4xvIua
10. Mozumder, A. (2020, March 20). (1971) Kishori Amonkar – Raag Bhoop. YouTube. https://youtu.be/WfKpt-_kLdA?si=hlTJH_tOXtNv8yOe
11. Sangeetveda1. (2019, December 8). Gaan Saraswati Kishori Amonkar sings Raga Bageshree. YouTube. https://youtu.be/wn0NvRho7EU?si=qbHNCOpc5kvPvm21
12. Dabral, T. (2023, March 20). Vidushi Kishori Amonkar (vocal) – Raga Hamsadhwani. YouTube. https://youtu.be/jdqvV9MVf2A?si=TQOGrUS85rrbZkV9
13. Swaralankar. (2021, May 8). Raga Bhimpalasi | Gaansaraswati Kishori Amonkar | Re Biraha & Kese Din Beete | 1987. YouTube. https://youtu.be/uQghAGGP5fI?si=Y2yUZwe9LTPg3Qie
14. Samal, A. (2013, July 29). Raag Bhinna Shadaj – Gaansaraswati Kishori Amonkar. YouTube. https://youtu.be/ZA2zHAaNj0Y?si=9PUgLbqfCzUiH2EX

Images

15. Caleidoscope. (2023, February). Bharat Muni – Natyashastra [Image]. Caleidoscope. https://www.caleidoscope.in/wp-content/uploads/2023/02/Bharat-Muni-Natyashastra-02-1024x693.jpg
16. Tamil and Vedas. (2021, July). Bharata – The Natyashastra [Image]. Tamil and Vedas. https://tamilandvedas.files.wordpress.com/2021/07/3349e-bharata__the_natyasastra_idd947.jpg
17. Caleidoscope. (2023, March). Types of Rasa [Image]. Caleidoscope. https://www.caleidoscope.in/wp-content/uploads/2023/03/Types-of-Rasa-1381x1536.jpg

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.030

Indigenous Knowledge in Kathak Pedagogy and Its Relevance in Higher Education

Ms. Shikha Ramesh*
Prof. (Dr.) Vidhi Nagar**

Abstract

Kathak, the Indian classical dance form, conventionally relies on the Guru-Śiṣya Paraṁparā, an oral tradition of transmitting knowledge from master to disciple. This tradition not only incorporates the learning of dance techniques and compositions but also cultivates an understanding of culture, society, and spirituality. This pedagogical approach emphasises experiential learning and an overall holistic understanding of this art form, which is rooted in treatises such as the Nāṭyaśāstra and Abhinaya Darpaṇa. With time, this paraṁparā evolved into a more structured platform, introduced as higher educational institutions, with proper syllabi and curricula offering academic degrees and facilitating interdisciplinary research. Despite numerous challenges, higher education plays a vital role in preserving and disseminating the indigenous knowledge of Kathak, which ensures the continuity and identity of the art form. This study tries to investigate the indigenous knowledge from kathak pedagogy into higher education, exploring its relevance in this contemporary scenario and evolving approaches and methods of transmission.

Keywords: *Kathak pedagogy, Indigenous knowledge, Higher Education, Guru-Śiṣya Paraṁparā, and Cultural Preservation.*

Methodology: *This paper employs a qualitative research method using secondary sources.*

*Research Scholar, Department of Dance, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Email: shikharamesh@bhu.ac.in Orcid ID: https://orcid.org/0009-0000-5904-7741

**Professor, Department of Dance, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Email: vidhi.nagar@bhu.ac.in

Introduction

Indigenous means original, the originality or the original form of something. It can be a place, people, a culture, or even knowledge, which is native to a specific origin. While the indigeneity of people, place, and culture is becoming a probing issue, in the present scenario, the Indigeneity of knowledge is not less weighed. Indigenous knowledge refers to the understanding that is specific to a particular space or culture, shared among a group, comprehensive in nature, and capable of acclimating (Mistry, 2009).

The Indigenous knowledge of our culture, spiritual beliefs, and practical knowledge was passed down through generations and transmitted through the medium of performing arts and visual arts. And if we particularly get down to performing arts, dance has always served the medium with efficacy and played a vital role in maintaining the cultural identity and continuity, understanding the community's weltanschauung . Here, for this study, the Kathak, the Indian classical dance form, is considered, specifically its pedagogy, analysing the relevance of its indigenous knowledge in higher education.

Kathak Pedagogy: A Path to Its Indigenous Knowledge

Kathak, indigenous to the northern state of India, had its pedagogical origin in the Guru-Śiṣya Paraṁparā, where the transmission of the indigenous knowledge of this art form flows from Guru to Śiṣya. Under this tradition, the disciple not only studies the shastras but also learns the embodiment of the practical knowledge of it. This oral tradition provides students with a multifaceted approach to gaining knowledge by learning dance, music, arts, linguistics, critical thinking, etc.

Kathak, the storytelling tradition, claims its ancient roots in the Shastras like Nāṭyaśāstra, Abhinaya Darpaṇa, etc., which lay foundational principles and guidelines influencing its theories and practices. These texts help the students to understand the various bodily movements, bhāva, abhinaya, and their numerous bhedas, and their usage in various ways, whose practical application is considered.

Kathak was a dance tradition from temples, where early practitioners of this form were known as Kathāvācaka, and they used to recite the stories from the great epics like the Mahābhārata, Rāmāyaṇa, etc., which were then shifted into royal courts. The transculturation during the Mughal dynasty blended the Hindu traditions with the Muslim Court tradition, which influenced some compositions of its repertoire, like the Raṅgamañca kā Ṭukḍā transformed into Salāmī, the Nṛtya kā Toḍā or Ṭukḍā into Āmada, which were the Persian words incorporated in the language of Kathak & amalgamating the essence

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.030

of court tradition in its nature. Later on, in the colonial and postcolonial era, it saw a major shift to the institution, adopting a proper syllabus and curriculum for teaching and learning. And in the 21st century, it has expanded nationally and digitally, facilitated by the Indian diaspora and interest in popular Indian culture.

Teaching Kathak in Higher Education

The traditional pedagogical model, i.e., Guru-Ṡiṣya Paraṁparā, was the tradition for learning Indian arts, which relies on imitative and repetitive pedagogies in an informal educational setting. Where skills were passed down from master to disciple through oral transmission, and emphasise learning through experiencing, not only embodying dance, but also learning discipline and devotion for the continuity of that art. On the other hand, Institutional teaching is a more formal educational framework, where, within proper curricula, the students learn this art in a very systematic and comprehensive manner.

Kathak training in higher educational settings includes Undergraduate, Post-graduate degrees, and Ph.D. Programs. Universities and colleges have comprehensive syllabi and curricula for teaching Kathak as the main subject. They conduct proper practical and theoretical classes and administer semester-wise examinations to evaluate students' learning progress, skill development, and provide feedback for improvement. In theory classes, the students at their undergraduate level study the history, development, and the valuable contributions of the exponents of Kathak and other classical dance forms, and they learn to recite the preliminary shlokas from the treatises like Nāṭyaṡāstra, Abhinaya Darpaṇa, etc, and in their post-graduation level, students learn the advanced level of shlokas and different dance and theatre forms across the world, be it traditional or folk. In practical classes, they learn numerous compositions in various tāla, and several bhāva, abhinaya, jāti, yati, etc., are also taught to them according to their level. Several institutions are actively and extensively involved in research and development programs for various indigenous art forms, and are widening opportunities for research aspirants and scholars to think in a new direction and conduct great research in this field to ensure the continuity and preservation of the Arts.

Here is the list providing a comprehensive overview of institutions in India that offer Kathak as a subject categorised by the level of educational programs available, they are as follows:

S. No.	*Institution*	*Category*	*Location*	*Programs*
1	Akhil Bharatiya Gandharva Mahavidyalaya Mandal (ABGMVM)	Private Institute	Mumbai & Affiliated centres	Tiered Diplomas (Madhyama Purna) & Higher Degrees
2	Banaras Hindu University (BHU)	Central University	Varanasi, Uttar Pradesh	UG, PG, Ph.D., Diploma
3	Bangalore University	State University	Bangalore, Karnataka	UG, PG, Diploma
4	Bharati Vidyapeeth	Deemed University	Pune, Maharashtra	UG, PG, Diploma
5	Bhatkhande Sanskriti Vishwavidyalaya	Deemed University	Lucknow, Uttar Pradesh	UG, PG, Ph.D., Diploma
6	Binod Bihari Mahto Koyalanchal University	State University	Dhanbad, Jharkhand	UG, PG, Ph.D., Diploma
7	Chhatrapati Shahu Ji Maharaj University (CSJM)	State University	Kanpur, Uttar Pradesh	UG, PG, Diploma
8	Deen Dayal Upadhyaya Gorakhpur University	State University	Gorakhpur, Uttar Pradesh	UG, PG, Ph.D., Diploma
9	Dr. D.Y. Patil Vidyapeeth (School of Liberal Arts)	Private University	Pune, Maharashtra	UG, PG, Diploma
11	Eklavya University	Private University	Damoh, Madhya Pradesh	UG, PG (MA Kathak), Diploma
12	Sachin Deb Barman Memorial Govt Music College (Government Music College)	Government College	Agartala, Tripura	UG, PG, Ph.D., Diploma
13	Guru Ghasidas Vishwavidyalaya	State University Chhattisgarh	Bilaspur,	UG, PG, Ph.D., Diploma
14	Indira Kala Sangit Vishwavidyalaya (IKSVV)	Central University	Khairagarh, Chhattisgarh	UG, PG, Ph.D., Diploma
15	Jaipur Kathak Kendra	Government Institute	Jaipur, Rajasthan	Diploma, Post Diploma
16	Kamala Devi Sangeet Mahavidyalaya	Private Institute	Raipur, Chhattisgarh	Diploma in Prathma - Kathak Dance
18	Kathak Kendra (National Institute of Kathak Dance)	Government Institute	New Delhi, Lucknow & Jaipur	Diploma & Advanced Training Programs
19	Lasya College of Music & Dance	Private College	Kannur, Kerala	UG, PG, Ph.D., Diploma
20	MGM University (Mahagami Gurukul)	Private University	Aurangabad, Maharashtra	UG, PG, Diploma
21	MIT Vishwashanti Sangeet Kala Academy, MIT-ADT University	Private Institute	Pune, Maharashtra	UG, PG, Diploma

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.030

22	Nalanda Nritya Kala Mahavidyalaya	Private Institute	Mumbai, Maharashtra	UG, PG, Ph.D., Diploma
23	Natya Institute of Kathak and Choreography (NIKC)	Private Institute	Bengaluru	1-year Diploma in Kathak
24	Nupur Nritya Kala Kendra	Private Institute	New Delhi	Diploma (6 years)
25	Parul University	Private University	Vadodara, Gujarat	UG Diploma & Certificate
26	Pracheen Kala Kendra	Private Institute	Chandigarh, Punjab	Higher levels Diploma, (Bhushan, Visharad)
27	Prayag Sangeet Samiti	Private Institute	Prayagraj & Affiliated centres	Diploma-level (Junior, Senior, Prabhakar, Praveen)
28	Punjabi University	State University	Patiala, Punjab	UG, PG, Diploma
29	Rabindra Bharati University	State University	Kolkata, West Bengal	UG, PG, Ph.D., Diploma
30	REVA University	Private University	Bangalore, Karnataka	UG, PG, Diploma (1 year)
31	Savitribai Phule Pune University	State University	Pune, Maharashtra	UG, PG, Diploma
32	Shriram Bharatiya Kala Kendra (SBKK)	Private Institute	New Delhi	Diploma & Professional Training Programs
33	Sri Sri University	Private University	Cuttack, Odisha	Ph.D. Programs for Kathak
34	Swami Vivekanand Subharti University (SVSU)	Private University	Meerut, Uttar Pradesh	UG, PG, Diploma
35	Tansen Sangeet Mahavidyalaya	Private Institute	Delhi & Various centres across India	Diploma (Primary, Junior, Senior levels)
36	The Maharaja Sayajirao University of Baroda	State University	Vadodara, Gujarat	UG, PG, Ph.D., Diploma
37	University of Rajasthan (UNIRAJ)	State University	Jaipur, Rajasthan	UG, PG, Diploma
39	Banasthali Vidyapith	Private University	Jaipur, Rajasthan	UG, PG, Ph.D., Diploma
40	Visva-Bharati University	Central University	Shantiniketan, West Bengal	UG, PG, Ph.D., Diploma
41	Punyashlok Ahilyadevi Holkar Solapur University	State University	Solapur, Maharashtra	State University Solapur, Diploma

Note: The list above is based on information from official university websites, academic portals, and public institutional listings. The data provides a general overview and may be subject to updates and review.

Challenges and Opportunities

The Institutionalisation of Kathak presents various challenges, including the potential loss of depth as the students learn in a semester-wise framework, which limits the depth of the learning phase, as compared to the Gurukula system. The increased focus on exam-based learning is another challenge, which narrows the learning and creativity in students, and their learning becomes just a matter of imitating and rote learning rather than learning through experience. The other challenge is the reduced emphasis on Practice, as practising is the key factor of embodied learning. Without practising and experiencing, no student can be a true artist, even after learning any art form. In a Gurukula system, one-to-one personalised instruction provides seamless guidance that shapes the students' progressive ideas and thoughts, whereas higher education institutions aim for consistency and measurable outcomes, which involuntarily limit the creativity of the students. The assessment methods are another set of challenges, as in a traditional setting, the assessment is based on continuous observation of the dedication, practice, and maturity of a student over the years, whereas in institutions, the assessment is time-bound, with grading systems and formal examinations, that not only limits the qualitative and experiential learning but also reduces the potential of the students, to a set of technical skills, rather than going beyond of it.

This way, challenges may appear, but conquering them and preserving our culture and its Indigenous knowledge is a significant opportunity that we should seize. For that, the innovative cell designed to disseminate and preserve the indigenousness of knowledge in our country, known as the Indian Knowledge System (IKS) or the Bhāratīya Jñāna Paramparā Vibhāga, which was formed under the Ministry of Education (MoE) at AICTE, New Delhi, which promotes traditional knowledge in the field of Arts, Agriculture, Basic Sciences, Engineering & Technology, Architecture, Management, Economics, etc., through interdisciplinary research and societal applications (Indian Knowledge Systems, n.d.). Higher education institutions act as a platform that elevates Kathak beyond national borders, by collaborating internationally through exchange programs and digital platforms, because of which Kathak not only reaches the global audience, but also diversifies the discourse around the world. Due to institutionalisation, this field has opened a diverse range of careers for students, beyond performances, such as arts administration, dance therapy, cultural tourism, choreography, research and education itself. Kathak Pedagogy

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.030

in Higher Education provides the space for interdisciplinary research, blending the traditional philosophies with contemporary and scientific understanding. There is considerable research being done in this regard, such as its therapeutic benefits (e.g., DMT), enhancement of mental health and well-being, cognitive functioning, stress reduction, and many more, which indicates its link to other subjects, which open doors to interdisciplinary research and social well-being.

Conclusion

Kathak originated from Guru-Śiṣya Paraṁparā, to formal higher education unveils the challenges and opportunities for preserving its Indigenous knowledge and cultural identity. As the traditional method of teaching encompasses experiential and in-depth learning due to the transition to a structured platform definitely unlocks new pathways, but the limitations of it can't be ignored. The higher educational institutions serve an important role in the continuity of the indigenous knowledge of Kathak by integrating traditional methods in contemporary academic approaches. Universities are fostering interdisciplinary research and disseminating this art form to a wider audience. Initiatives like the IKS cell (Indian Knowledge System or the Bhāratīya Jñāna Paramparā Vibhāga) support the efforts in promoting research and application of indigenous knowledge in various fields, including the arts.

By embracing the indigenousness of Kathak while leveraging the resources of Higher education, this art form will thrive. This dual approach elevates its cultural, spiritual, and practical knowledge, which enhances the society, adaptation to modern contexts, and contributes to the well-being and intellectual development of future generations.

Bibliography

1. Mistry, J. (2009). Indigenous knowledges. In Elsevier eBooks-International Encyclopedia of Human Geography, Elsevier (pp 371–376), ISBN 9780080449104. https://doi.org/10.1016/b978-008044910-4.00101-2. https://www.sciencedirect.com/science/article/abs/pii/B9780080449104001012.
2. Dalidowicz, M. (2015). Crafting fidelity: pedagogical creativity in kathak dance. Journal of the Royal Anthropological Institute, 21(4), 838–854. https://doi.org/10.1111/1467-9655.12290.
3. Prickett, S. (2007). Guru or teacher? shishya or student? Pedagogic shifts in South Asian dance training in India and Britain. South Asia Research, 27(1), 25–41. https://doi.org/10.1177/026272800602700102.
4. Indian Knowledge Systems (n.d.). https://iksindia.org/.
5. Liu, W., Xue, H., & Wang, Z. Y. (2024). A systematic comparison of intercultural and indigenous cultural dance education from a global

perspective (2010–2024). Frontiers in Psychology, 15, 1493457. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2024.1493457

6. DOLININA, K. L. (2020). "Who Is Your Guru?" Traditional Knowledge Transmission and Changing Institutional Setting in Kathak Dance Education. Musicology of Lithuania/Lietuvos Muzikologija, 180–191. https://zurnalai.lmta.lt/wp-content/uploads/2021/01/180-191Muzikologija21.pdf
7. Vishwakarma, A., & Vats, P. P. (2025b). KATHAK AND CULTURAL MEMORY: TRACING THE DANCE'S TRANSFORMATIONS THROUGH ORAL AND PERFORMATIVE HISTORIES. Shodh Shreejan Journal of Creative Research Insights, 2(2), 127–138. https://doi.org/10.29121/shodhshreejan.v2.i2.2025.42
8. Banerji, A., Kedhar, A., Mitra, R., O'Shea, J., & Pillai, S. (2017). Postcolonial Pedagogies: Recasting the Guru–Shishya Parampara. Theatre Topics, 27(3), 221–230. https://doi.org/10.1353/tt.2017.0038
9. Chaudhary, A. (2025). Evolution of Kathak Pedagogy: From Guru-Shishya Parampara to Institutional Training [Journal-article]. An Online Peer Reviewed / Refereed Journal, 3(4), 928. https://theacademic.in/wp-content/uploads/2025/05/80.pdf
10. Behl, M., & Pattiaratchi, C. (2023). Relevance of the Guru-Shishya Parampara to Modern-Day mentorship. Oceanography, 36(1). https://doi.org/10.5670/oceanog.2023.111
11. Chielotam, A. N. (2012). Expressing indigenous knowledge through dance. African Journal of History and Culture, 4(5). https://doi.org/10.5897/ajhc12.010
12. Dalidowicz, M. (2015). Crafting fidelity: pedagogical creativity in kathak dance. Journal of the Royal Anthropological Institute, 21(4), 838–854. https://doi.org/10.1111/1467-9655.12290
13. Morelli, S. (2010, December 20). Intergenerational adaptation in North Indian Kathak dance. https://anthropological-notebooks.zrc-sazu.si/Notebooks/article/view/300

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.031

Exploring the Spiritual Essence of Raga in Sikh Gurbani Kirtan at the Golden Temple

Mr. Jaswinder Singh,* Dr. Shyama Kumari**

Abstract:

Ragas are considered the mainstay of Indian classical music. Each raga is unique and has a different emotional impact on the listener's mind, as it is comprised of emotions like sadness, peace, anger, devotion, cheerfulness, etc. When these emotional ragas are blended with Gurbani (the bani of Almighty God) and recited by a person full of divinity, it reaches the stage that is the highest level of devotional enlightenment and is often referred to as Samadhi, Moksha, or Nirvana. The Golden Temple, the central hub of the Sikh religion from the time of its foundation by Guru Ramdas Ji, has the rule of singing Gurbani in its given raga at the Golden Temple. Shri Guru Granth Sahib enlists 31 main ragas and 31 mishrit (mix) ragas, in which Gurbani has been inscribed by the Sikh Gurus. Gurbani Kirtan is the recitation of the glory of the Almighty in raga and taal, which helps in achieving the ultimate goal of a human being, i.e., to break the chains of eternal return. This paper tries to explore how the ragas are integrated in Gurbani and how the samay siddhant of ragas are followed, as it is instructed by the Gurus to recite Gurbani, according to the time and ragas stated in the treatise.

Keywords: *Gurbani Kirtan, Guru Granth Sahib, Golden Temple, Samay Sidhant, Ragas.*

Introduction:

Indian classical music has its origin in the Samaveda, one of the four Vedas (ancient Vedic texts). Among the four Vedas, the Samaveda is considered the foundational text of music as it has 1875 verses, mostly borrowed from the Rigveda. These verses are performed by the priest while doing yagya; these prayers

**Research Scholar, Department of Vocal Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Email: jassvocal@gmail.com

**Assistant Professor, Department of Vocal Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Email: shyama.vocalmusic@gmail.com

lead to the development of the entire scale of Indian classical music and are a way to follow the spiritual path through music. The most important element of Indian classical music is the "Raga". "Raga" is a Sanskrit word. According to Matang Muni, in his treatise "Brihaddeshi, he defines "Raga" as a specific arrangement of various swaras (notes) that pleases the mind and soul of the listeners. Music is considered a Universal medium of spiritual expression, as music is all about "Naad", which means "sound", " vibration ", or flow of sound. In Shri Guru Granth Sahib, the holy granth of Sikhs, where Guru Nanak Dev Ji states that

"ਵਾਜੇ ਤੇਰੇ ਨਾਦ ਅਨੇਕ ਅਸੰਖਾ ਕੇਤੇ ਤੇਰੇ ਵਾਵਣਹਾਰੇ"

-Shri Guru Granth Sahib, ANG.1368 (Guru Nanak, n.d.)

Meaning- The sound- isolation of the naad vibrates there, and endless musicians play every instrument there.

"ਤਥੈ ਨਾਦ ਬਨਿੋਦ ਕੋਡ ਅਨੰਦੁ"

-Shri Guru Granth Sahib, ANG.7 (Guru Nanak, n.d.)

Meaning- The sound-current of the naad vibrates there, among the sounds and the sights of bliss.

Gurbani Kirtan:

Guru Nanak Dev Ji, the first Guru of the Sikh religion, started the Kirtan of Gurbani in ragas along with Bhai Bala Ji and Bhai Mardana Ji, who played Rabab. Guru Nanak Dev Ji took Bhai Mardana Ji and Bhai Bala along with him on the spiritual journey, which was known as 'Udasi'. Guru Nanak Ji completed four 'Udasi' throughout his life.

Gurbani Kirtan, where Guru (the Enlightener) and his Bani (word or speech of the lord) are sung in the form of Kirtan, i.e., praising and singing God's name repeatedly along with Raga and Taal. Raag and taal are the important aspects of the Kirtan, as the hymns of God should be sung according to the meaning of those shabad and also according to the Rasas they are written in. The ultimate goal of Kirtan is to hymn the glory of God and take one's mind and soul closer to him. Kirtan or Gurbani Kirtan, according to Guru Nanak Dev Ji, is the easiest way and path to reach God and to be merged in him. Gurbani Kirtan leads the peace and joy to the mind and soul, which will attain the stage of Sehaj (Bliss). Gurbani, along with music (Raag and Taal), will help in magnifying the emotional appeal of a person. By repeating the shabad, the mind becomes stable, and when it is sung in a particular raga, it boosts the devotional appeal of the hymns and above all, what is important is love and how passionately a person wants to meet the almighty God. Singing Gurbani Kirtan and chanting the name of God will not do anything if we don't sing it with love and trust towards God.

As said by Guru Gobind Singh in his Bani

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.031

" ਜਨਿ ਪ੍ਰੇਮ ਕਓ ਤਨਿ ਹੀ ਪ੍ਰਭ ਪਾਇਓ"

- (Sri Dasam Granth Sahib , 2012)

Meaning- who will love will meet the god.

Love and trust are essential elements of Kirtan. One should recite Gurbani with love and trust, as the Guru advocated, which is typically held in a congregation. In Sikhism, it is held at the Gurudwara premises.

One day near Baghdad, Guru Nanak Dev Ji, while in his daily routine of singing hymns along with Bhai Mardana, who played the Rabec (rabab- a string instrument), got some local Muslims upset because of the music, as they see music as leading to raising the desire and the pleasure. Their leader Pir Dastgir had a conversation with Guru Nanak Dev Ji, where guru ji told him that the God is the ultimate and great musician of this world, he made this world with full of natural sounds, he created the cosmic melody - the sound of rain, air, humming of bees, gentle rustle of the plants etc., so Guru Ji's teaching changed his mind and made him understand that loving music is the part of human nature, so it should be used to sing the glory of the god.

Guru Nanak dev hi composed 974 hymns in 19 ragas. He composed the bani like Barahmah, Aarti, Patti, Asa-di -var (in Raga Asa). According to Guru Nanak Dev Ji, Kirtan is the best and easiest way for worshipping God, and also Kirtan is the main meal for people on this earth. As said by Guru Arjun Dev ji-

"ਕਲਜੁਗ ਮਹਿ ਕੀਰਤਨੁ ਪਰਧਾਨਾ " ॥੬॥

-Adi Guru Granth Sahib, ANG.1075 (Guru Nanak, n.d.)

Meaning- In this Kalyug world, Kirtan is the only and best way for worship.

Guru Nanak Dev Ji, as a master of Gurbani Kirtan sung in classical ragas and in the genre of the dhrupad style of gayaki. Guru Nanak Dev Ji generally said to Bhai Mardana, "Mardana, play the rabab, and the divine melody flows in". Guru Ji popularised many ragas like Asa, Tukhari, Suhi, Sorath, etc.

Golden Temple/ Shri Harmandir Sahib:

Guru Amardas Ji the third guru of Sikhism choose the land near Amritsar city, it was said by the ancestors that this land is gifted by emperor Akbar to Guru Ji daughter Bibi Bhani, it was called Guru Da Chakk after that Guru Ji ordered his disciple Ramdas (who later on become the fourth guru of the Sikh religion) to find the land for the foundation of new town. Ramdas ji acquired the land by giving money to the owner of the village Tung. The land which was acquired by Ramdas ji had a small pond where once Guru Nanak Dev Ji, along with Bhai Mardana, visited and recited the divine hymns of the Gurbani. Guru Ramdas Ji succeeded Guru Amardas Ji and established the town, and named it "Ramdaspur".

Guru Arjun Dev ji, the fifth guru of Sikhism, started constructing the Gurudwara and invited the famous saint of Lahore, Hazrat Miya Meer, to lay the foundation stone. Guru Arjun Dev ji's biggest contribution to humanity was the compilation of the Adi Granth, in which there were the divine bani of all four gurus and Sufi saints of different religions and caste, also included the bani of 15 bhagats. Guru Arjun Dev ji also led the construction to the completion of gurudwara in the pool, which has four doors signifying open for all. In 1604, Guru Ji installed the Holy Scripture, i.e., the Adi- Granth which has the Banis of the Guru and Bhagats. Guru Arjun Dev Ji was greatly fond of music, but still he ordered the congregation to do Kirtan and started teaching them the Gurbani Kirtan in ragas. He also invented a string instrument called "Saranda", which he used to play while singing Gurbani Kirtan. Similarly, later on, Guru Hargobind Singh introduced a new class of singers called "Dhadhi" and also introduced the new instruments "Dhadh" and " Sarangi". Dhadhi sang heroic deeds of the warriors to inspire the soldiers with the Gurbani of Veer Rasa and music.

Guru Teg Bahadur, the ninth guru, also known as "Hind di chadar" for scarifying his life to save the Hindu religion, especially the pandits of Kashmir, composed 116 hymns in 15 ragas. Guru Gobind Singh, the tenth guru, was a great patron of poets and musicians. He himself created and played the "Taus" and also introduced another string instrument called the "Dilruba" to Gurmat Sangeet.

Musical Session/ Chowkies at Golden Temple:

Guru Arjun Dev Ji, after the installation of Adi-Granth at Golden Temple, ordered the Sikh sangat to do the Kirtan at Sri Harmandir Sahib according to the raga timing. Guru Ji's primary goal for the compilation and installation of "Adi-Granth" was the Naam-Jap, chanting of the shabad. He wants to create a place where people come and recite the Gurbani Kirtan. Gurbani Kirtan is the path from utter ignorance to attaining eternal bliss- it is the Mahamantra. Gurbani Kirtan not only turns someone into a great musician but also transforms them into a wise and holy person. Gurbani Kirtan changes the mindset of human being and they become a better, wiser and spiritual person.

Kirtan Chowkies: Gurbani Kirtan started from the period of Guru Nanak Dev ji and was followed by all the gurus till now. It is followed at the Gurudwara Sahib. Sri Harmandir Sahib (Golden Temple) has a unique Kirtan tradition in the form of different Kirtan chowkies.

1. Tinpahee ki Kirtan chowkie (2:30 to 3:30) morning time. Ragas like Prabhati, Gauri, etc. are recited. For example, Raag Prabhati in Gurbani kirtan is as given below-

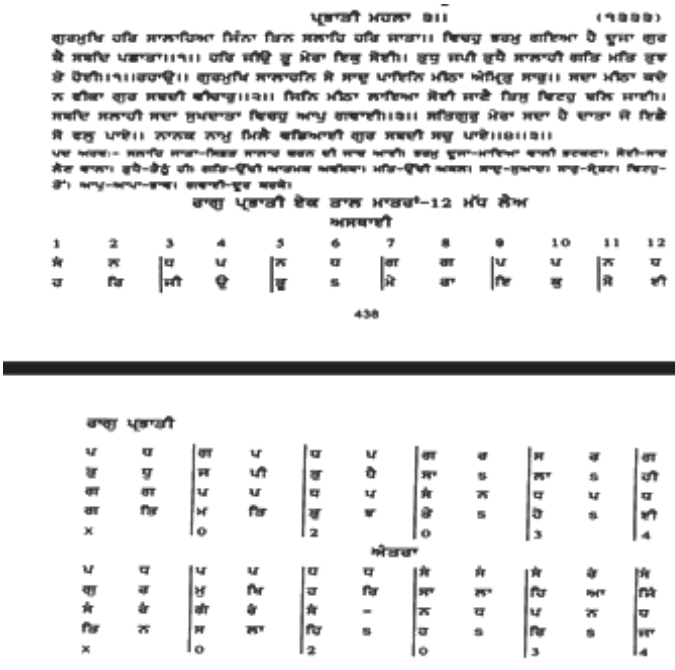

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.031

ਪ੍ਰਭਾਤੀ ਮਹਲਾ ੩॥ (੧੩੩੩)

ਰਾਗੁ ਪ੍ਰਭਾਤੀ ਏਕ ਤਾਲ ਮਾਤਰਾਂ-12 ਮੱਧ ਲੈਅ

ਅਸਥਾਈ

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12

436

ਰਾਗੁ ਪ੍ਰਭਾਤੀ

ਅੰਤਰਾ

-Gurmat Sangeet Darpan-II (Singh K. , 2009)

2. Asa-di-var ki chowkie (3 am to 6 am) Guru Nanak Dev ji composed Asa-di-var in Raga Asa. For example, Raag Asa in Gurbani kirtan is as given below-

ਆਸਾ ਮਹਲਾ ੫ (੪੦੩)

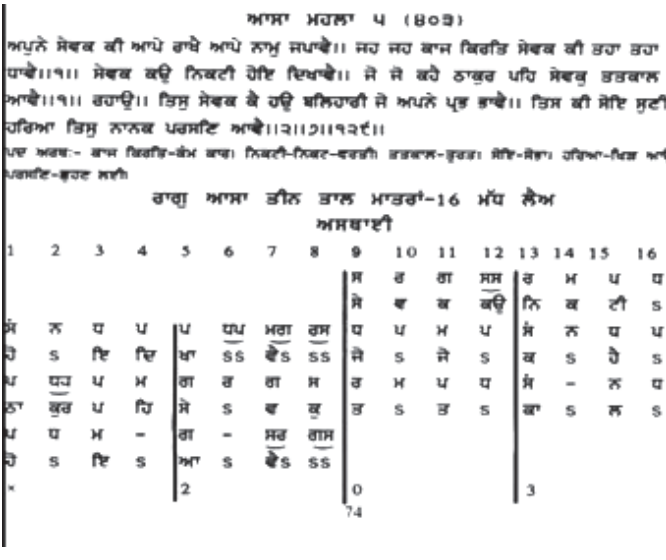

ਅਪੁਨੇ ਸੇਵਕ ਕੀ ਆਪੇ ਰਾਖੈ ਆਪੇ ਨਾਮੁ ਜਪਾਵੈ॥ ਜਹ ਜਹ ਕਾਜ ਕਿਰਤਿ ਸੇਵਕ ਕੀ ਤਹਾ ਤਹਾ ਉਠਿ ਧਾਵੈ॥੧॥ ਸੇਵਕ ਕਉ ਨਿਕਟੀ ਹੋਇ ਦਿਖਾਵੈ॥ ਜੋ ਜੋ ਕਹੈ ਠਾਕੁਰ ਪਹਿ ਸੇਵਕੁ ਤਤਕਾਲ ਹੋਇ ਆਵੈ॥੧॥ ਰਹਾਉ॥ ਤਿਸੁ ਸੇਵਕ ਕੈ ਹਉ ਬਲਿਹਾਰੀ ਜੋ ਅਪਨੇ ਪ੍ਰਭ ਭਾਵੈ॥ ਤਿਸ ਕੀ ਸੋਇ ਸੁਣੀ ਮਨੁ ਹਰਿਆ ਤਿਸੁ ਨਾਨਕ ਪਰਸਣਿ ਆਵੈ॥੨॥੭॥੧੨੯॥

ਰਾਗੁ ਆਸਾ ਤੀਨ ਤਾਲ ਮਾਤਰਾਂ-16 ਮੱਧ ਲੈਅ

ਅਸਥਾਈ

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16

74

-Gurmat Sangeet Darpan-I (Singh K. , 2013)

3. Bilawal Ki chowkie (6 am to 9 am) Gurbani Kirtan recited in Ragas like Bilawal, Alhaiya Bilawal, Raag Devgandhari, etc. For example, Raag Devgandhari in Gurbani kirtan is as given below-

-Gurmat Sangeet Darpan-II (Singh K. , 2009)

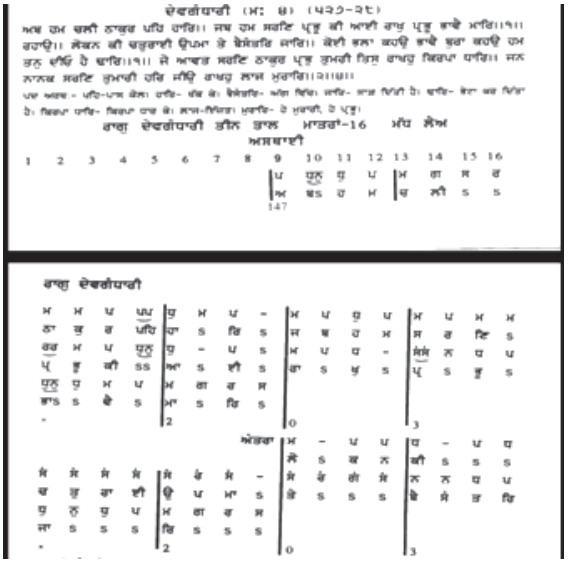

4. Anand Ki Chowkie (9 to 12 noon) Guru Amardas ji wrote Anand sahib, and is followed by hymns in ragas like Todi, Gujri, Asawari, etc. For example, Raag Todi in Gurbani kirtan is as given below-

-Gurmat Sangeet Darpan-I (Singh K. , 2013)

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.031

5. Charan Kamal ki Chowkie - during this Kirtan period, shabads are recited in ragas like Sarang, Sorath, Gond, etc. For example, Raag Sorath on Gurbani kirtan is as given below-

-Gurmat Sangeet Darpan-I (Singh K. , 2013)

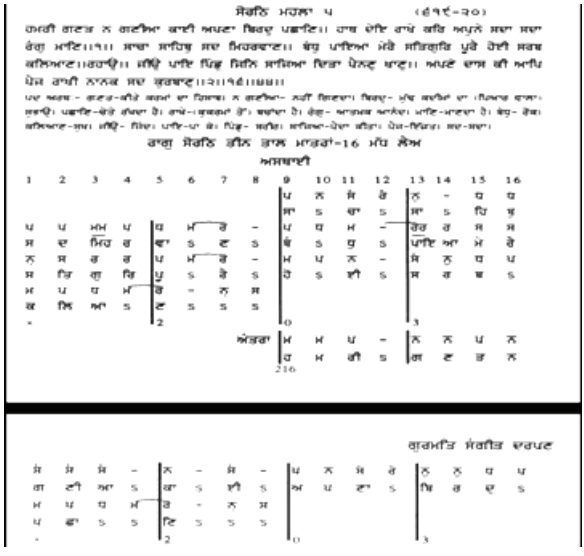

6. Sodar ki Chowkie- In this session, Sandhi Prakash Ragas are recited like Tukhari, Dhanashri, Puriya, Marwa, etc. For example, Raag Dhanasri in Gurbani kirtan is as given below-

-Gurmat Sangeet Darpan-II (Singh K. , 2009)

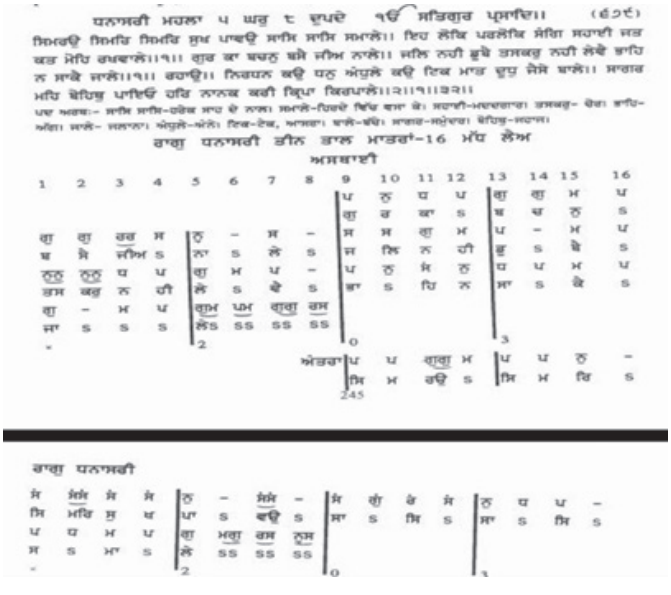

7. Aarti - Guru Nanak Dev ji composed aarti in Raag Dhanashri and is recited at this time.

8. Kalyan Chowkie- Hymns are sung in ragas like Kalyan, Bihag, Marubihag, Bihagra, Kedar, etc. For example, Raag Kalyan in Gurbani kirtan is as given below-

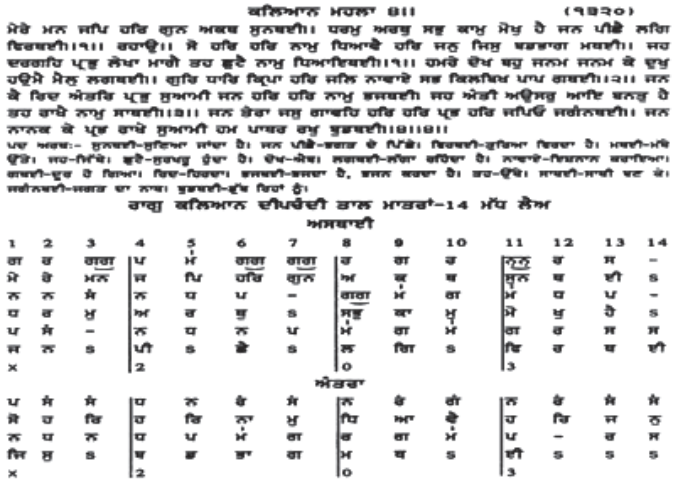

-*Gurmat Sangeet Darpan-II (Singh K. , 2009)*

9. Kanhra or Kirtan Sohile ki Chowkie- In this Kirtan session, shabads are sung in ragas like Kanhra, Jaijawanti, Darbari, etc. For example, Raag Jaijawanti in Gurbani kirtan is as given below-

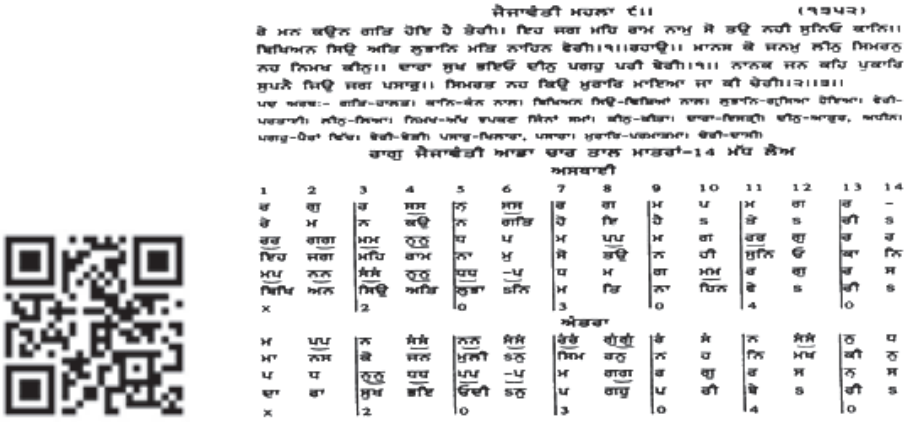

-*Gurmat Sangeet Darpan-II (Singh K. , 2009)*

Apart from these Kirtan chowkies at Golden Temple, seasonal ragas are also sung, for example, during the rainy season, ragas like Malhar are mandatory for all the Kirtaniya to sing the first shabad in it. Similarly,

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.031

during the spring season, Basant Raga is compulsory to recite.

Conclusion:

Shri Guru Granth Sahib holds a very special place in this world. This holy Granth is not merely for the Sikh people; it is for all humanity as it guides the people to achieve spiritual liberation (Moksha) with the help of music. As all the Gurbani are composed in a particular raga. Guru Granth Sahib was compiled by Guru Arjun Dev ji and was written by Bhai Gurdas Ji. Later on, the tenth guru added the Gurbani of Teg Bahadur Ji. In 1708, Guru Gobind Singh Ji declared that Guru Granth Sahib is the eternal living guru of the Sikhs. In Sikhism, from the first guru to the tenth guru, all the bani are composed in particular ragas, and they mandate all the Kirtaniya (who recite Gurbani Kirtan) to sing Gurbani in its given raga in which it is written. The Golden Temple is the spiritual centre of the entire Sikh community, which follows the same rules given by the guru. Kirtaniye starts Kirtan with Manglacharan, and then is followed by the raga shabad of that particular time. The whole day at Golden Temple, Kirtan is performed in ragas according to the time. Guru sahib's message is to attain the Jivan-mukti (liberation while alive) from this world. Shabad of guru along with ragas, is the easiest way to meet the Almighty God in this era.

References

1. Sri Dasam Granth Sahib . (2012, January 28). Retrieved from SikhiWiki-Encyclomedia of the Sikhs: https://www.sikhiwiki.org/index.php/Jin_prem_kio_tin_hee_prabh_paayo
2. Singh, K. (2009). Gurmat Sangeet Darpan (Bhag/Part II). Sri Amritsar: Dharam Parchār Committee, Shiromani Gurdwara Parbandhak Committee, https://archive.org/details/GurmatSangeetDarpan-Part2/page/n439/mode/1up.
3. Singh, K. (2013). Gurmat sangeet darpan (Bhag/Part I). Sri Amritsar: Dharam Parchār Committee Shiromani Gurdwara Parbandhak Committee, https://sgpc.net/published-books/.
4.
5. Kaur, S. (2018). Gurmat Sangeet and recent developments. International Journal of Interdisciplinary Research in Arts and Humanities, 3(Conference World Special Issue 1), 155–157.
6. Mansukhani, G. S. (1982). Indian classical music and Sikh kirtan.
7. Sikh Musicology- Kirtan Chaukies. (n.d.). Gateway to Sikhism. https://www.allaboutsikhs.com/sikh-musicology-kirtan-chaukies/
8. Golden Temple. (n.d.). Bharatpedia. https://en.bharatpedia.org/wiki/Golden_Temple
9. Singh, S. K. (2016, April 25). The Golden Temple. Sirdar Kapur Singh. https://sikhri.org/articles/the-golden-temple-its-theo-political-status
10. Spreading The Soul. (2024, February 11). 08 - Dr. Gurnam Singh - Raag Bihagra - Har ki Gat [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=sbilPvjujxM
11. Dr. Gurnam Singh. (2020, June 15). Ram Bhaj - Dr. Gurnam Singh

| Raaga Jaijawanti | 2020 [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=xZN0-i4gUco

12. MyKirtanCollection. (2016, August 23). Raag Sorath: Sorath Taam Suhavni by Padma Shri Bhai Nirmal Singh Ji Khalsa [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=37lrprHqKs4
13. Baba Sucha Singh Gurmat Sangeet Academy. (2022, February 23). Raag Dhanaasree_Jap Man Sat naam - Bhai Nirmal Singh ji Khalsa [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=dEjt7bMx2j4
14. ilaahi Gurbani. (2025, October 15). Raag Todi | Thakur Hoye Aap Deyal | Bhai Maninder Singh Hazoori Ragi Sri Darbar | #gurbani #raag [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=pLz2D1xstD0
15. Guru Har Rai Studio. (2022, February 17). 4K | ਰਾਗੁ ਮਾਝ | Har Gun Pareeaai | Raag Maajh | Bhai Satninder Singh Ji Bodal & Jatha [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=kcrgzQhRBdQ
16. Jawaddi Taksal. (2015, July 28). AGSS 1997 : Raag Asa : Dr Gurnam Singh Ji Patiala [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=o6qj1zfCK0o
17. Spreading The Soul. (2024b, February 14). 30 - Dr. Gurnam Singh - Raag Parbhati - Khalik Khalak [Video]. YouTube. https://www.youtube.com/watch?v=chIdWSCO2yo
18. Guru Nanak. (n.d.). Japji Sahib. https://www.sikhnet.com/files/ereader/SGGS%20%5BGurmukhi%5D.pdf

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.032

Mental Health and Music : A Perspective on Disability

Dr.Kuldeep Raina

Abstract

Disability is one of the reasons for ill mental health. Main emphasis is given to physical health and mental health is neglected resulting in feeling of isolation, anxiety, depression and many other impairments. Intervention through music and music therapy is considered as important tool for improvement in mental well being of disabled persons. So, the aim of this study is to collect review related to role of music in enhancing mental well being of Disabled. It is also supported by research studies that involvement in different types of musical activities can promote self awareness ,foster creativity, emotional stability and better mental health.

Key words : *Mental health, Music, Disability.*

Mental health is a Condition of mental wellness that helps an individual to cope with the life stressors, realize ones potential, learn properly and make a positive contribution to their country or community. Everyone's mental health is unique, and it can be affected by a mix of personal, family, community, and larger societal issues. While most people can bounce back from tough times, facing difficult situations can make someone more likely to experience mental health problems. These problems can include mental illnesses, issues with social functioning, or even just feeling really down, struggling to get by, or being at risk of hurting oneself. A lot of these mental health issues can be treated pretty easily and without breaking the bank, but sadly, healthcare systems often don't have enough resources, and many people worldwide don't get the help they need. Research by Jamie Koenig, Kiley J. McLean, and Lauren Bishop in 2024 pointed out that people with disabilities tend to have poorer mental health than those without, and the more difficulty someone has functioning, the worse their mental health often is. This indicates that we're not doing enough to support

Associate Professor : Department of Performing Arts , Cluster university of Jammu, J&K, Email. drkuldeepsudeshi@gmail.com

the mental well-being of people who face the biggest functional challenges. Disability itself is understood as a combination of personal health issues and how well someone can manage in their surroundings.

Mental health is an important aspect for influencing all dimensions of life.. If we struggle to overcome our stress,anxiety, and depression, it's hard to do our best in our everyday lives. Lots of students today get sidetracked by problems they're going through. So, it's a good idea to look into how music therapy can help students with their mental health, figure out why these problems happen, and find ways to fix them. We can't ignore how music affects school settings. It's also a way to handle other worries, anxiety, or sadness. Besides helping us stay focused and in control, music can actually boost how well students do in school. We often think of music as just for fun, but it turns out it's a powerful way to help people deal with mental health struggles like stress, anxiety, and depression. Picking the right kind of music for how you're feeling can make a big difference in overcoming those emotional challenges. The type of music really matters because some styles, like techno or heavy metal, can actually make you feel worse instead of helping you relax. Music doesn't just ease stress, anxiety, and depression; it also helps students do better in class and improve their grades because it brings a sense of focus and calm to the brain.

A research study looked into how music impacts the learning results for children with disabilities, and also explored the difficulties teachers encounter when educating these students. To meet their goals, the researchers employed a qualitative, descriptive case study approach. Three teachers were tasked with creating monthly lesson plans that incorporated music for teaching these children. The researchers reviewed these plans before they were put into action. Subsequently, two of the teachers were interviewed in depth using guided, open-ended questions. The observations and interview data were then analyzed by theme to grasp the challenges associated with using music as a teaching aid for students with disabilities.(Sharon Campbell-Phillips,2020).

Nirenj S Binu (2023) Music is seen as a great way to make life better for people with physical disabilities. Kids with disabilities often deal with special difficulties that can affect how they feel, think, and move. Music has become a really helpful approach for improving their emotional and sensory health, as well as their development and psychological needs. This applies to a range of conditions like autism, Down syndrome, cerebral palsy, and intellectual disabilities. By looking at research that uses personal stories and experiences, this study explores

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.032

all the different ways music therapy helps kids with disabilities get better at talking, showing their feelings, connecting with others, developing motor skills, and generally improving how they live. Music therapy makes a positive difference in the lives of these children by helping them live better.

Music is super important for people throughout their lives. For instance, it helps babies form strong connections with their parents and can provide much-needed comfort and care during end-of-life situations. You know how parents all over the world sing to their newborns? Studies show this really helps moms and babies connect better and calms the baby down. (Vlismas et al., 2013; Mualem and Klein, 2013). It's also been found that music can help older folks with dementia feel less anxious and agitated. (Sung et al., 2012)Music therapy is also great for making people feel better during medical treatments, easing pain and anxiety. The author points out that music is a simple and readily available way to help manage pain, working alongside other treatments. (Lin et al., 2021). By releasing feel-good chemicals and changing how we perceive pain, music can make things more comfortable for kids and teens dealing with long-term pain or medical procedures. (Huang & Duell, 2022).People with profound mental and multiple disabilities are dependent on others in all conditions of their life. Their communication is not verbal, idiosyncratic and expressed by bodily movements, movements and sounds . (Griffiths and Smith 2016). It has been observed that disability is a major cause for impairment in different walks of life of a disabled person,(Granlund, Almqvist and Wilder ,2013) A substantial intellectual disability and a significant motor disability are the two main traits that define PIMD (Nakken and Vlaskamp ,2007). Furthermore, several additional sensory impairments and medical comorbidities are nearly always present in individuals with PIMD. When used as an alternative treatment for depression in ADHD children and adolescents, music therapy showed positive neurophysiological and psychological effects. A neurophysiological and psychological approach can be used to use music as a new alternative of medicine to treat and prevent the depression of ADHD. The confirmed results' indicators meet the need for continuous application and the added value of use. Additionally, through active use in the medical field, music therapy is expected to contribute to the establishment and spread of clinical foundations. The literature shows that music therapy is used as an evidence-based intervention to meet the physical, emotional, cognitive, and social needs of individuals. In addition to other therapeutic methods, music therapy is used in a therapeutic

relationship in two active and passive ways, including production, acceptance, and reproduction in two active and passive modes. It is also used to treat disorders and improve the mental health of the family and society .Furthermore, music therapy has been reported to be effective in the rehabilitation, clinical care, and social skills development of children with ID (Xiong, 2020).

Affect regulation, communication, and social/behavioral dysfunction are at least three broad domains of functioning where music therapy has been effectively applied in the treatment of emotionally disturbed children, according to a review of the literature on the subject.A solid foundation in developmental theory is necessary for assessment and intervention in each of these area, and this is an essential part of music therapists' training.Music therapy was first recognized as a treatment for affective functioning deficits, such as lowering anxiety levels (Cooke, 1969).

Music plays an important role for improvement in the mental functioning of disabled but we need to choose interventions and music therapy according to the need of the person otherwise it can also affect adversely to the individual.

References

C. Huang, S. Gu (2024) Effectiveness of music therapy in enhancing empathy and emotional recognition in adolescents with intellectual disabilities Acta Psychologica, 243 (2024), Article 104152,

Cooke RM (1969), The use of music in play therapy. Journal of Music Therapy. 6(fall):66-75.

Granlund, M., Wilder, J. and Almqvist, L. (2013). Severe multiple disabilities. In: M. Wehmeyer, ed. The Oxford handbook of positive psychology and disability. New York: Oxford University Press, pp.452–474.

Griffiths, C. and Smith, M. (2016). Attuning: A communication process between people with severe and profound intellectual disability and their interaction partners. Journal of Applied Research in Intellectual Disabilities: JARID, 29, 124–138.

Jamie Koenig, Kiley J. McLean, Lauren Bishop (2024) Psychological distress and mental health diagnoses in adults by disability and functional difficulty status: Findings from the 2021 national health interview survey. Disability and Health Journal.Volume 17, Issue 4, October 2024, 101641.https://doi.org/10.1016/j.dhjo.2024.101641

Jong-in Park, in-ho Lee, seung-jea Lee, ryeo-won Kwon, eon-ah Choo, hyun-woo nam (2023) Effects of music therapy as an alternative treatment on depression in children and adolescents with ADHD by activating serotonin and improving stress coping ability. vol(23).Article number 73.

Mualem O., Klein P.S. (2013)The communicative characteristics of musical interactions compared with play interactions between mothers and their one-year-old infants. Early Child Development and Care https://www.tandfonline.com/ 3(7):899

Nakken, H. and Vlaskamp, C. (2002). Joining forces: Supporting individuals

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.032

with profound multiple learning disabilities. Tizard Learning Disability Review, 7, 10–15.

Nirenj S Binu (2023) Music therapy and well-being among differently abled children A dissertation submitted to the University Of Kerala in the Partial Fulfilment of the Requirements for the Masters of Arts Degree Examination in Sociology .Thiruvananthapuram university of Kerala.

Sharon Campbell-Phillips,(2020) "The Effects of Music On The Outcome of Learning On Children With Disability," SSRG International Journal of Humanities and Social Science, vol. 7, no. 4, pp. 53-65, 2020., https://doi.org/10.14445/23942703/0

Sheila Grace M. Bangquiao. Regina P. Galigao (2024) Music as a therapy to students' mental health Volume 3, Issue 4 (2024)281

Sung H., Lee W., Li T., Watson R. (2012) A group music intervention using percussion instruments with familiar music to reduce anxiety and agitation of institutionalized older adults with dementia. Int. J. Geriatr. Psychiatr. 2012;27(6):621–627. doi: 10.1002/gps.2761.

Vlismas W., Malloch S., Burnham D. (2013) The effects of music and movement on mother–infant interactions. Early Child. Dev. Care. 2013;183(11):1669–1688. [Google Scholar

World Health Organisation (2025) Mental health .Retreived online on October 8,2025 from.https://www.who.int/

Xiong, Z. (2020). Music Interventions for a Child with Developmental Disabilities.Unpublished Master's, Lesley University. [42]

Z.W. Lin, J.F. Liu, W.P. Xie, Q. Chen, H. Cao(2021)The effect of music therapy on chronic pain, quality of life and quality of sleep in adolescents after transthoracic occlusion of ventricular septal defect.The heart surgery forum, 24 (2) (2021), pp. E305-E310,

Music as Identity Construction and Expression of Lgbtqia + Individuals with Special Reference to Varanasi : A Narrative Analysis.

Urmi Samaddar*, Dr. K. Sashi Kumar**

Abstract

This study is based on qualitative narrative analysis. It incorporates the narratives of individuals belonging from the LGBTQIA+1 community residing in Varanasi which is considered as one of the oldest living cities of India known for spirituality, pilgrimage, rich music and tradition. LGBTQIA+ people in non-metropolitan settings like Varanasi form a socially and culturally sidelined minority, with their experiences largely overlooked in scholarly work. Centering this group lets the study depict the subtle nuances of identity negotiation, expression, and validation amid conservative social norms. Music is selected as the central lens because it functions as a powerful and accessible medium for emotional expression, identity construction, and community belonging. For marginalized individuals, music not only provides personal solace and self-expression but also serves as a cultural space where alternative identities can be explored, validated, and connected to broader queer narratives. This dual focus enables a deeper understanding of how marginalized communities navigate social constraints and carve out expressive, affirming spaces for themselves.

Keywords: *LGBTQIA+, Music Psychology, Identity Politics, Visibility,2 Queer,3 Music Sociology.*

Introduction:

LGBTQIA+ individuals' lives are often influenced by societal pressures, heteronormative standards, and levels of acceptance or stigma. In numerous settings, openly embracing queer identity faces restrictions, prompting people to explore other avenues for self-expression. Elements like lyrics, melodies, genres, and performers

*Research Scholar : Department of Vocal Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi

**Professor, Dept. of Vocal Music, Former Dean, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.033

frequently echo personal challenges around gender, sexuality, belonging, and authenticity. Although prior studies have investigated musical influence on emotion regulation and identity development, there is still a lack of narrative-focused research that prioritizes the personal stories and perspectives of LGBTQIA+ people. This research aims to fill that void by exploring how LGBTQIA+ community members describe their connections to music and their views on queer visibility in the music industry.

Varanasi stands as one of India's oldest continuously inhabited cities, carrying profound religious, spiritual, and cultural weight. In these environments, non-normative gender and sexual expressions tend to be erased rather than directly challenged. This reflects a pervasive silence and control that stifles deviations from societal expectations. Much of India's LGBTQIA+ scholarship targets metro hubs like Delhi, Mumbai, and Bengaluru, where queer spaces, advocacy, and visibility thrive. As a culturally conservative non-metropolitan center, Varanasi has received scant attention. This research intentionally spotlights Varanasi to investigate how LGBTQIA+ people manage their identities and expressions amid constrained and often concealed queer presence.

Methodology:

Research Design

This study is based on a qualitative narrative research design. Narrative inquiry proves ideal for exploring subjective experiences, identity formation etc. While typically pursued via interviews, narratives can also be drawn from open-ended written replies too, enabling participants to ponder and voice their stories in their own terms.

Participants

The sample consisted of 20 individuals who self-identified as belonging to the LGBTQIA+ community. Participation was voluntary and anonymous. Demographic diversity in terms of gender identity, sexual orientation, and age was present within the sample, although specific identifying details have been kept confidential for ethical purposes. Below are two pie-charts reflecting the diversity of the respondent's gender and sexuality.

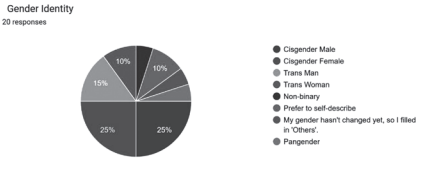

Diverse Gender Identity Ratio of Respondents

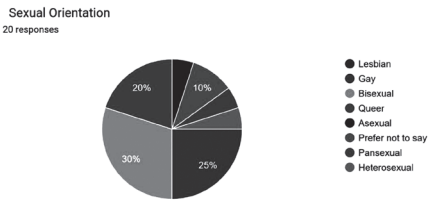

Sexual Orientation Ratio of Respondents

Data Collection Tool

Data has been collected through an online google questionnaire. Two open-ended questions formed the core of the study:

1.“How does music help understand or express identity?”

2.“Do you think more queer musicians need to come up to the forefront? If yes, explain why.”

These questions were designed to elicit reflective and narrative responses.

Data Analysis

Responses have been analyzed using thematic narrative analysis. The process involved repeated reading of responses, coding for recurring meanings, and grouping narratives into broader thematic patterns. Direct excerpts from participants’ responses were retained to preserve narrative authenticity.

Ethical Considerations

Participants have answered the questionnaires voluntarily. All identifying information and responses collected have been treated with sensitivity and confidentiality has been maintained.

Literature Review: Music serves as a vital tool for people to build, convey, and reshape their identities, far beyond mere amusement. It acts as a symbolic and affective resource woven into daily routines (DeNora, 2000). Listeners draw on it through habits like playing tracks, relating to lyrics, and feeling emotional echoes to craft personal significance and recount their selfhood. Frith (1996) posits that music doesn’t just mirror identity—it generates it, letting people “inhabit themselves” via sounds, words, and shows.

Studies in psychology and sociology tie music tastes to self-image, principles, and feelings (North & Hargreaves, 2008). It helps to align people with specific tales, groups, and moods, positioning it as key terrain for identity crafting. This dynamic intensifies for those with sidelined or policed identities.

Extensive work shows music’s power in mood management and mental resilience. Juslin and Sloboda (2010) note its ability to heighten, or shift emotions, aiding control over tension, grief, and overwhelm. Thayer et al. (1994) reveal deliberate use of music for mood tuning, equilibrium, and everyday strain relief.

Qualitative inquiries stress music’s part in emotional endurance. McFerran and Saarikallio (2014) show reliance on it in fragile times,

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.033

creating a bias-free zone for handling tough-to-voice sentiments. These roles matter most for those facing solitude, self-conflict, or scarce supportive environments.

LGBTQIA+ people traverse intricate emotional terrains marked by prejudice, erasure, and oversight. Meyer's Minority Stress Model (2003) traces chronic mental strain to bias, hiding, and self-stigma in gender and sexual minorities. Such pressures demand discreet coping that skips coming out or clashes.

Taylor (2012) calls pop music a hub for "queer world-building," freeing visions past straight norms. Via words, styles, and acts, queer artists defy mainstream tales, pitching fresh takes on romance, craving, and being.

Biddle and Knights (2018) underscore music's adaptable, feeling-driven arena for hashing out gender and sex, especially for the sidelined. Queer performers fuel this, sparking recognition and community. Jones et al. (2021) find LGBTQ+ folks forge deep bonds with such artists, tying music for coming out and self-unity. Cultural presence carries a big mental weight. Spotting oneself in shared realms cuts loneliness and bolsters sidelined lives' validity. For LGBTQIA+ people, queer artist visibility breaks silence and mainstreams varied selves. In these settings, music and icons gain extra heft. Queer artists deliver not just feeling matches but emblems of hope, pushback, and rightness.

While existing literature has established the emotional and identity-related functions of music and documented the psychological challenges faced by LGBTQIA+ individuals, there is limited research that centers LGBTQIA+ voices through narrative accounts of music use. Moreover, studies focusing on how LGBTQIA+ individuals perceive queer representation in music—particularly through their own words—remain scarce. This gap underscores the importance of narrative-based research that foregrounds community voices and explores music as a site of identity expression, emotional coping, and cultural visibility.

Objectives: The present research is guided by two key questions and is a narrative analysis based on the data collected through an online questionnaire. The two key research questions are as follows:

1.How does music help LGBTQIA+ individuals understand or express their identity?

2.Do LGBTQIA+ individuals believe that more queer musicians need to come to the forefront, and why?

Narrative Findings:

Theme 1: Music as Identity Recognition and Self-Understanding

Many participants described music as a mirror through which they are

able to recognize and understand their identity. Music allows them to articulate feelings that are difficult to express verbally, particularly during periods of confusion or self-discovery.

One participant wrote:

"Music helps me express my identity by giving voice to my emotions and experience when words alone are not enough"

Another participant wrote:

"Music becomes a safe emotional language when words feel risky or unavailable. Growing up, especially in environments where queerness isn't openly accepted, music often provides privacy, comfort, and validation. Lyrics about longing, difference, heartbreak, or self-acceptance can resonate strongly, even if they aren't explicitly queer. Soft, melodic music in particular is often described as a space for introspection—helping people process feelings of vulnerability, sensitivity, and emotional depth that society may discourage men from expressing. Through music, many gay men learn that tenderness, emotion, and softness are strengths, not weaknesses. Music also helps in identity affirmation. Queer artists, queer anthems, or even non-queer songs that can be reinterpreted allow listeners to see themselves reflected somewhere. Singing along, creating playlists, or attending concerts can feel like quietly saying, "This is who I am."

These narratives suggest that music functions as a language of identity, enabling individuals to make sense of their internal experiences.

Theme 2: Music as Emotional Shelter and Survival

Participants frequently described music as an emotional refuge, especially in moments of loneliness, rejection, or stress. Music was portrayed as a constant companion that offered comfort without judgment.

Some of the narratives by participants are as follows:

"I feel seen in their music. As a queer person, we are often bereft of collectivity so it's a safe space for me !!"

"It blocks the noise of everyday life, gives me a void to lose myself into without worrying about what's out there. "

"I use music to release stress; I don't connect with any song because every song I listen to in Bhojpuri has women objectification."

These narratives highlight music's role in emotional regulation and psychological coping. For many, listening to music is not merely recreational but a vital strategy for maintaining emotional balance. From one of the narratives above, it is clear how women are objectified in music and how difficult it becomes for people to bear such objectification happening in society.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.033

Theme 3: Representation, Visibility, and the Need for Queer Musicians

An overwhelming majority of participants expressed a strong desire for greater visibility of queer musicians. Representation is linked to feelings of validation, normalization, and hope.

Some of such narratives that came up during the online survey are as follows: (The question asked was if more queer musicians need to come to the forefront and why?")

"Absolutely. More queer musicians at the forefront means more honest storytelling and fewer barriers for the next generation. When the "mainstream" reflects the actual diversity of the world, music becomes more innovative, and listeners everywhere—especially queer youth—get to see their own lives treated as worthy of the spotlight."

"So that people know that there are queer people too: who want to create their own identity"

"YES! Queer stories and narratives are very different from those of our cis-hetro peers, we experience love, heartbreak and challenges differently, and even the challenges are different in and of themselves! Having music that speaks to my lived experiences would definitely help me."

"Yes definitely. There are thousands of people who belong to the LGBTQIA+ community but due to the social stigma and hatred people are scared of being visible and remain in the closet. So, if more queer musicians and artists come to the forefront, more people would have the courage to come out and live normal lives. Also, queer narratives need to come up so that queer people feel like they are not alone and can relate and on the other hand, it spreads awareness among the other people of the society."

"Yes, more queer musicians should come to the forefront, because visibility plays a powerful role in shaping culture and self-acceptance. When queer artists are seen and heard openly, it challenges stereotypes and normalizes diverse identities in society. Representation helps listeners, especially young or questioning individuals, feel recognized and less alone. Queer musicians also bring unique perspectives shaped by their lived experiences of love, struggle, identity, and resilience. These experiences enrich music with emotional honesty and new narratives that are often missing in mainstream spaces. Their voices expand what is considered universal in music. In addition, having more queer artists in the spotlight helps break the idea that success requires hiding one's identity. It creates safer, more inclusive creative industries where authenticity is valued. When queer musicians lead openly, they don't just entertain—they inspire social change, empathy, and freedom of expression."

Participants emphasized that queer musicians challenge dominant narratives and create spaces where diverse identities are acknowledged. Visibility is seen not only as empowering for LGBTQIA+ listeners but also as a means of educating society and reducing social stigma.

Discussion:

This study's findings reinforce existing research on the powerful role of music in shaping identity and regulating emotions. Participants' accounts highlight music's varied psychological and cultural functions, particularly for individuals navigating marginalized identities. Music supports self-recognition, emotional strength, and a sense of connection to broader queer narratives.

The strong emphasis on representation aligns with queer cultural theory, which underscores visibility as essential for challenging dominant norms. Participants' calls for greater representation of queer artists reflect a desire for cultural spaces that authentically represent their lived experiences.

Most importantly, the narrative analysis of questionnaire responses demonstrates that even brief written reflections can offer meaningful insights into community experiences.

Conclusion:

This research positions music as an essential narrative space for LGBTQIA+ individuals, where identity formation, emotional expression, and acts of resistance converge. Music serves not only as a means of self-expression but also as a source of belonging and affirmation through meaningful representation.

The results point to the importance of amplifying queer voices within the music industry and encourage further research that foregrounds LGBTQIA+ experiences. Acknowledging the role of music in supporting emotional health and affirming identity may be especially valuable for music educators, mental health professionals, and cultural organizations working with marginalized communities.

Limitations and Future Prospects:

The study's reliance on self-reported questionnaire data and a relatively small survey limits generalizability. Future research could incorporate in-depth interviews, longitudinal designs, or comparative studies across cultural contexts.

References

1. DeNora, T. (2000). Music in everyday life. Cambridge University Press.
2. Frith, S. (1996). Music and identity. In S. Hall & P. du Gay (Eds.), Questions of cultural identity (pp. 108–127). SAGE Publications.
3. North, A. C., & Hargreaves, D. J. (2008). The social and applied psychology of music. Oxford University Press.
4. Juslin, P. N., & Sloboda, J. A. (Eds.). (2010). Handbook of music and emotion: Theory, research,

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.033

applications. Oxford University Press.
5. McFerran, K. S., & Saarikallio, S. (2014). Depending on music to feel better: Being conscious of responsibility when appropriating the power of music. Psychology of Music, 42(4), 489–507. https://doi.org/10.1177/0305735613483665
6. Thayer, R. E., Newman, J. R., & McClain, T. M. (1994). Self-regulation of mood: Strategies for changing a bad mood, raising energy, and reducing tension. Journal of Personality and Social Psychology, 67(5), 910–925. https://doi.org/10.1037/0022-3514.67.5.910
7. Plummer, K. (1995). Telling sexual stories: Power, change and social worlds. Routledge.
8. Meyer, I. H. (2003). Prejudice, social stress, and mental health in lesbian, gay, and bisexual populations: Conceptual issues and research evidence. Psychological Bulletin, 129(5), 674–697. https://doi.org/10.1037/0033-2909.129.5.674
9. Riessman, C. K. (2008). Narrative methods for the human sciences. SAGE Publications.
10. Taylor, J. (2012). Playing it queer: Popular music, identity and queer world-making. Peter Lang.
11. Biddle, I., & Knights, V. (Eds.). (2018). Music, gender, and sexuality. University of Michigan Press.
12. Jones, S., Clarke, R., & Annesley, J. (2021). "I'm coming out": Music, emotion and LGBTQ+ identity. Voices: A World Forum for Music Therapy, 21(2). https://doi.org/10.15845/voices.v21i2.3182
13. Narrain, A., & Gupta, A. (2011). Queer: Despised sexuality, law and social change. Books for Change.
14. Chakrapani, V., Newman, P. A., & Shunmugam, M. (2017). Stigma, mental health, and sexual minorities in India: A qualitative study. Culture, Health & Sexuality, 19(6), 710–722. https://doi.org/10.1080/13691058.2016.1249033

The Heroic Hand in Motion: Aesthetic Logic, Character Modulation, and Embodied Pedagogy in Kathakali Hastamudra Practice

Vrinda Sadasivan*, Dr. Nilam Nandini Sarmah**

Abstract

Although Kathakali hand gestures have been carefully listed in classical treatises and modern studies, the way these gestures actually work on stage has not received equal attention. This paper studies the hastamudra system as a lived, bodily practice rather than a fixed list of signs. It focuses on three linked areas: the physical structure that shapes how gestures are executed, the way meanings are grouped within the gesture lexicon, and the role of character type in altering meaning. The study shows that Kathakali gestures do not simply illustrate song texts; they function as an active dramatic language. The strong, grounded body stance supports clear gesture projection, while groups such as pātaka-based forms, animal signs, and weapon gestures create internal patterns. Meaning depends on muscle tension, timing, and spatial movement. Scenes from Kīcaka Vadha and *Kalyāṇa Saugandhika, along with training methods, show how performers learn to narrate epics through the hands alone.*

Keywords: *Kathakali, hastamudra, embodied practice, guna modulation, performance pedagogy, gesture syntax*

Introduction

The gestural vocabulary of Kathakali has captivated scholars for its remarkable capacity to narrate entire epics without recourse to verbal speech. Scholarly catalogues enumerate approximately five hundred semantic units derived from twenty-four foundational hand shapes, each capable of conveying multiple meanings contingent upon context, directional orientation, and execution speed (Pandeya, 1961). However, cataloguing alone proves insufficient to explain how these gestures function within Kathakali's distinctive kinetic

* PhD Research Scholar, School of Performing Arts and Indic Studies REVA University, Bengaluru
** Professor School of Performing Arts and Indic Studies REVA University, Bengaluru

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.034

logic. A *patāka* executed by a noble hero and the identical shape performed by a chaotic demon share fundamental hand configuration, yet they appear and feel fundamentally different on stage. Understanding this distinction necessitates moving beyond lexical inventory toward analysis of the embodied principles governing gesture execution.

This paper investigates Kathakali's hastamudra system as a practice-based phenomenon, examining the aesthetic architecture shaping gesture delivery, the functional clustering organising vocabulary acquisition, the character-driven modulation inflecting identical shapes with moral meaning, and the pedagogical protocols transmitting this knowledge across generations. The central argument posits that Kathakali's gesture grammar operates as a multimodal dramaturgical engine wherein hand, eye, face, stance, and percussion function as a unified expressive organism—gesture meaning emerging from kinetic context rather than isolated form.

The methodology integrates performance analysis with close reading of scene sequences and documentation of training practices. Two canonical plays—*Kīcaka Vadha* and *Kalyāṇa Saugandhika*—provide case studies demonstrating gesture syntax in action. The paper draws upon scholarship by Zarrilli (1990, 2000), Pandeya (1961), Menon (2023), and Arachchi (2022), supplemented by treatise references and pedagogical observation.

Theoretical Framework

The study of classical gesture as embodied practice requires frameworks transcending text-centred semiotics. Foster (2011) contends that kinesthetic knowledge—the intelligence residing in muscles, joints, and proprioceptive awareness—constitutes a distinct epistemological domain irreducible to verbal or written description. Within this perspective, the dancer's body functions not merely as an instrument executing prescribed signs but as an active site of meaning-making where cultural knowledge is stored, transmitted, and transformed through physical practice.

The concept of multimodal integration proves particularly salient for Kathakali analysis. Classical Indian performance theory consistently emphasises the interdependence of hand, eye, and facial expression. The celebrated verse from Abhinaya Darpana—"Where the hand goes, there the eye follows; where the eye goes, there the mind follows; where the mind goes, there emotion arises; where emotion arises, there rasa is born"—encapsulates this principle (Nandikeśvara, trans. 2002). Kathakali pedagogy maintains this integration with exceptional rigour, training performers to coordinate gesture with gaze, facial expression,

and drum cue so that meaning emerges from their convergence rather than from any isolated element.

The notion of "accent" or "colouring" in gesture delivery provides another crucial analytical concept. Just as spoken language carries regional and social accents inflecting meaning beyond lexical content, performed gestures carry kinetic accents—variations in tension, tempo, and trajectory—signalling character disposition. Zarrilli (2000) documents how Kathakali's makeup codes visually announce character type before a single gesture occurs; this paper extends that observation by examining how gestural execution itself embodies moral typology.

Finally, the principle of semantic economy explains how a limited alphabet generates vast vocabulary. Pandeya (1961) observes that twenty-four root shapes expand into approximately five hundred semantic units through combination rules, directional variation, and contextual application. This generative grammar enables performers to translate any poetic image into gesture while maintaining audience legibility, the underlying system remaining consistent throughout.

The Aesthetic Architecture: Heroic Stance and Gestural Grammar

The Maṇḍala Sthānaka Foundation

Kathakali's gesture vocabulary does not float independent of the body; it rises from a solid physical platform that ancient treatises term *muṇḍala sthānaka*. This foundational stance positions feet wide—approximately four hand-spans apart—with knees bent, thighs turned outward, spine upright yet springy, and chest elevated (Zarrilli, 2000). The performer appears poised to leap, projecting an image of controlled energy that performance manuals associate with the heroic mood. Even gentle or feminine roles maintain a softened version, establishing a common stage "font" upon which different characters inscribe their gestures.

Daily training within the kalari develops the physical capacity to sustain this demanding posture for extended periods. Oil massage, stretching exercises, and martial drills adapted from Kalaripayattu cultivate the thigh and calf strength necessary for the deep crouch while training shoulders to retract, necks to lengthen, and gazes to elevate appropriately (Arachchi, 2022). The stance thus serves functional rather than decorative purposes: anchoring weight, balancing elaborate headgear, and framing the hand with such clarity that even distant viewers can discern subtle finger variations.

The Twenty-Four Root Shapes as Alphabet

The *Hastalakṣaṇa Dīpikā* catalogues twenty-four single-hand

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.034

shapes as the *mūla* or roots of every larger sign (Thampuran, 1892). Kerala tradition designates these the *attezhuthu*—the dance alphabet. A flat *patāka*, a claw-like *mṛgaśīrṣa*, a tight *muṣṭi*: each shape independently carries several general meanings that context subsequently specifies. Pandeya (1961) estimates these roots generate approximately five hundred stable semantic units through combination and variation.

Precision in finger angles proves essential, as slack thumbs or wandering little fingers can entirely reverse meaning. The treatise cautions that a *mudrā* must remain stable in wrist, firm in fingertips, and unshaking in shoulder before expressive elaboration is attempted (Thampuran, 1892). Gurus correct angles through immediate physical adjustment; senior performers detect errors from across the stage.

Unlike Mohiniyattam's rounded wrist-loops, Kathakali *mudrās* project in straight lines or clear arcs. A *kartarīmukha* cuts sideways like a sword edge; a *muṣṭi* snaps forward on accented syllables. This sharp geometry harmonises with the brassy pulse of the chenda drum and the rectangular outline of the heroic stance, creating a coherent kinetic vocabulary suited to epic narrative.

Multimodal Integration in Performance

On stage, no *mudrā* stands in isolation. When a performer indicates "forest" using *patāka*, the eyes travel decisively along the palm's direction, the jaw sets with determination, and the drummer marks the transition with a firm cue. These elements together create a coherent semantic unit that audiences grasp instantaneously without verbal narration (Menon, 2023). The *Abhinaya Darpana* aphorism thus describes not an ideal but a practical requirement: meaning collapses if hand, eye, and mind fail to align.

Functional Clusters: Organising the Gestural Lexicon

Performers and teachers organise Kathakali's gesture vocabulary into families—groups sharing either basic form or semantic field. This clustering aids both students learning related signs together and researchers perceiving structural patterns within apparent complexity (Kurup, 2014).

The Patāka Cluster

Patāka, the straight palm with fingers pressed together and thumb folded slightly inward, heads the categorical list. The Hastalakṣaṇa Dīpikā devotes several verses to its meanings: sun, king, wind, ocean, elephant, wave, lightning, and more

(Thampuran, 1892). Small shifts in level, tilt, or movement select the appropriate sense during performance. Tripatāka bends the ring finger; ardhapatāka bends both ring and little fingers. Kerala masters treat these as sub-flags within the same family rather than independent letters (Sreenathan, 1992).

Typical applications include scene-setting—both hands in patāka sweeping low for earth, lifting high for sky, rippling for river—and rank-marking, where patāka held chest-high and still signifies royalty while the same palm circling downward indicates servitude (Menon, 2023). In *Kīcaka Vadha*, *Draupadī* points patāka toward the palace indicating the king's hall, then drops it to floor level to show servant's quarters, mapping spatial hierarchy without physical scenery.

The Animal Group

Numerous creatures possess iconic hand configurations. *Mṛgaśīrṣa*—thumb and little finger extended, remaining fingers curved—represents deer or cow; *hamsāsya*—thumb and middle finger touching, others spread—depicts swan or small bird; bhramara—index and little finger extended, hand circling—evokes a hovering bee; simhamukha—index and middle fingers forming jaws—represents a roaring lion (Pandeya, 1961). Compound forms combine root shapes for larger creatures: one hand flapping as an ear while the other curls as a trunk creates an elephant.

These animal signs also serve metaphoric purposes. Bhramara can indicate sweet fragrance; maganuria can reference diva because he holds a deer. The same shape thus carries both literal and figurative registers depending on narrative context.

The Weapon Group

Epic heroes rarely appear without arms, and Kathakali mimes every bow-string draw and mace-swing through gestural code. Bow and arrow combine two sikhara shapes: the front arm steadies as the bow while the rear arm draws the string then flicks katakamukha to release. A raised musti represents the mace wielded by Bhima or Hanuman. Down-slanted kartarimukha suggests a sword blade while the empty left arm curves as shield. Indra's thunderbolt combines sikhara and musti (Pandeya, 1961; Sreenathan, 1992).

Because weapons inhabit audience memory, minimal gesture suffices: when the singer names Gandiva, viewers perceive the bow through simple mudra configuration. The sign evokes rather than depicts, relying upon shared cultural knowledge to complete the image.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.034

Elemental Signs

The final family transforms the stage into weather and cosmos. Tripataka fingers trembling upward represent flames; pataka palm waving downward suggests flowing water; ardhacandra held overhead indicates the rising moon; suci fingers fluttering sideways depict wind (Zarrilli, 2000). These signs frequently coordinate with lighting and drum texture: rolling chenda strokes combined with flickering tripataka gestures convince audiences of fire even in daylight conditions.

Character-Driven Modulation: The Guna System

Kathakali's gesture signs are codified in rule, yet no two characters execute them identically. Every movement carries an additional layer of colouring drawn from the performer's guna—the innate moral quality of the role. Kerala masters classify all characters into three temperaments signalled visually through face-paint: pacca green or soft yellow minukku for sattvika purity, katti green with red knife pattern for rajasika passion, and red-beard or black-beard makeup for tamasika darkness (Menon, 2023; Kurup, 2014).

Sattvika Modulation

Sattvika heroes and heroines move like steady flames. Gurus instruct students to maintain fingers long but relaxed, wrists fluid, and arm paths smooth and contained (Namboodiri, cited in Pandeya, 1961). Pataka signifying "king" or "truth" lifts only to shoulder height, holds for a full breath, then lowers in a quiet arc. Hamsasya showing "beauty" curves gently at the wrist with eyes following softly. Anjali for prayer draws slowly toward the brow, thumbs touching lightly to signal devotion rather than display.

Finger tension occupies midway between limp and rigid; transitions melt one shape into the next so emotion appears to flow rather than jerk. This restraint generates rasas such as srngara and karuna without disrupting heroic composure.

Rajasika Modulation

Rajasika anti-heroes inhabit restless fire. Their fingers lock tight, wrists snap, and arms carve sharp diagonals. Pataka delivered as command whips from hip to forehead in a single beat, finishing with an inward twist communicating authority (Arachchi, 2022). Kartarimukha slices the air like a dagger; Ravana emphasises threat by adding sudden elbow jabs. Musti lifted overhead with elbow fully extended marks Duryodhana's mace; the fist trembles momentarily to show barely contained anger.

Holds are shorter, impact stronger, and wrist angles steeper than in pacca delivery, matching the pounding

chenda rhythm accompanying katti scenes. Yet clarity never diminishes; rajasika polish demonstrates that the character still claims royal breeding (Pandeya, 1961).

Tamasika Modulation

Tamasika demons break established lines entirely. Fingers are either iron-stiff or claw-wide; wrists jerk or vibrate; arms sweep in irregular arcs. Musti becomes a hammer: Bakasura swings the fist in a full circle before slamming it forward, sometimes adding a growl (Zarrilli, 2000). Simhamukha for a roaring beast thrusts past shoulder height, fingers spread like fangs, then shakes rapidly—three shakes marking frenzy.

Tempo rises to iratti or double-fast; transitions blur slightly, yet root shapes remain readable. Coarseness immediately communicates to viewers that ignorance and violence govern this body (Vimal, 2017).

Identical Shape, Different Accent

The guna system thus demonstrates that semantic meaning emerges not from hand shape alone but from kinetic accent applied to that shape. An anjali by Hanuman resonates with genuine devotion because palms meet gently, eyes soften, and shoulders sink. The identical palm-join executed rapidly by Kicaka with a crooked grin reads as mock respect—audiences laugh at the hypocrisy (Harikumar, 2019). Gesture becomes sentence plus speaker's attitude within a single frame.

Narrative Syntax: Scene Studies

Kicaka Vadha

This canonical play provides a crucible of vira and raudra rasa, testing the gestural system's capacity for violent narrative. Draupadi enters dishevelled, touching kapittha to her temple signalling troubled thought, then extending palms in anjali travelling forward, transforming prayer into plea (Menon, 2023). As the vocalist intones her lament, her pataka fingers rake disordered tresses, then slide into musti against forearm miming forcible dragging. Sarpasirsa near the breast sketches Kicaka's lecherous touch, punctuated by an outward-flipped pataka—Kathakali's universal imperative "Stop!"

Bhima listens, steadying Draupadi with soothing pataka, then expands into heroic stance: knees flexing, torso arching forward, buttocks thrusting backward. A single musti shoots skyward, quivering; the fist then crashes into the opposite palm, sealing the contract of vengeance (Zarrilli, 2000).

The nocturnal duel proceeds through rapid gesture chains. During the iratti fight sequence, mudra accents remain essential: ardhacandra shapes an urn hurled at Bhima; musti-on-wrist depicts seizure; sikhara at the throat culminates in

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.034

mock strangulation. Death is shown rather than enacted: swift pataka tilts downward as the katti slumps, fulfilling the treatise rule that pataka indicates a falling body.

Kalyana Saugandhika

This play shifts register toward comedy and revelation. Bhima quests for a divine flower, inhaling its fragrance through hamsasya fluttering before his nostrils while alapadma eases outward visualising aroma, then snapping into suci probing the forest path (Kurup, 2014). Periodic pataka sweeps map terrain as the singer queries "Where is the fragrance?"

When the snow-white-bearded Hanuman lies across the path, Bhima halts with double pataka front, palms outward. Sarpasirsa traces the serpentine tail curve; eyebrows vault in disbelief. Kapittha at the mouth plus pataka toward the monkey commands "Lift it!" Hanuman's reply emerges as slow-motion hamsasya, tremoring downward feigning weakness.

Comic escalation follows. Indignant, Bhima performs the sarcastic laugh—mrgasirsa over lips—followed by dismissive wave (Menon, 2023). Grasping the invisible tail with twin musti, he leans backward, knees buckle, shoulders strain. The drum delivers bass strokes while his chest heaves—an honest battle lost. Exhaustion yields reflection; Bhima lifts catura to his brow, eyes narrowing—"Who is this creature?" A sudden finger gesture mimics air currents, hinting at Vayu lineage. He drops to one knee extending anjali. Hanuman straightens, raising abhaya pataka in benediction while the left hand crafts an aureole via hamsapaksa: "son of wind."

Both plays demonstrate how Kathakali chains root mudras into gesture clauses delivering subject, verb, and object simultaneously—what Zarrilli (2000) terms "speaking polyphonically with the body."

Embodied Pedagogy: Training Protocols

The Training Sequence

Kathakali education commences before dawn, typically around three or four in the morning (Zarrilli, 1990). At institutions such as Kerala Kalamandalam, pupils aged ten or eleven enter a seven-year regimen of massage, martial stretches, footwork, and mudra drill. Morning oil massage enables the guru to lengthen muscles for the deep plie stance; martial drills adapted from Kalaripayattu impart to fingers the tensile strength to flash between shapes hundreds of times without tremor (Arachchi, 2022).

On the initial day, novices are instructed to master four mudras before dreaming of forty (Pandeya, 1961). For months students recite the twenty-four-sloka list while fixing each shape; gurus tap errant knuckles

with sticks until every fingertip lands at correct angles. This sloka-chanting-plus-hand-shaping drill echoes every dawn at Kalamandalam.

Each sign is tagged to a Sanskrit or Malayalam couplet listing canonical meanings: pataka equals sun, king, wind, ocean; musti equals strength, oath, mace. Students first demonstrate three or four canonical applications, then learn extension by analogy under guru guidance. By the third year, pupils convert entire poetic lines into gesture strings. Advanced disciples must recount epics spontaneously—a discipline inherited from Kutiyattam's improvisational tradition (Menon, 2023).

Guru Perspectives on Method

Senior teachers have articulated diverse pedagogical philosophies. Some prize austerity, demanding students repeat four mudras for years before touching face-work (Pandeya, 1961). Others blend concept and craft, conducting evening lectures on treatise verses so dancers understand the rationale underlying each palm configuration. Still others embrace notation following collaboration on documentation projects, developing cue-sheets aiding repertory restaging (Sreenathan, 1992).

Younger teachers report that written aids accelerate syllabus coverage, freeing time for creativity, yet they still commence each rehearsal with spoken kara-suddhi drill—rapid-fire recitation of all twenty-four signs so the body remembers grammar before the actor remembers story.

Body and Page

The coexistence of oral-embodied transmission and documentary notation serves complementary functions. Notation freezes exact finger geometry, enabling revival of rarely performed scenes and standardising instruction across geographic distances. Yet gurus caution that static glyphs cannot encode tempo, force, or emotional tint; authentic knowledge remains "in the blood" (Kurup, 2014). Institutions therefore treat notation as dictionary rather than script: useful for recalling forgotten signs but never substituting for studio drilling.

Discussion and Conclusion

The analysis presented here demonstrates that Kathakali's hastamudra system operates as a sophisticated dramaturgical engine rather than simple illustration of sung text. Several key principles emerge from this investigation.

First, multimodal coherence ensures that gesture meaning arises from the convergence of hand, eye, face, stance, and percussion rather than from hand shape alone. Performers train to coordinate these elements so thoroughly that their separation becomes impossible in practice.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.034

Second, generative economy permits a finite alphabet of twenty-four root shapes to produce vast vocabulary through combination rules, directional variation, and contextual application. This economy facilitates both learning and creative extension: new narrative objects can be signed by recombining familiar forms.

Third, character modulation transforms identical shapes into morally distinct signs through kinetic accent. The guna system demonstrates that gesture carries ethical weight—audiences perceive virtue, passion, or brutality through movement quality before narrative exposition confirms their intuition.

Fourth, embodied pedagogy ensures that this knowledge is transmitted through physical conditioning, oral recitation, and improvisational challenge rather than textual study alone. The training sequence builds kinesthetic memory that precedes and underlies conscious interpretation.

These principles carry implications for intercultural transmission. When Kathakali travels to international stages, multimodal coherence must be preserved even as specific cultural references require explanation. The generative grammar enables creative adaptation—contemporary themes can be signed using traditional roots—without losing stylistic coherence. Understanding character modulation assists international students in grasping that Kathakali's gesture vocabulary constitutes not a neutral code but an embodied ethics.

Future research might extend this analysis through comparative study of gesture modulation in other classical traditions, examination of how diaspora teaching contexts transform training protocols, and investigation of digital documentation's capacity to capture kinetic accent alongside shape geometry. The practice-based approach demonstrated here offers a template for understanding classical gesture systems as dynamic embodied practices rather than static lexical inventories.

References

1. Arachchi, M. C. K. (2022). Application of Kandyan dance and Kathakali dance in Santiniketan dance style: Scope and possibility [Doctoral dissertation, Visva-Bharati University]. Shodhganga.
2. Devaki, A. S. (1990). The words of Sanskrit origin in Kathakali texts [Doctoral dissertation, University of Kerala]. Shodhganga.
3. Foster, S. L. (2011). Choreographing empathy: Kinesthesia in performance. Routledge.
4. Harikumar, P. (2019). Gesture and character in Kathakali. Journal of Kerala Studies, 27, 740–748.
5. Kurup, T. (2014). Acting styles of Kathakali and Kabuki: A comparative study [Doctoral dissertation, Pondicherry University]. Shodhganga.

6. Menon, V. A. (2023). Gestural communication assessment of Kathakali: Nonverbal expression and reception [Doctoral dissertation, Central University of Tamil Nadu]. Shodhganga.
7. Nandikesvara. (2002). Abhinaya Darpana (M. Ghosh, Ed. & Trans., 2nd ed.). New Bharatiya Book Corp.
8. Pandeya, A. C. (1961). The art of Kathakali (2nd ed.). Kitabistan.
9. Sreenathan, M. (1992). Technical terminology in performing arts of Kerala [Doctoral dissertation, University of Kerala]. Shodhganga.
10. Thampuran, K. U. (1892). Hastalaksana Dipika. Nadapuram Press.
11. Vimal, A. (2017). Performing disfiguration: Construction of 'primitive' and the ambiguities of representing pain in Kathakali. Academia.edu.
12. Zarrilli, P. B. (1990). Demystifying Kathakali. Abhinav Publications.
13. Zarrilli, P. B. (2000). Kathakali dance-drama: Where gods and demons come to play. Routledge.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.035

Arya Samaj's Contribution to Indian Culture

Prof. Pushpam Narain

Summary

Swami Dayanand Saraswati officially founded the Arya Samaj on April 10, 1875, in Bombay (now Mumbai), although his ideals and teachings were already influential in society. Dayanand Saraswati called for the pure teachings of the Vedas and rational religiosity against modern hypocrisy and superstitions. His primary objective was to re-establish the supremacy of the Vedas. The Arya Samaj strongly opposed idol worship, rituals, and social superstitions and resolved to build a society based on Vedic principles. Swami Dayanand Saraswati (1824-1883), born into a Brahmin family in Tankara, Gujarat, vowed to spread the true form of the Vedas under the inspiration of Guru Virjanand. Through his treatise, Satyarth Prakash, he denounced idol worship and promoted a scientific and rational approach. His broad vision guided social reforms in India and also encouraged nationalism through his message of "return to the Vedas." The primary objective of establishing the Arya Samaj was to re-establish Vedic knowledge.

Key Words: *Arya Samaj, Vedas, Culture, Dayanand Saraswati, Tradition*

Indian culture is one of the world's most ancient and rich cultures. Its roots extend deep into the Vedas, Upanishads, Puranas, and various folk traditions. In the mid-to-late 19th century, progressive India was grappling with social, religious, and educational crises. Issues such as idol worship, superstition, Sati, child marriage, the harsh aspects of the caste system, and the absence of women's education were distorting society. At this time, the Arya Samaj, under the leadership of Swami Dayanand Saraswati, emerged as a major pillar of the Indian cultural renaissance.

Swami Dayanand Saraswati officially founded the Arya Samaj in Bombay (now Mumbai) on April 10, 1875, although his ideals and teachings were already influential

University Department of Music and Dramatics, Dean Academics and Fine Arts, Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

in society. Dayanand Saraswati advocated the pure teachings of the Vedas and rational religiosity against modern hypocrisy and superstition. His primary objective was to reestablish the supremacy of the Vedas. The Arya Samaj strongly opposed idol worship, rituals, and social superstitions and resolved to build a society based on Vedic principles. Swami Dayanand Saraswati (1824-1883), born into a Brahmin family in Tankara, Gujarat, vowed to disseminate the true essence of the Vedas under the inspiration of his guru, Virjanand. Through his treatise, Satyarth Prakash, he refuted idol worship and promoted a scientific and rational approach. His broad vision shaped social reforms in India and fostered nationalism through his message of "return to the Vedas." The primary objective of the Arya Samaj was to reestablish Vedic knowledge. Dayanand Saraswati, in his Satyarth Prakash, clarified that the four Vedas are the embodiment of truth, while later works may contradict them. Based on this belief, the Arya Samaj was launched in Mumbai in 1875 with ten principles. Over time, these principles were finalized in Lahore in 1877. The Arya Samaj also declared that all human beings are equal, and that one's caste or class is determined by one's qualities and actions, not by birth.

Some of the main principles of the Arya Samaj are:

- Recognizing the Vedas as universal religious and moral guidelines.
- Rejecting idolatry, superstition, witchcraft, and unnecessary rituals.
- Gender equality and raising voice against child marriage, sati, and the caste system.
- Recognizing education and science as the primary means of social reform.
- Emphasizing social service, cleanliness, and de-addiction.

The Arya Samaj advocated a return to the Vedic source of religious life, but not in a protectionist paradigm, but rather as one linked to reason, morality, and social welfare.

Religious-Spiritual Contributions

(i) Vedic Revival

Recognizing the Vedas as the foundation of religion, the Arya Samaj worked to disseminate principles that were against the prevailing dogmas, superstitions, and rituals. Through the study and dissemination of Vedic texts, rationality and morality entered the spiritual life of society. This strengthened aspects of the Indian religious tradition that were more inclusive and humane from a social and philosophical perspective.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.035

(ii) Opposition to Superstitions and Social Evils

The Arya Samaj openly fought against the practice of Sati, child marriage, and the rigid forms of the caste system. The Arya Samaj's propaganda and local activities increased public awareness against these practices and contributed to their reduction in many places.

(iii) Simplification of Worship and Practice

The Arya Samaj attempted to simplify worship and rituals, make them ethical, and beneficial to the community. Instead of idol worship or polytheism, the ritual of sacrifice was linked to truthful conduct, education, and social welfare. This increased the social utility of religious activities.

In these reform programs, the Arya Samaj promoted equality through education and inspired people to rise above caste discrimination. It advocated the adoption of science and reason over faith in both religion and country. As a result, the Arya Samaj also strengthened Indian nationalism during the freedom struggle.

Contribution to Social Reforms

(i) Women's Education and Women's Rights

The Arya Samaj strongly supported women's education. The Arya Samaj's established schools and missionaries expanded educational opportunities for girls. At the ideological level, it emphasized the dignity, freedom, and equality of women. Opposition to child marriage and sati were key elements of the Arya Samaj's social policies.

(ii) Actions Against Caste Discrimination

According to Dayanand Saraswati's ideas, caste should not be determined by birth, but by actions and qualities. This idea challenged the rigid caste system prevalent in society and promoted a culture of equality. The Arya Samaj organized speeches, campaigns, and workshops against caste-based discrimination in many places.

(iii) Health, Hygiene, and De-addiction

The Arya Samaj actively protested against alcohol, gambling, and other forms of addiction. Sanitation campaigns and public health awareness programs were organized in rural and urban areas. This initiative was an important step towards modernity in the socio-cultural landscape of that time.

These initiatives included women's education, inter-caste marriages, and the construction of orphanages and widows' homes. The Arya Samaj promoted equality through education and inspired people to rise above caste discrimination.

Women's Empowerment

The Arya Samaj was a pioneer in women's empowerment. Swami Dayanand advocated for equal rights for women based on Vedic ideas. His major contributions include:

(i) Promoting women's education - The Arya Samaj established girls' gurukuls and schools, encouraging families to educate their daughters.

(ii) Condemning child marriage - Based on the Vedas, he declared child marriage invalid and stated that full adulthood is necessary for marriage.

(iii) Supporting widow remarriage - He removed the stigma attached to widows and protected their right to a new marital life.

(iv) Equal participation in religious activities - The Arya Samaj opposed customs that deprived women of rituals like yajna, Veda worship, etc.

This approach of Swami Dayanand laid the foundation for women's rights in Indian society. Citing the Vedas and the revised Manusmriti, he argued that women should be respected equally with men. As a result, in many Arya Samaj girls' gurukuls, students recite the Vedas, wear the sacred thread, and conduct group rituals.

Major Contributions to Education

The Arya Samaj considered education the foundation of social reform and, accordingly, established numerous educational institutions. The establishment of the Dayanand Anglo-Vedic (DAV) School in Lahore (now Pakistan) in the late 19th century symbolized the movement's educational direction.

(i) DAV Movement and Institutions - The objective of DAV schools and colleges was to integrate modern, English-based education with Vedic culture and ethics. These institutions provided Indian youth with education in modern science, mathematics, history, and languages, as well as knowledge of Indian culture and philosophy.

(ii) Inclusion in Education - The Arya Samaj encouraged education not only for men but also for women. This fostered a sense of high ideals and self-reliance in society. Furthermore, the schools attempted to bring education to rural areas, thereby fostering educational awareness among the lower strata of society.

(iii) Language and Form - The Arya Samaj paid special attention to the promotion of Hindi and Sanskrit. Culture and modernity were combined by incorporating Sanskrit verses and excerpts from the Vedas into teaching methods.

 DOI- 10.65403/bhairavi.vol29.035

National Movement and Cultural Integration

The Arya Samaj's influence was not limited to religious and social matters; it also made significant contributions to national consciousness and the freedom movement. Many Arya Samaj leaders and academics were active in the national movement. Lala Lajpat Rai, Swami Shraddhanand, and other thinkers integrated the principles of the Arya Samaj with national consciousness and became a source of inspiration for Indian independence and cultural renaissance. The Arya Samaj's indigenous consciousness also strengthened the Congress-based movement and the freedom struggle.

Influence at the Rural and Folk Level

The Arya Samaj went to villages and carried out social work, campaigning against illiteracy, promoting cleanliness, folk culture, and health awareness. This infused Vedic vision and morality into the folk traditions that were part of Indian culture. Folk songs, hymns, and simple Vedic rituals still reflect the Arya Samaj's influence in villages.

Cultural Preservation and New Interpretation

The Arya Samaj redefined Indian cultural values - truth, non-violence, religious tolerance, and humanity - in a modern context. It did not blindly imitate traditional culture; rather, it attempted to reinterpret it and make it relevant to the times. The Arya Samaj's role in preserving Indian languages, literature, and music has also been evident.

The Arya Samaj's Vedic-based approach may limit cultural diversity in some contexts. Efforts toward purification and religious establishment sometimes made social dialogue difficult.

After the mid-20th century, when the changing nature of society and religious pluralism posed new challenges, some of the Arya Samaj's policies failed to adapt to the times.

Relevance

In present-day India, where globalization, consumerism, and cultural flows have brought both positive and negative impacts, the Arya Samaj's rational, educational, and ethical values remain relevant. The principles of the Arya Samaj can prove to be useful guides even today, particularly in the areas of education, public sanitation, social equality, and cultural self-respect. The Arya Samaj attempted to liberate Indian culture from the confines of devaluation and reconnect it with Vedic morality, logic, and education. Its role in social reform, the spread of education, the development of national consciousness, and cultural preservation has been incomparable. The Arya Samaj's overall contribution

is significant in the journey of Indian culture's revival.

References

1. Dayanand Saraswati. (1875). Satyarth Prakash.
2. Sharma, A. (1992). The Arya Samaj Movement and Indian Nationalism. Oxford University Press.
3. Jaffrelot, C. (2003). Religion, Caste, and Politics in India. Cambridge University Press.
4. Shastri, H. (1970). History and Philosophy of Arya Samaj. (Hindi translation).
5. Purohit, B. L. (2010). Reform Movements in India.
6. DAV Trust and Management Studies. (Various institutional records).
7. Arya Samaj Official Publications. (Various years).

ISSN 0975-5217